श्री मद्वाग्भट विरचितं

"नेमिनिर्वाणम्"

एक अध्ययन

डॉ०- अनिरुद्ध कुमार शर्मा

श्री अनिरुद्ध कुमार शर्मा द्वारा मेरठ विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत ''श्रीमद्वाग्भटविरचितं नेमिनिर्वाणम् : एक अध्ययन'' नामक शोध प्रबन्ध का सम्यक् परीक्षण किया है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि शोध प्रबन्ध के लेखक अनिरुद्ध कुमार शर्मा ने शोध के लिए निर्धारित मापदण्डों को ध्यान में रखते हुये शोध सामग्री का उत्तम रीति से संयोजन किया है। इसमें शोध के लिए आवश्यक प्राचीन स्रोतों एवं नवीनतम शोध खोज का समावेश है। शोध के क्षेत्र में लेखक का यह मौलिक अवदान है। इसमें जिन तथ्यों की शोध खोज की गई है उससे संस्कृत चरितकाव्य साहित्य के अनुसन्धान को एक नई दिशा मिलती है तथा विद्वान लेखक की तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टि का पता चलता है। भाषा प्राञ्जल और प्रभावशाली है। शोध-प्रबन्ध प्रकाशन के योग्य है।

डॉ०कमलेश कुमार जैन
जैन दर्शन विभागाध्यक्ष
संस्कृत विद्या एवं धर्मविज्ञान संकाय
का०हि०वि०वि०, वाराणसी

श्री अनिरुद्ध कुमार शर्मा द्वारा प्रस्तुत संस्कृत शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन की दृष्टि से आद्योपान्त अध्ययन किया गया। शोधार्थी का परिश्रम और प्रयास सराहनीय है। जैन साहित्य और संस्कृति के अगाध सागर के इस रत्न को जन सामान्य के लिए सुलभ बनाकर न केवल जैन धर्म की बल्कि संस्कृत साहित्य की भी श्री वृद्धि की है।

पूरा शोध प्रबन्ध गहन और सूक्ष्म अध्ययन का सुफल है। अनुसन्धाता का भाषा एवं विषय पर अधिकार हैं नये तथ्यों को उद्घाटन और विश्लेषण की क्षमता है। प्रबन्ध की भाषा में गति और प्रवाह के साथ रोचकता भी है। तथ्यों के प्रतिपादन की शैली में पूर्णता, स्पष्टता, तथा मौलिकता है इसलिए प्रबन्ध प्रकाशन के योग्य भी है। प्रस्तुत शोध कार्य जैन धर्म और संस्कृत साहित्य के लिए एक नई देन है। सनातन धर्म एवं जैन धर्म की पारस्परिक एकता के अध्ययन के लिए दिशा निर्देश है। शोधार्थी का यह सर्वथा मौलिक कार्य जैन साहित्य के ज्ञान का एक प्रमुख साधन है।

डॉ०श्री निवास मिश्र
रीडर एवं अध्यक्ष
संस्कृत-विभाग
धर्म समाज कालेज अलीगढ़

"श्रीमद्वाग्भटविरचितं"

नेमिनिर्वाणम् : एक अध्ययन

SHRIMAD VAGBHATA VIRACHITAM NEMINIRVANAM EK ADHYAYAN

(मेरठ विश्व विद्यालय मेरठ की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डा० अनिरुद्ध कुमार शर्मा

(Dr. A.K. Sharma)

(संस्कृत विभाग)

केन्द्रीय विद्यालय नं० - १

दिल्ली छावनी - १०

प्रकाशक

सन्मति प्रकाशन मुजफ्फर नगर (उ०प्र०)

संस्करण : प्रथम १९९८ ई०
प्रतियाँ : ५००
स्वाम्य : डा० अनिरुद्ध कुमार शर्मा
मूल्य : रु० ३५०/–
आवरण : श्री गणेश प्रसाद
© लेखकाधीन

" श्रीमद्वाग्भटविरचितं-नेमिनिर्वाणम्" एक अध्ययन
Shrimad Vagbhata Virachitam Nemi Nirvanam Ek Adhyayan
लेखक : डा० अनिरुद्ध कुमार शर्मा
(Dr. A. K. Sharma)

प्राप्ति स्थान :

१. श्रीमती सुमन शर्मा W/O (डा० ए० के० शर्मा, केन्द्रीय विद्यालय न० १, दिल्ली कैन्ट–१०) दू० न० ३२९६५४८

२. सन्मति प्रकाशन
२६१/३, पटेल नगर, मुजफ्फर नगर, (उ० प्र०) दू० न० ०१३१–४०३७३०

Printed by : Darpan Printers & Publishers
921, Jatwara Tiraha Behram Khan, Darya Ganj, New Delhi-110 002 Ph.: 3270902
Laser Type Setting and Composed at :-
Fast Computers Services, F-25, West Sagar Pur, New Delhi-110 046

"पूजनीया माता श्रीमती तारावती व पूजनीय पिता श्री बालक राम शर्मा"

बुढ़ाना, (मुजफ्फर नगर)

के श्री चरणों में

''प्रकाशन के अवसर पर''

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ द्वारा सन् १९९१ ई० की पी०एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध का अविकल मुद्रण है। विगत कई वर्षों से प्रकाशन के लिए विचार करते हुए, भगवत्-कृपा से इस वर्ष प्रकाशित इस शोध-प्रबन्ध को ग्रन्थरूप में देखकर मुझे चिरानन्द की प्राप्ति हो रही है। मेरे सुधी मित्र एवं आत्मीयजन जिसके प्रकाशन के लिए समय-समय पर प्रेरित करते रहे हैं।

मैं श्री डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य जी (पूर्व अध्यक्ष संस्कृत एवं पालि विभाग काशी वि०वि० वाराणसी) का विनम्र आभारी हूँ जिन्होंने संक्षिप्त प्राक्कथन लिखकर मुझ पर अनुकम्पा की है। अपने गुरुओं के प्रति तथा विशेष रूप से डा० जयकुमार जैन जी के प्रति हृदय से आभारी हूँ जो मुझे इस ग्रन्थ के प्रकाशन में प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते रहे हैं। फलतः मैं आज इस शोध-प्रबन्ध को ग्रन्थरूप में सहृदय-जनों के हाथों समर्पित कर रहा हूँ। मुझे आशा एवं विश्वास है कि ग्रन्थ की त्रुटियों से अवगत कराने की कृपा करेंगे।

इस अवसर पर अपने माता-पिता के आशीर्वाद तथा आत्मीयजनों की शुभाकांक्षा की अपेक्षा करता हुआ, अपनी अर्धाङ्गिनी श्रीमती सुमन दीक्षित, दोनों बच्चों (तरणी, हिमानी) को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया है।

इसके अतिरिक्त कम्पयूटर कम्पोजर श्री सुरेन्द्र गौड़ एवं श्री मनमोहन जी, श्री शिवदत्त जी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने प्रकाशन में सहयोग प्रदान कर इस कार्य को सम्पन्न कराया है।

दिल्ली
५ जनवरी, १९९८ ई०

अनिरुद्ध कुमार शर्मा

प्राक्कथन

डॉ०विश्वनाथ भट्टाचार्य
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत एवं पालि विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी

भारतीय संस्कृति के सर्वाङ्ग ज्ञान के लिए वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों भारतीय धाराओं से समादृत वाङ्मय का परिशीलन अपरिहार्य है। जैन कवियों ने संस्कृत की महनीय सेवा की है, किन्तु उसका सही मूल्यांकन अद्यावधि वाञ्छित रूप में हुआ नहीं है।

भगवान् नेमिनाथ जैन परम्परानुसार बाईसवें तीर्थंकर हैं। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का चचेरा भाई माना गया है। भगवान् नेमिनाथ का जीवन चरित यद्यपि पौराणिक है तथापि उनकी ऐतिहासिकता को झुठलाया नहीं जा सकता है। भारतीय वाङ्मय में नेमिनाथ पर अनेक काव्य लिखे गये हैं। डॉ० अनिरुद्ध कुमार शर्मा ने उनका संक्षिप्त परिचय इस ग्रन्थ में दिया है। वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण भगवान् नेमिनाथ पर लिखा गया प्रथम महाकाव्य है। अतः इसका विशेष महत्त्व है। लेखक डॉ०शर्मा ने इस प्रबन्ध में नेमिनिर्वाण का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है। जिसको आठ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय में जैन चरितकाव्यों के उद्भव एवं विकास का उल्लेख है। काव्यस्वरूप, काव्य के भेद एवं जैन चरित काव्यों की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, सातवीं शताब्दी ले लेकर बीसवीं शताब्दी पर्यन्त लिखे गये जैन चरित काव्यों का ऐतिहासिक दृष्टि ले कालानुक्रमिक विवेचन किया गया है। इसी अध्याय में विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध नेमिनाथ विषयक साहित्य का परिचय है और नेमिनिर्वाण महाकाव्य के रचयिता आचार्य वाग्भट प्रथम के जन्मस्थान एवं स्थितिकाल आदि का निर्णय किया गया है। द्वितीय अध्याय में ग्रन्थ की कथावस्तु, कथानक के स्रोत तथा उसमें किये गये परिवर्तन एवं परिवर्धन पर प्रकाश डाला है। तृतीय अध्याय में ग्रन्थ के अङ्गभूत एवं अङ्गीरस का विवेचन् करके नेमिनिर्वाण को महाकांव्य सिद्ध किया गया है और अन्त में छन्द एवं अलंकार योजना का समावेश है। चतुर्थ अध्याय में भाषा, शैली और गुणों पर प्रकाश डाला है। पञ्चम् अध्याय में महाकाव्य के वर्णनीय विषयों के अन्तर्गत देश, नगर एवं प्रकृति आदि का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। षष्ठ अध्याय में दर्शन एवं संस्कृति का विवेचन है। सप्तम अध्याय में नेमिनिर्वाण महाकाव्य पर पूर्ववर्ती ग्रन्थों के प्रभाव एवं पश्चातवर्ती ग्रन्थों पर नेमिनिर्वाण महाकाव्य के प्रभाव की चर्चा की गई है। अष्टम अध्याय में शोध के निष्कर्षो का विवेचन कर जैन संस्कृत साहित्य में इस ग्रन्थ का प्रणयन कर संस्कृत साहित्य की भी वृद्धि की है।

मैं अ   करता हूँ कि डॉ० शर्मा की लेखनी से इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों का प्रणयन होगा, जिससे वाङ्मय भाण्डागार और अधिक समृद्ध हो सकेगा।

डा०विश्व नाथ भट्टाचार्य

प्रस्तावना

संस्कृत का विद्यार्थी होने के कारण प्रारम्भ से ही काव्य ग्रन्थों के अध्ययन में मेरी रूचि रही है। जिन दिनों मैं एम०ए० का विद्यार्थी था, तब पाठ्यक्रम में कुछ जैन ग्रन्थ पढ़ने का अवसर मुझे मिला। मैंने अनुभव किया कि एक विशिष्ट भारतीय सम्प्रदाय के रूप में जैनों ने संस्कृत साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की है । यदि भारतीय संस्कृति का सर्वांगीण और वास्तविक अध्ययन करना है तो भारत की सभी धाराओं के साहित्य का अध्ययन करना अनिवार्य है । तभी मेरे मन में विचार आया यदि मुझे पी० एच० डी० करने का अवसर मिला तो मैं जैन साहित्य में ही अपना शोध कार्य करूँगा ।

एम० ए०, बी० एड्० करने के बाद मैनें अपनी जिज्ञासा का अपने गुरुवर डा० जयकुमार जैन से निवेदन किया। उन्होंने "नेमिनिर्वाण" नामक एक ग्रन्थ मुझे इस कार्य के लिए दिया, जिसका न कोई अनुवाद था और न किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी। यह ग्रन्थ-निर्णयसागर प्रेस बम्बई से पं० श्री शिवदत्त एवं श्री काशीनाथ पाण्डुरंग परब द्वारा संपादित होकर १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ है। गुरु की आज्ञा और अपने परिश्रम की प्रवृत्ति पर विश्वास करके मैंने उस पर ही शोध कार्य करने का निश्चय कर लिया। मैंने पूर्ण निष्ठा के साथ नेमि-निर्वाण का अध्ययन करने का यह विनम्र प्रयास किया है, जो विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में जैनचरितकाव्य परम्परा तथा नेमि-निर्वाण का विवेचन किया गया है। इस अध्याय को तीन उपविभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम उप विभाग में जैन चरितकाव्यों के उद्भव और विकास पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय उपविभाग में तीर्थङ्कर नेमिनाथ विषयक साहित्य का विवेचन है तथा तृतीय उपविभाग में नेमि-निर्वाण के कर्ता वाग्भट के व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में नेमि-निर्वाण की कथावस्तु पर विचार किया गया है। इस अध्याय को भी तीन उपविभागों में बाँटा गया है, जिसमें सर्वप्रथम नेमिनिर्वाण की कथावस्तु के मूल स्रोत पर विचार किया है। द्वितीय उपविभाग में नेमिनिर्वाण की कथावस्तु दी गयी है तथा तृतीय उपविभाग में मूल कथावस्तु से नेमिनिर्वाण की कथावस्तु में किये गये परिवर्तन-परिवर्धनों की चर्चा की गई है। तृतीय अध्याय को रस, महाकाव्यत्व, छन्द और अलंकार नामक चार उपविभागों में विभक्त किया गया है। रस के सन्दर्भ में अंगीरस शान्त पर विचार करते समय शान्तरस की मान्यता और स्थान का भी विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् नेमिनिर्वाण की महाकाव्यता सिद्ध की है। छन्द उपविभाग में नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त कुल ५० छन्दों की चर्चा की गई है। नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त शब्दालंकार और अर्थालंकारों का उल्लेख करते हुए वाग्भट के अलंकार कौशल को प्रकट किया है। चतुर्थ अध्याय में नेमिनिर्वाण की भाषाशैली एवं गुण सन्निवेश पर विचार करते हुए स्पष्ट किया गया है

कि महाकवि वाग्भट ने सभी रीतियों एवं सभी गुणों का आश्रय लिया है । पंचम अध्याय में "वर्णन वैचित्र्य" के अन्तर्गत देश, नगर, सूर्योदय, प्रातःकाल, चन्द्रमा, पर्वत, मन्दिर, स्त्री-पुरूष, पुत्रजन्म, जलक्रीडा, मदिरा पान का वर्णन किया है । षष्ठ अध्याय में नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त दर्शन एवं संस्कृति का चित्रण है । सर्व प्रथम नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त दर्शन का तत्पश्चात् उसमें प्रतिबिम्बित संस्कृति का विवेचन किया गया है । सप्तम अध्याय में नेमि-निर्वाण के ऊपर पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव तथा परवर्ती कवियों पर अवदान की चर्चा की गई है । अष्टम अध्याय में शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष को प्रस्तुत करते हुए नेमि-निर्वाण के इस समीक्षात्मक अध्ययन के अवदान की विवेचना की गई है । अन्त में शोध-प्रबन्ध में सहायक ग्रन्थों की अनुक्रमणिका को भी परिशिष्ट के रूप में जोड दिया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को लिखने में मुझे जिन गुरुजनों एवं विद्वानों का सहयोग मिला है उनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ । इस प्रसंग में मैं सर्वप्रथम अपने निर्देशक डा० जयकुमार जैन के प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन में यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका है । अत्यन्त व्यस्त रहते हुये भी उन्होंने शोध-प्रबन्ध के अन्तिम प्रारूप के संशोधन में बड़ी आत्मीयता एवं तत्परता दिखाकर शोध-निर्देशक के दायित्व को पूर्णरूप से निभाया है । तत्पश्चात् मैं विभागीय गुरुजनों - डा० रमेशकुमार लौ, डा० उमाकान्त शुक्ल एवं डा० सुषमा जी के प्रति आभारी हूँ जिनके परामर्श से शोध-विषय के चयन में पर्याप्त सहायता मिली तथा जिनका प्रोत्साहन निरन्तर मिलता रहा है । यह शोध-प्रबन्ध पूज्य पिता श्री बालकराम शर्मा एवं माता श्रीमती तारावती शर्मा के आशीर्वाद एवं प्रेरणा का ही फल है । अतः उनके प्रति प्रणत निवेदन करना मेरा परम कर्त्तव्य है ।

इस अवसर पर मैं पद्मश्री स्वामी कल्याणदेवजी महाराज के प्रति विनम्र रूप से प्रणत हूँ । स्वामी जी का आशीर्वाद ही इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता में सहायक रहा है । अग्रज तथा अनुज भ्राता श्री अरविन्द जी और अवनीश तथा भाभी श्रीमती अरूणा जी एवं जीजा श्री धर्मवीरजी की प्रेरणा व सहयोग के लिए उनका भी मैं आभारी हूँ । इस शोध प्रबन्ध के टंकण में श्री सुशील जैन एवं श्री सुभाष जैन का सहयोग मिला है, उन्हें भी मैं धन्यवाद देता हूँ ।

अन्त में मैं पुनः सभी गुरुजनों, विद्वानों एवं पारिवारिक तथा आत्मीय सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका इस शोध-प्रबन्ध के लेखन में थोड़ा सा भी सहयोग प्राप्त हुआ है ।

विनीत

अनिरुद्ध कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

अध्याय - एक :जैन चरितकाव्य परम्परा तथा नेमिनिर्वाण १-९२

(क) उद्‌भव एवं विकास — काव्य का स्वरूप, काव्य के भेद, जैन चरितकाव्य सामान्य विशेषतायें, सातवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक के जैन चरितकाव्यों का ऐतिहासिक दृष्टि से कालानुक्रमिक सिंहावलोकन

(ख) *तीर्थङ्कर नेमिनाथ विषयक साहित्य* — संस्कृत भाषा में लिखित साहित्य, प्राकृत भाषा में लिखित साहित्य, अपभ्रंश भाषा का साहित्य, हिन्दी साहित्य तथा राजस्थानी साहित्य, मराठी, कन्नड़, गुजराती आदि हिन्दीतर आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य

(ग) *नेमिनिर्वाण का कर्ता* — अनेक वाग्भट, वाग्भट प्रथम : परिचय, कुल-परम्परा, सम्प्रदाय, निवास स्थान, स्थितिकाल

अध्याय - दो :नेमिनिर्वाण की कथावस्तु ९३-११९

(क) *मूल स्रोत* — कथावस्तु का मूल स्रोत, उत्तरपुराण में वर्णित नेमिनाथचरित, हरिवंशपुराण में नेमिनाथचरित

(ख) *सर्गानुसार कथानक*

(ग) *परिवर्तन - परिवर्धन*

अध्याय - तीन :नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प १२०-१६३

(क) *रस* — रस की परिभाषा, शान्तरस : मान्यता और स्थान, अंगीरस शान्त, अंगरस - श्रृंगार - संयोगश्रृंगार एवं विप्रलम्भ श्रृंगार, रौद्र रस, वीर रस, करुण रस और अद्‌भुत रस

(ख) *महाकाव्यत्व* — काव्य के भेद, छन्द के सद्‌भाव या अभाव के आधार पर, भाषा के आधार पर, विषय के आधार पर, स्वरूप के आधार पर महाकाव्य का स्वरूप एवं नेमिनिर्वाण में संघटना

(ग) *छन्द योजना* — आर्या, शशिवदना, सोमराजी, अनुष्टुप्, विद्युन्माला, प्रमाणिका, हंसरुत, माद्यद्‌भृंग, मणिरंग, बन्धूक, रुक्मवती, मत्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति (१४ भेद सहित) भ्रमर-विलसिता, स्त्री, रथोद्धता, शालिनी, अच्युत, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, कुसुमविचित्रा, स्रग्विणी, मौक्तिकदाम, तामरस, प्रमिताक्षरा, भुजंगप्रयात, प्रियंवदा, तोटक, रुचिरा, नन्दिनी, चन्द्रिका, मंजुभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलका, अशोक-मालिनी, प्रहरणकलिका, मालिनी, शशिकलिका, शरमाला, हरिणी, पृथ्वी, शिखरिणी, मन्दाक्रांता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, चण्डवृष्टि, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा ।

(घ) *अलंकार* — शब्दालंकार - अनुप्रास, यमक (अयुतावृत्ति- मूलक यमक, महायमक, मध्यमयमक, आदियमक, संयुतावृत्तिमूलक अन्तयमक, अयुतावृत्तिमूलक अन्तयमक, पादद्वयान्तयमक, द्वितीयपाद चतुर्थ पादान्तयमक), श्लेष, अर्थालंकार - उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, परिसंख्या, उदाहरण, सहोक्ति, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास ।

अध्याय - चार : भाषा शैली तथा गुणसन्निवेश १६४-१६९

शैली का अर्थ, वैदर्भी रीति, गौडीरीति, पांचाली रीति, लाटी रीति, गुण, गुण के भेद, माधुर्य, ओज, प्रसाद ।

अध्याय - पाँच : नेमिनिर्वाण में वर्णनवैचित्र्य १७०-१७८

देशवर्णन, नगरवर्णन, प्रकृति-चित्रण, सूर्योदय एवं प्रातःकाल, चन्द्रवर्णन, पर्वतवर्णन, देव-मन्दिर, स्त्री-पुरुषों का वर्णन, पुत्रजन्मोत्सव, जलक्रीड़ा, मदिरापान, रतिक्रीड़ा ।

अध्याय - छः : दर्शन एवं संस्कृति १७९-२१०

(क) ***दर्शन*** — स्वरूप, वर्गीकरण, रत्नत्रय - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सप्त तत्वों का विवेचन, जीव, अजीव, अणु या पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ध्यान - आर्तध्यान, रौद्रध्यान, शुक्लध्यान, धर्मध्यान, पंचपाप - हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह, कर्म, तप - बाह्यतप, अन्तरंग तप, अनेकान्त ।

(ख) ***संस्कृति*** — द्वीप - पुष्करार्द्ध द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन, उद्यान, वृक्ष, पुष्प, पशु, पक्षी, देश, जनपद, नगर, ग्राम - सुराष्ट्र, कुरूजांगल, द्वारकापुरी, श्रीगान्धिल, आवास, हर्म्य, प्रासाद, सद्म, शाला, मन्दिर, दीर्घिका, राजा, राजा का उत्तराधिकारी, राजा की दानवीरता एवं यश, सैन्य, दुर्ग, परिखा, वप्र, सभा, वर्ण और जाति, परिवार, विवाह, भोजनपान, आजीविका के साधन, वाहन, आभूषण - शिरोभूषण, कर्णाभूषण, कण्ठाभूषण, कराभूषण, वस्त्र, शिक्षा, संस्कार - पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, पुत्रोत्पत्ति, नामकरण, चौलकर्म, विद्यारंभ, दारकर्म, मृत्यु, मनोरंजन के साधन - संगीत वाद्य और नृत्य, स्वप्न तथा उनके फल ।

अध्याय - सात :प्रभाव एवं अवदान २११-२२०

कालिदास का वाग्भट पर प्रभाव, भर्तृहरि का वाग्भट पर प्रभाव, कुमारदास का वाग्भट पर प्रभाव, भारवि का वाग्भट पर प्रभाव, माघ का वाग्भट पर प्रभाव, बाणभट्ट का वाग्भट पर प्रभाव, हरिचन्द्र का वाग्भट पर प्रभाव । वाग्भट का वीरनन्दि पर प्रभाव, वाग्भट का मुनिज्ञानसागर पर प्रभाव ।

अध्याय - आठ : उपसंहार २२१-२२६

परिशिष्ट : सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

जैन चरितकाव्य परम्परा तथा नेमिनिर्वाण

उद्भव एवं विकास

काव्य का स्वरूप

संस्कृत साहित्य शास्त्र में साहित्य का पर्यायवाची शब्द काव्य है, क्योंकि सुदीर्घ काल तक साहित्य-सृजन कविता में ही होता रहा है। आचार्य भामह ने (छठी शताब्दी) "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"[१] कह कर शब्द और अर्थ के साहित्य को काव्य माना है और बाद में इसकी परिभाषा करते हुए पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है - रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[२]। इस परिभाषा में रमणीय अर्थ और शब्द इन दोनों के द्वारा काव्य में रस, अलंकार और ध्वनि का समन्वय निहित है। पण्डितराज जगन्नाथ से बहुत पहले जिनाचार्य जिनसेन ने काव्य शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार बतलायी है - "कवेर्भावो अथवा कर्मकाव्यं"[३] कवि के भाव अथवा कर्म को काव्य कहते हैं। कवि का काव्य सर्व-सम्मत अर्थ से सहित, ग्राम्यदोष से रहित, अलंकार से युक्त और प्रसाद आदि गुणों से शोभित होता है। अर्थात् शब्द और अर्थ का वह समुचित रूप जो दोषरहित तथा गुण और अलंकार सहित हो (रमणीय हो) काव्य है। ध्वनिवादी आचार्यों ने "ध्वनिरात्मा काव्यस्य" कह कर काव्य-शरीर में प्राणों की प्रतिष्ठा की है।

कुन्तक ने "वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्"[४] कहा है परन्तु विश्वनाथ ने इस पर आक्षेप किया है। विश्वनाथ के अनुसार वक्रोक्ति तो एक अलंकार मात्र है, वह काव्य का जीवन कैसे हो सकता है? किन्तु कुन्तक की वक्रोक्ति सामान्य अलंकार न होकर एक अपूर्व अलंकार है तथा विचित्रा अभिधा भी है, जो ध्वनि आदि के समान ही महत्त्वपूर्ण है।

काव्य की परिधि को बढ़ते हुये देखकर काव्यशास्त्रियों ने उसकी परिधि में आवश्यक संशोधन किया है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में काव्य में स्फुट अलंकार के अभाव में भी काव्यत्व सुरक्षित माना है। उन्होंने दोषरहित, गुणवाली, अलंकारयुक्त तथा कभी-कभी अलंकार रहित शब्दार्थमयी रचना को काव्य कहा है।[५] इसी तरह अपने युग की रचनाओं को ध्यान में रखकर आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य की परिभाषा "अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ-काव्यम्"[६] मानते हुये भी सूत्र की वृत्ति में "चकारौ निरलंकारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित् काव्यत्वख्यापनार्थः" लिखा है।

---

१. काव्यालंकार १/१६
२. रसगंगाधर, काव्यलक्षण पृ० ११
३. आदिपुराण, १/९४
४. वक्रोक्तिप्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। -वक्रोक्तिजीवित, १/१० की वृत्ति।
५. तददोषौ शब्दार्थौ सुगणावनलंकृती पुनः क्वापि। - काव्यप्रकाश, पृ० १
६. काव्यानुशासन, १/११

आचार्य विश्वनाथ ने आनन्दवर्धन, कुन्तक और मम्मट के काव्य लक्षणों का खण्डन कर काव्य-लक्षण प्रस्तुत किया है - "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"[१] काव्य का यह लक्षण रस के महत्त्व को स्वीकार करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य की परिभाषा युग की आवश्यकता के अनुसार बदलती रही है और विशाल एवं बहुविध काव्य-राशि को देखते हुये उनके काव्यत्व को जाँचने के लिए एक मापदण्ड स्थापित करना कठिन है । सचमुच "निरंकुशाः कवयः" यह लोकोक्ति कवियों के लिए उचित ही है ।

काव्य के भेद

काव्य भेद-निरूपण, काव्यशास्त्र की प्राचीनतम परम्परा है, काव्य निर्माण के साथ ही यह समस्या उठी होगी, यह अनुमान सहज एवं स्वाभाविक है । इस समस्या का समाधान सर्वप्रथम भामह ने चार मान्यताओं के आधार पर पृथक्-पृथक् चार प्रकार से काव्य-भेद प्रस्तुत करके किया है[२]

१. छन्द के सद्भाव या अभाव के आधार पर - (अ) गद्य,(ब) पद्य

२. भाषा के आधार पर- (अ) संस्कृत, (ब) प्राकृत, (स) अपभ्रंश

३. विषय के आधार पर- (अ) ख्यातवृत्त, (ब) कल्पित, (स) कलाश्रित, (द) शास्त्राश्रित

४. स्वरूप के आधार पर - (अ) सर्गबन्ध, (ब) अभिनेयार्थ, (स) आख्यायिका, (द) कथा (य) अनिबद्ध

इस प्रकार उक्त चारों वर्गीकरण का आधार ही प्रायः पश्चात्वर्ती समस्त काव्यशास्त्रियों का आधार बना और वे इसी में ही कुछ परिवर्तन या परिवर्धन कर वर्गीकरण प्रस्तुत करते रहे । वास्तव में भामह के वर्गीकरण में एक दोष मुख्य रूप से यह है कि उन्होंने खण्डकाव्य को बिल्कुल ही भुला दिया है । आचार्य दण्डी कथा और आख्यायिका को दो अलग-अलग भेद न मानकर एक ही के दो नाम मानते हैं ।

जैन चरितकाव्य

जैन चरितकाव्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो काव्यशास्त्रोक्त विधिविधान को अपना कर काव्य की विभिन्न विधाओं में लिखा गया है किन्तु जिनमें जैन धर्मोक्त चरित्रों को ही वर्णित किया गया है । संस्कृत साहित्य में चरितकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा है । चरितकाव्यों

१. साहित्यदर्पण, १/३, पृ० २३

२. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्द्विधा ।संस्कृतंप्राकृतं चान्यद्अपभ्रंश इति त्रिधा ।।
कृत्तदेवादिचरितशंसिचोत्पाद्यवस्तु च । कलाशास्त्राश्रयंचेति चतुर्धाभिद्यते पुनः ।।
सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे । अनिबद्धञ्च काव्यादि तत्पुनः पचंधोच्यते ।।
-काव्यालंकार, १/१६-१८

में किसी पुण्यशाली महापुरुष का चरित्र वर्णित होता है। चरितकाव्य सामान्यतः दो प्रकार के हो सकते हैं :-

१. जिन चरितकाव्यों का कथानक पुराणों से ग्रहण किया गया है ऐसे पौराणिक चरितकाव्य।
२. जिन चरितकाव्यों का कथानक किसी ऐतिहासिक घटना या महापुरुष को लेकर लिखा गया है ऐसे ऐतिहासिक चरित काव्य।

सर्वप्रथम जैनों के परम्परा सम्मत वाङ्मय में जैन काव्य-साहित्य की क्या स्थिति है इसकी जानकारी प्राप्त कर लेना परमावश्यक है।

भगवान महावीर के समय से लेकर विक्रम की बीसवीं शताब्दी के अन्त तक लगभग २५०० वर्षों के दीर्घकाल में जैन मनीषी प्राकृत, संस्कृत एवं अन्य सभी भारतीय भाषाओं में ग्रन्थ प्रणयन करते रहे, क्योंकि प्राकृत जन सामान्य की भाषा थी अतः लोकोपरक सुधारवादी रचनाओं का सृजन जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में ही प्रारम्भ किया। भारतीय वाङ्मय के विकास में दिये गये जैनाचार्यों के सहयोग की प्रशंसा करते हुए डा० विटरनित्स ने लिखा है :-

"I was not able to do full justice to the literary achievements of the jainas, but I hope to have shown that the jainas have contributed their full share to the religious ethical and scientific literature of ancient India."[१]

अनुयोगद्वारसूत्र में प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं को ऋषिभाषित कहकर समान रूप से सम्मान प्रदान किया है।

सक्कया पाथया चेव भीणईओ होति दोण्णिवा।
सरमडंलाम्मि विज्जंते पसत्था इसिभासियो॥

स्पष्ट है कि संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं में साहित्य सृजन करने की स्वीकृति जैनाचार्यों द्वारा प्रदान की गयी है।

काव्य साहित्य के अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आधुनिक विद्वानों ने पुरानी परिभाषाओं का ध्यान रखकर प्रमुख तीन भागों में बांटा है। प्रथम आगमिक, दूसरा अनुआगमिक और तीसरा आगमेतर। आगमिक साहित्य आज हमें आचारांग आदि ४५ आगमों तथा उन पर लिखे विशाल टीका साहित्य, नियुक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकाओं के रूप में उपलब्ध हैं। अनुआगमिक साहित्य दिगंबर मान्य और शौर-सैनी आगमों के साथ पाहुड, षटखण्डागम तथा कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के रूप में पाया जाता है।[२]

---

१. The Jainas in the History of Sanskrit Literature Page - ५.
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० ४

आगमेतर साहित्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो जैनागमों की विषय और शैली की दृष्टि से अनुयोग नामक एक विशेष व्याख्यान पद्धति के रूप में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से लिखा जाने लगा था । इसके आविष्कारक आचार्य "आर्यरक्षित" माने जाते हैं । अनुयोग पद्धति चार प्रकार से बतलाई गई है -

१. प्रथमानुयोग, २. करणानुयोग, ३. चरणानुयोग, ४. द्रव्यानुयोग

जिन ग्रन्थों में परमार्थ विषयों का कथन करने वाले तिरसठ शलाका-पुरुषों का अथवा अन्य पुण्यशाली महापुरुषों का चरित वर्णित होता है, उन्हें प्रथमानुयोग तथा जिन ग्रन्थों में लोकालोक विभाग, युग-परिवर्तन, चतुर्गति और कर्मादि का वर्णन होता है वे ग्रन्थ करणानुयोग तथा जिन ग्रन्थों में गृहस्थ और साधुओं की चारित्रोत्पत्ति, वृद्धि, रक्षा का वर्णन हो चरणानुयोग तथा जिनमें जीवादि सप्त तत्त्वों, पुण्य-पाप आदि का विवेचन किया जाता है उन्हें द्रव्यानुयोग ग्रंथों की संज्ञा दी जाती है ।[१]

इस प्रकार समस्त पुराण चरितकाव्य प्रथमानुयोग के अंतर्गत ही आते हैं । प्रथमानुयोग के अन्तर्गत अरहन्तों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण सम्बन्धित इतिवृत्त तथा शिष्यसमुदाय का वर्णन समाविष्ट है ।

जैन काव्य साहित्य की विषयवस्तु वस्तुतः विशाल है । जैन चरितकाव्यों में प्रायः तिरसठ शलाका पुरुष और २४ कामदेव तथा कतिपय अन्य पुण्यशाली पुरुषों का वर्णन मिलता है । २४ तीर्थङ्कर, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बल्लभद्र और १२चक्रवर्ती इन तिरसठ महापुरुषों की जैन साहित्य में शलाका संज्ञा है । शलाका शब्द प्राचीन काल में प्रमाणबोधक वस्तु के लिए प्रयुक्त होता था । अतएव शलाकापुरुष से तात्पर्य उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों से है, जो समाज में प्रमाण माने जाते थे, गणमान्य थे, जिनका समाज में रहना अनिवार्य था ।[२]

इनके अतिरिक्त अनेक नरेशों के विविध प्रकार के आख्यान, नाना प्रकार के साधु-साध्वियों और राजा-रानियों के, ब्राह्मणों और श्रमणों के, सेठ-सेठानियों के, धनिक तथा दरिद्रों के, चोर और जुआरियों के, धूर्त और गणिकाओं के तथा विभिन्न प्रकार के मानवों को उद्देश्य कर लिखे गये ग्रन्थ हैं ।[३]

काव्य निर्माण की दृष्टि से सबसे पहले संस्कृत के जैन कवि समन्तभद्र हैं, जिन्होंने ईस्वी सन् की द्वितीय शताब्दी में स्तुति-काव्य का सृजन कर जैनों के मध्य संस्कृत काव्य की परम्परा का श्रीगणेश किया । यह एक सर्वमान्य सत्य है कि संस्कृत भाषा में काव्यों का प्रादुर्भाव स्तुतियों से ही हुआ है ।[४]

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, पद्य, ४३-४६
२. द्र० पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ०-१
३. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ७
४. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ५५-६०

जैन काव्य साहित्य की ईसा की प्रथम शताब्दी से पाँचवी शताब्दी तक कतिपय कृतियाँ उल्लेख रूप में ही मिलती हैं। पाँचवी से दसवीं तक सर्वाङ्ग पूर्ण विकसित एवं आकर ग्रन्थों के रूप में ऐसी विशाल रचनायें मिलती हैं, जिन्हें हम प्रतिनिधि रचनायें कह सकते हैं। किन्तु ये अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। परन्तु ग्यारहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक एतद्विषयक रचनाएं विशाल गंगा की धारा के समान प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती हैं और अब भी मन्द एवं क्षीण धारा के रूप में प्रवाहित हैं।

डा० जयकुमार जैन ने जैन चरितकाव्यों के आन्तरिक अनुशीलन के आधार पर कुछ विशेषताओं का निर्देश किया है[1], जो इस प्रकार है -

(१) जैन चरितकाव्यों में नायक, प्रतिनायक और उनसे संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों के अनेक जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन किया जाता है। इनमें नायक को उत्तरोत्तर उन्नत और प्रतिनायक को जन्म जन्मान्तर में नायक से शत्रुता करते हुए दिखाया जाता है। अन्ततः प्रतिनायक नायक के समक्ष अपनी हार स्वीकार करता है और नायक के मार्ग पर चलने लगता है। किन्तु ऐतिहासिक चरितकाव्यों में नायक के जन्म-जन्मान्तर का वर्णन नहीं किया जाता है।

(२) इन काव्यों का आधार प्रायः जैन पौराणिक आख्यान हैं। अवान्तर कथानकों में अनेक काल्पनिक या लोकप्रसिद्ध कथाओं का भी समावेश हुआ है परन्तु ऐतिहासिक चरितकाव्यों में समय, स्थान आदि के निश्चित तथ्यों को प्रकट करने के कारण कल्पना को अधिक स्थान नहीं मिल सका है।

(३) जैन चरितकाव्यों का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। अतएव इन काव्यों में भोग पर त्याग की विजय दिखलायी जाती है।

(४) भारत का प्राचीन साहित्य धार्मिक एवं दार्शनिक भावनाओं से ओतप्रोत पाया जाता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इसका साक्षी है। अतएव इन काव्यों में भी प्रसंगतः दार्शनिक एवं धार्मिक तत्त्वों का समावेश पाया जाता है। इसी कारण कहीं-कहीं कोई काव्य नीरस भी लगने लगता है।

(५) जैन चरितकाव्यों में प्रायः अंगीरस शान्त है। किन्तु श्रृंगार रस के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों पक्षों एवं अन्य सभी रसों का यथेष्ट वर्णन इन काव्यों में हुआ है।

(६) जैन चरितकाव्यों में प्रायः ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्तियाँ लिखी गई हैं। इन प्रशस्तियों में ग्रन्थ रचना का समय, तत्कालीन राजा एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख कर दिया गया है। इन ग्रन्थों में मंगलाचरण में भी कहीं-कहीं पूर्व कवियों की प्रशस्ति प्राप्त होती है और कहीं-कहीं तो यह कालानुक्रमिक भी है। अतएव जैन चरितकाव्यों के मंगलाचरण और अन्तिम

---

१. पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ४-५

प्रशस्तिपद्यों का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा ही महत्त्व है ।

महाभारत और रामायण के कथानक हिन्दुओं की तरह इतर सम्प्रदायों को भी प्रिय रहे हैं । इन कवियों ने भी अपने सम्प्रदाय (परम्परा प्राप्त सिद्धान्त) की मान्यताओं के अनुरूप रामायण और महाभारत को आश्रय मानकर अनेक काव्यों की रचना की है । यहाँ तक कि जैन साहित्य में महापुरुषों के चरित को काव्यात्मक शैली में लिखने का श्रीगणेश ही प्राकृत भाषा में निबद्ध विमलसूरि (प्रथम शताब्दी) के "पउमचरियं" से होता है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का संपूर्ण जीवन परिचय वर्णित है । जैन परम्परा में राम का नाम 'पद्म' भी उल्लिखित है ।

इसकी शैली रामायण और महाभारत जैसी है । यही नहीं, जिस प्रकार जैन चरितकाव्यों का प्राकृत भाषा में प्रारम्भ श्रीराम के चरित के साथ हुआ, उसी प्रकार संस्कृत भाषा में भी । आचार्य रविषेण (सप्तम शताब्दी) का पद्मचरित संस्कृत भाषा में निबद्ध आद्य जैन चरितकाव्य है ।

जैन कवि ईसा की सप्तम शताब्दी से लेकर निरन्तर चरितकाव्यों की रचना में संलग्न हैं । अब ऐतिहासिक दृष्टि से कालानुक्रम को ध्यान में रखते हुए चरितकाव्यों का सिंहावलोकन किया जा रहा है ।

सप्तम शताब्दी

१. पद्मचरित[१]: (आचार्य रविषेण)

पद्मचरित में राम-लक्ष्मण का वर्णन १२३ पर्वों में हुआ है । ये जैन परम्परा में अष्टम बलभद्र नारायण और प्रतिनारायण स्वीकृत हैं । यद्यपि यह पौराणिकता पर आधारित है किन्तु जैन संस्कृत काव्यों में यह आद्य रचना है । अतः इसका महत्त्व चरितकाव्यों के इतिहास में अविस्मरणीय है । पद्मचरित पर राजा भोज (परमार) के राज्यकाल में (१०३० ई० में) श्री चन्द्रमुनि द्वारा एक टीका लिखे जाने का उल्लेख मिलता हैं ।[२]

रचयिता : रचनाकाल

"पद्मचरित" के रचयिता आचार्य रविषेण हैं । इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा के विषय में इस प्रकार से उल्लेख किया है - इन्द्रगुरु → दिवाकरपति → अर्हन्मुनि → लक्ष्मणसेन → रविषेण ।[३] अपनी गुरु-परंपरा के अतिरिक्त अपना जरा भी परिचय आचार्य ने नहीं दिया है, किन्तु सेनान्त होने के कारण इनकी सेनसंघ के होने की संभावना की जाती है ।[४]

रविषेण ने पद्मचरित की रचना वीर निर्वाण के १२०२ $^1/_2$ बाद (सन् ६७७ ई०) में पूर्ण की थी । इसका उल्लेख ग्रन्थ से ही प्राप्त होता है ।[५] बाह्य प्रमाणों से भी इसका यही समय

१.भारतीय ज्ञानपीठ से तीन भागों में प्रकाशित है । २.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ४२

३.पद्मपुराण, १२३/१६८ ४.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-२, पृ०-३७६

५.द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते । जिनभास्करवर्धमानसिद्धेश्चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ।।
- पद्मपुराण, १२३/१८७

सिद्ध होता है। क्योंकि उद्योतनसूरि[1] और आचार्य जिनसेन[2] ने इनका उल्लेख किया है। इन दोनों का समय आठवीं शताब्दी है।

अष्टम शताब्दी

२. वरांग चरित[3] (जटासिंह नन्दि)

यह ३१ सर्ग में निबद्ध चरितकाव्य है। कवि ने श्रीकृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ के समकालीन भोजवंशी महाराज धर्मसेन के पुत्र "वरांगकुमार" का चरित्र अंकित किया है। इसमें जैन दर्शन और जैनाचार का विवेचन किया गया है। यह अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरानन्द की कोटि का काव्य है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता जटासिंह नन्दि हैं। जैन चरितकाव्यों में संस्कृत के आद्य चरितकाव्य रचयिता का गौरव इन जटाचार्य को ही प्राप्त है। यद्यपि इससे पूर्व पद्मचरित की रचना हो चुकी थी, किन्तु उसमें पौराणिक तत्त्व अधिक थे। उनका व्यक्तिगत परिचय सर्वथा अज्ञात है। वरांगचरित के वर्णनों के आधार पर डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इन्हें दाक्षिणात्य माना है।[4] उद्योतन सूरि ने रविषेण के साथ वरांगचरित का भी उल्लेख किया है।[5] उद्योतनसूरि के (सन् ७७८ ई०) पश्चातवर्ती अनेक कवियों ने इनका स्मरण किया है। प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला इनका समय सातवीं शताब्दी से आगे ले जाना उचित नहीं मानते हैं।[6] डा० रामजी उपाध्याय ने इनका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी का सन्धिकाल माना है।[7]

३. हरिवंशपुराण (आचार्य जिन सेन)

यह दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रमुख (चरित) पुराण ग्रन्थ है। हरिवंश की कथावस्तु जिनसेन को अपने गुरु कीर्तिसेन से प्राप्त हुई थीं। कथावस्तु ६६ सर्गों में निबद्ध है।

इस काव्य में प्रमुख रूप से २२ वें तीर्थङ्कर का चरित्र निबद्ध है। परन्तु प्रसंगोपात्त अन्य कथानक भी लिखे गये हैं। भगवान नेमिनाथ के साथ नारायण श्रीकृष्ण तथा बलभद्र पद के धारक श्री बलराम के भी कौतुक व चरित्र अंकित हैं। हरिवंशपुराण पर रविषेण के पद्मपुराण और जटासिंह के वरांगचरित का प्रभाव है।

रचयिता : रचनाकाल

हरिवंश पुराण काव्य के प्रणयन कर्ता श्री आचार्य जिनसेन हैं। ये पुन्नाट संघ के आचार्य

१.कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४ २. हरिवंशपुरा, १/३४

३. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ मथुरा से १९५३ ई० में सानुवाद प्रकाशित।

४.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-२, पृ० २९३

५.कुवलयमाला, अनुच्छेद ६, पृ० ४ ६.वरांगचरित, भूमिका, पृ० २६

७.संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, भाग-१, पृ० ४०५

हैं। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। हरिवंशपुराण के ६६ वें सर्ग में भगवान महावीर से लेकर लोहाचार्य पर्यन्त आचार्यों की परम्परा अंकित है। वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष के अनन्तर गुरु कीर्तिषेण की अविच्छिन्न परम्परा इसी ग्रन्थ में दी गई है जिसमें गुरु परम्परा में अमितसेन को पुन्नाटगण का अग्रणी और शतवर्षजीवी बतलाया है। पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है।[१] आचार्य जिनसेन ने ग्रन्थ-रचना का समय स्वयं शक सं० ७०५ (सन् ७८३ ई०) निर्दिष्ट किया है।[२]

नवम शताब्दी

४. जिनदत्तचरित[३] (श्री गुण भद्र)

इस काव्य का नाम जिनदत्तकथासमुच्चय भी है।[४] इस चरितकाव्य में अंग देशस्थ वसन्तपुर नगर के निवासी सेठ जीवदेव के पुत्र जिनदत्त का आख्यान निबद्ध है, इसमें ९ सर्ग हैं अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध होते हुए भी रचना अत्यन्त सरस एवं भाव-गरिमा से सम्पन्न है।

५. उत्तरपुराण (श्री गुण भद्र)

इस पुराण काव्य में अजितनाथ तीर्थङ्कर से लेकर महावीर पर्यन्त २३ तीर्थङ्करों, ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, प्रतिनारायण और जीवन्धर स्वामी आदि कुछ विशिष्ट पुरुषों के चरित अंकित किये गये हैं। कथावस्तु पर्याप्त विस्तृत है।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों (जिनदत्त चरित तथा उत्तरपुराण) के रचयिता श्री गुणभद्र हैं। गुणभद्र आचार्य जिनसेन के शिष्य थे। दशरथ गुणभद्र के शिष्य थे।[५] डा० गुलाबचन्द्र चौधरी ने जिनदत्त चरित को आचार्य जिनसेन के शिष्य गुणभद्र की रचना न मानकर किसी पश्चात्कालीन भट्टारक गुणभद्र की रचना माना है।[६] पर वस्तुतः यह जिनसेन के शिष्य गुणभद्र की ही रचना जान पड़ती है।

आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण की रचना शक सं० ८२० (सन् ८९८ ई०) में की थी।[७] दशम शताब्दी के एक शिलालेख में गुणभद्र का उल्लेख किया गया है।[८] अतः इनका काल ई० सन् की ९वीं शताब्दी का अन्त मानना चाहिए।

दशम शताब्दी

६. चन्द्रप्रभचरित[९] (वीर नन्दि)

इस चरितकाव्य में जैन धर्म के अष्टम तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ का चरित अंकित किया गया

१.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ० २
२.वही, पृ० ३
३.माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई से वि० सं० १९७३ में प्रकाशित
४.जिनरत्नकोश, पृ० - १३५
५.दृष्टव्य - उत्तरपुराण, प्रशस्ति पद्य, ९-१४
६.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० ६२
७.उत्तरपुराण, प्रशस्ति पद्य, ३५-३६
८.जैन शिलालेख संग्रह, भाग-४, लेखांक-४८६
९.निर्णयसागर प्रेस बम्बई से १८९४ एवं १९२६ ई० में प्रकाशित

है । जैन संस्कृत चरित काव्यों में यह उत्तम महाकाव्य है । इसमें १८ सर्गों में १६९७ पद्य हैं। पूर्वजन्म आख्यान प्रधान होते हुये भी इस महाकाव्य में जैनेतर महाकाव्यों की शैलियाँ अपनाई गई हैं । काव्य अत्यन्त सरस बन पड़ा है ।

रचयिता : रचनाकाल

चन्द्रप्रभ चरित के रचयिता वीरनन्दि हैं, जो नन्दिसंघ के देशीगण के आचार्य थे । इनके गुरु का नाम अभयनन्दि और गुरु के गुरु का नाम गुणनन्दि था ।[१] महाकवि वादिराज ने पार्श्वनाथ चरित (१०२५) में चन्द्रप्रभचरित के रचयिता के रूप में इनका स्मरण किया है ।[२] इससे ये इनके पूर्ववर्ती हैं । डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनका समय ९५०-९९९ ई० माना है ।[३]

७. प्रद्युम्नचरित[४] : (महासेन)

इस चरितकाव्य में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित गुम्फित है । इसमें १४ सर्ग हैं । काव्य में कहीं-कहीं गेयता दिखाई पड़ती है । इस महाकाव्य में गीतगोविन्द की झलक देखी जा सकती है ।

रचयिता : रचनाकाल

प्रद्युम्नचरित के रचयिता महासेन लाट वर्गन (लाडवागड) संघ के आचार्य थे, ये चारुकीर्ति के शिष्य तथा राजा भोजराज के पिता सिंधुराज के महामात्य पप्पट के गुरु थे ।[५] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री प्रद्युम्नचरित का रचना काल ९७४ ई० के आसपास मानते हुये इन्हें १०वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रखते हैं ।[६] डा० रामजी उपाध्याय ने इनका रचनाकाल दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के सन्धिकाल को माना है ।[७]

८. वर्धमान चरित[८] : (असग)

वर्धमानचरित को महावीर चरित या सन्मति चरित भी कहा जाता है । इसका कथानक गुणभद्र के उत्तरपुराण के ७४वें पर्व से लिया गया है । विविध अलंकारों एवं छन्दों का प्रयोग इस काव्य में देखने को मिलता है । इसमें १८ सर्ग हैं अतः यह महाकाव्य की श्रेणी में पूर्णरूप से आता है । इसकी अवान्तर कथाओं में मारीच, विश्वनन्दि, हरिषेण, सूर्यप्रभ आदि की कथाओं का प्रयोग हुआ है ।

९. शान्तिनाथचरित[९]

शान्तिनाथचरित भी एक महाकाव्य है । इसका दूसरा नाम शान्तिनाथपुराण भी है । इसमें

१.जिनरत्नकोश, पृ० ११९ २. पार्श्वनाथचरित, १/३०

३.संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ७७

४.माणिक्यचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला बम्बई से १९१७ ई० में प्रकाशित ५. जिनरत्नकोश, पृ०-२६४

६.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-५७

७.संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, भाग-१, पृ०-४१०

८.श्री पार्श्वनाथ जिनदास फड़कुले द्वारा प्रकाशित होकर १९३१ ई० में सोलापुर से प्रकाशित । हि० अनु० सहित मू० कि० कापडिया द्वारा सूरत से १९१८ में प्रकाशित

९.मराठी अनुवाद सहित श्री पा० जि० फड़कुले द्वारा सोलापुर से प्रकाशित

पौराणिकता का समावेश अधिक है। इसमें १६ सर्ग हैं। वर्धमानचरित की अपेक्षा इसमें भाषा, रसभाव-संयोजन, प्रकृति-चित्रण आदि कम हैं।

१०. चन्द्रप्रभ चरित[१] : (असग)

चन्द्रप्रभचरित नाम का काव्य भी मिलता है।

रचयिता : रचनाकाल

उक्त वर्धमानचरित, शान्तिनाथचरित तथा चन्द्रप्रभचरित के रचयिता महाकवि असग हैं। इनके पिता का नाम पटुमति, माता का नाम वैरेति तथा इनके पुत्र का नाम जिनाप था। इनके गुरु नागनन्दि व्याकरण काव्य और जैन शास्त्रों के विद्वान् थे। महाकवि असग ने शक सं० ९१० (सन् ९८८ ई०) में वर्धमानचरित की रचना की थी। अतएव कवि का समय ईसा की दसवीं शताब्दी है।[२]

एकादश शताब्दी

११. पाश्र्वनाथचरित[३] : (वादिराज)

पाश्र्वनाथ चरित की सर्गान्त पुष्पिका में इसका नाम पाश्र्वनाथ जिनेश्वरचरित और यशोधरचरित में काकुत्स्थचरित कहा गया है।[४] इस चरितकाव्य में १२ सर्ग हैं। यह भी एक महाकाव्य है, जिसमें भगवान पाश्र्वनाथ का चरित्र-चित्रण किया गया है।

१२. यशोधरचरित[५] : (वादिराज)

इसमें चार सर्ग हैं, कवि ने सर्गान्त पुष्पिका में महाकाव्य कहा है।[६] परन्तु यह एक खण्डकाव्य है। यशोधरचरित में राजा यशोधर की कथा वर्णित है। अहिंसा का प्रभाव दिखाने के लिए राजा यशोधर की कथा जैन धर्म में बहु-प्रचलित रही है।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों (पाश्र्वनाथचरित और यशोधरचरित) के रचयिता वादिराज हैं। वादिराज के गुरु का नाम मतिसागर और गुरु के गुरु का नाम श्रीपाल देव था। पाश्र्वनाथचरित की रचना शक सं० ९४७ (सन् १०२५ ई०) में हुई थी।

१३. नागकुमारचरित[७] : (मल्लिषेण)

नागकुमारचरित पाँच सर्गात्मक काव्य हैं इसमें श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य प्रकट करने

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९ २. द्रष्टव्य - तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ० ११-१२

३. मा० दि० जैन ग्रन्थमाला बम्बई से वि० सं० १९७३ में प्रकाशित ४. यशोधरचरित, १/६

५. कर्नाटक यूनिवर्सिटी धारवाड़ से १९६३ ई० में प्रकाशित

६. इति वादिराजविरचिते यशोधरचरिते महाकाव्ये - सर्गः ११ यशोधरचरित सर्गान्त पुष्पिका।

७. हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में है

के लिए नागकुमार का चरित निबद्ध किया गया है। नागकुमार जैन परम्परानुसार २२वें कामदेव हैं। काव्य सरल और भाषा प्रवाहमयी है। भावनाओं का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता मल्लिषेण हैं, जो जिनसेन के शिष्य और कनकसेन के प्रशिष्य थे। नागकुमार चरित की प्रशस्ति में मल्लिषेण ने अपने गुरु का नाम नरेन्द्रसेन लिखा है।[1] ये नरेन्द्रसेन जिनसेन के भाई थे। अतः सम्भव है कि दोनों ही भाई इनके गुरु रहे हों। मल्लिषेण ने अपने महापुराण की समाप्ति शक सं० ९६९ (सन्१०४७ ई०) में की थी।[2] वादिराज ने (सन्१०२५ ई०) में इनके गुरु नरेन्द्रसेन का उल्लेख किया है।[3] अतः वादिराज के समकालीन या कुछ ही पश्चाद्वर्ती ये रहे होंगे, ऐसा निश्चित है।

द्वादश शताब्दी

१४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित[4] : (हेम चन्द्र)

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में जैन धर्ममान्य तिरसठ शलाकापुरुषों का चरित वर्णित है यह १० पर्वों में विभक्त काव्य रचना है। अन्तिम पर्व सबसे विशाल है, जिसमें तीर्थङ्कर महावीर का जीवन चरित वर्णित है। वास्तव में इसे काव्य न कहकर पुराण कहा जाना चाहिये।

१५. कुमारपालचरित[5] : (हेम चन्द्र)

इस काव्य के १८ सर्ग हैं, जिसमें १० संस्कृत भाषा में तथा ८ प्राकृत में लिखे गये हैं। इसको द्वयाश्रय महाकाव्य भी कहते हैं। यह एक ऐतिहासिक-महाकाव्य है। यह काव्य चालुक्य वंशीय नरेश कुमारपाल पर लिखा गया है। कुमारपाल पर जैनों ने अनेक काव्य लिखे हैं। यद्यपि ये शैव थे, परन्तु जैनधर्म में उनकी अगाध श्रद्धा थी।

रचयिता : रचनाकाल

उक्त दोनों चरितकाव्यों (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, कुमारपालचरित) के रचयिता हेमचन्द्र हैं, जो गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह के समकालीन प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् थे। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसकी रचना इन्होंने चालुक्य राजा कुमारपाल के अनुरोध पर की थी।[6] डा० वुल्हर ने इसकी रचना का समय वि० सं० १२१५-१२२८ माना है।[7]

१.नागकुमारचरित, प्रशस्ति पद्य, ४-५ २.महापुराण पद्य - २

३.शुद्धयन्नीतिनरेन्द्रसेनमकलंकवादिराजं सदा ।
श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्रमतुलं वन्दे जिनेन्द्रं मुदा ।। - न्यायविनिश्चयविवरण प्रशस्ति पद्य २ का उत्तरार्ध

४.जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर से प्रकाशित १९०६ से १९१३ ई० तक

५.भाण्डारकर ओरियंटल सीरीज पूना १९३६ ई०, द्वितीय संस्करण

६.द्र० - कुमारपाल-चरित, पर्व-१०, प्रशस्ति पद्य, १६-२० ७.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-७६

१६. धर्मनाथचरित : (नेमि चन्द्र)

यह चरित काव्य जैन धर्म के पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथ पर लिखा गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता नेमिचन्द्र हैं, जिन्होंने धर्मनाथचरित की रचना वि० सं० १२१२ (सन् ११५५ ई०) में की थी । संभवतः ये वही नेमिचन्द्र हैं जिन्होंने वि० सं० १२१३ (सन् ११५६ ई०) में प्राकृत में अनन्त-नाह-चरिय की रचना की थी ।[१]

१७. द्विसंधान महाकाव्य[२] : (धनञ्जय)

इस संधान काव्य में आद्यन्त राम और कृष्ण का चरित निर्वाह सफलता के साथ किया है । यह काव्य १८ सर्गात्मक है । इसका दूसरा नाम राघवपाण्डवीय भी है । एक साथ रामायण तथा महाभारत की कथा कुशलतापूर्वक निबद्ध है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि धनञ्जय हैं । द्विसन्धान काव्य के अन्तिम पद्य की व्याख्या में टीकाकार ने इनके पिता का नाम वासुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है । कवि के स्थितिकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं । डा० के० वी० पाटक ने इनका समय ई० सन् ११२३-११४० के मध्य माना है । डा० ए० बी० कीथ ने भी पाठक का मत ही स्वीकार किया है ।[३]

१८. धन्यकुमारचरित[४] : (गुण भद्र मुनि)

यह चरितकाव्य सात सर्गों वाला काव्य है । जिसमें (गुणभद्र के) उत्तरपुराण के आधार पर अनुष्टुप् छन्दों में धन्यकुमार का जीवनचरित्र वर्णित किया गया है । धन्यकुमार भगवान महावीर के समकालीन राजगृह के श्रेष्ठिपुत्र थे ।

रचयिता : रचनाकाल

धन्यकुमार चरित के रचयिता गुणभद्रमुनि थे, जो चन्देल नरेश परमादि के शासन काल में हुये हैं । ये नेमिसेन के शिष्य और माणिक्य सेन के प्रशिष्य थे ।[५] ललितपुर के पास मदनपुर से प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ११८२ ई० में महोबा के चन्देलवंशी राजा परमादिदेव पर पृथिवीराज (सोमेश्वर के पुत्र) ने आक्रमण किया था ।[६] इस आधार पर समकालीन होने से इनका समय १२ वीं शताब्दी माना जा सकता है ।

१.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० १०४

२.भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९१४ में प्रकाशित

३.ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, ए० बी० कीथ, पृ०-१७३

४.आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में इसकी हस्तलिखित प्रति है ।

५.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-५९

६.वही, पृ० ६०

१९. अममस्वामिचरित[1] : (मुनि रत्न सूरि)

यह बीस सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें भावी तीर्थंङ्कर अमम का चरित निबद्ध किया गया है। जिसमें श्रीकृष्ण के जीव को आगामी उत्सर्पिणीकाल में अमम नामक तीर्थंङ्कर होने की कथा वर्णित है। जिसमें प्रसंगवश अनेक अवांतर कथायें भी आई हैं।

बीसवें तीर्थंङ्कर पर मुनिसुव्रतचरित होने का भी उल्लेख मिलता है।[2]

रचयिता : रचनाकाल

इन काव्यों के रचयिता मुनिरत्नसूरि हैं जो चन्द्रगच्छीय समुद्रघोष के शिष्य थे। समुद्रघोषसूरि चन्द्रप्रभसूरि के प्रशिष्य और धर्मघोषसूरि के शिष्य थे। अममस्वामिचरित की रचना उन्होंने वि० सं० १२५२ (११९५ ई०) में की थी।[3] अतः इनका समय १२वीं शताब्दी का अन्त है।

२०. पाण्डवचरित[4] : (देव प्रभ सूरि)

यह एक १८ सर्गों का महाकाव्य है जिसमें महाभारत के पर्वों के अनुसार १८ पर्वों का कथानक है। प्रायः इसमें पौराणिक शैली प्रयुक्त हुई है। इसके छठे सर्ग में नलोपाख्यान, १६वें सर्ग में तीर्थंङ्कर नेमिनाथ का चरित वर्णन और १८वें सर्ग में पाण्डवों का निर्वाण तथा बलदेव का स्वर्गगमन वर्णित है।

२१. मृगावतीचरित[5] : (देव प्रभ सूरि)

इस चरितकाव्य में वत्सराज उदयन की माता का चरित वर्णित है। वे राजा चेटक की पुत्री और तीर्थंङ्कर महावीर की उपासिका थी। इसमें उदयन तथा वासवदत्ता का चरित्र भी वर्णित हुआ है। मध्य में प्रसंगवश अवान्तर कथायें भी आयी हैं।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों चरितकाव्यों के रचयिता देवप्रभसूरि हैं। पाण्डवचरित की प्रशस्ति से पता चलता है कि देवप्रभसूरि मलधारी गच्छ के थे। उन्होंने इस ग्रन्थ को देवानन्द सूरि के अनुरोध पर रचा था। इनका रचनाकाल १२वीं शताब्दी तथा १६वीं शताब्दी का सन्धिकाल है।

त्रयोदश शताब्दी

२२. सनत्कुमारचरित[6] : (जिनपाल उपाध्याय)

इस चरितकाव्य में चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार का चरित्र २४ सर्गों में वर्णित है। काव्य

१.पन्यासमणिविजय ग्रन्थमाला अहमदाबाद से वि० सं० १९९८ में प्रकाशित

२.संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, भाग-१, रामजी उपाध्याय

३.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-१२०

४.निर्णयसागर काव्यमाला सीरीज, १९११ ई० में प्रकाशित

५.हीरालाल हंसराज जामनगर, १९०९ ई० में प्रकाशित

६.हस्तलिखित प्रति - श्री अगरचन्द्र जी नाहटा बीकानेर के व्यक्तिगत भण्डार में है।

में धार्मिकता का अभाव है । अतः जैन दर्शन तथा आचार का प्रतिपादन इसमें नहीं के बराबर है । शास्त्रीय नियमों और काव्यत्व की दृष्टि से उत्कृष्ट है ।

रचयिता : रचनाकाल

सनत्कुमारचरित के रचयिता जिनपाल उपाध्याय हैं । ये चन्द्रकुल की प्रवरवज्र शाखा के जिनपतिसूरि के शिष्य थे । इन्होंने १२०५ ई० में षट्स्थानवृत्ति की रचना की थी ।[१] अतएव इनका समय १३ वीं शताब्दी का प्रारम्भ होना चाहिए ।

२३. पार्श्वनाथचरित[२]: (माणिक्य चन्द्र सूरि)

पार्श्वनाथचरित १० सर्गात्मक महाकाव्य है । इसमें ६७७० श्लोक प्रमाण हैं । इसमें अंगीरस शान्त है । अन्य रसों का अंगरूप में उपयोग हुआ है । काव्य अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है । यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है ।

२४. शान्तिनाथचरित[३]: (माणिक्य चन्द्र सूरि)

यह चरित ८ सर्गात्मक काव्य है । जिसमें शान्तिनाथ भगवान् का चरित निबद्ध है । इसकी भाषा अत्यन्त सरल है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरित काव्यों के रचयिता माणिक्यचन्द्रसूरि हैं, जो राजगच्छीय नेमिचन्द्र के प्रशिष्य और सागरचन्द्र के शिष्य थे । ये महामात्य वस्तुपाल के समकालीन थे । इन्होंने पार्श्वनाथ की रचना वि० सं० १२८६ (सन् १२२९ ई०) में की थी ।[४] इससे इनका समय १३वीं शताब्दी है ।

२५. संघपतिचरित[५]: (उदयप्रभ सूरि)

इस काव्य का दूसरा नाम धर्माभ्युदय भी है । महामात्य वस्तुपाल ने गिरनार की तीर्थयात्रा के लिए एक संघ निकाला था । उसके वस्तुपाल संरक्षक या संघपति थे । इसी को आधार मानकर कवि ने इसका नाम संघपतिचरित रखा था । धर्माभ्युदय नाम भी प्रचलित है । इसमें धर्म के अभ्युदय के लिए किये गये वस्तुपाल के कार्य वर्णित हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

संघपतिचरित काव्य के रचयिता श्री उदयप्रभसूरि हैं, जो आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य थे । उन्होंने १२३३ ई० के पूर्व ही इस काव्य की रचना की थी ।[६]

---

१. जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ०-३९५ (मो० द० देसाई)
२. हस्तलिखित प्रति शान्तिनाथ भण्डार खम्भात में है ।
३. ताड़पत्रीय प्रति हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन में है ।
४. जिनरत्नकोश, पृ०-२४५
५. धर्माभ्युदय महाकाव्य नाम से सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई से वि० सं० २००५ में प्रकाशित
६. द्रष्टव्य - धर्माभ्युदय महाकाव्य, श्री कनैयालाल मा० दवे लिखित ग्रन्थ परिचय, पृ०-४०

२६. चतुर्विंशतिजिनेन्द्रचरित[१]: (अमर सूरि)

यह चरित काव्य २४ अध्यायों तथा १८०२ पद्यों में रचित है। इसमें २४ तीर्थङ्करों का क्रमशः संक्षिप्त जीवनचरित वर्णित है। इसमें काव्य तत्त्वों का अभाव है।

२७. अम्बडचरित[२]: (अमर सूरि)

विशेष रूप से श्वेताम्बर जैन परम्परा में बौद्धों की तरह प्रत्येक बुद्धों की कल्पना की गई है। इस काव्य में अम्बड नामक प्रत्येक बुद्ध का वर्णन किया है जो सरल किन्तु सशक्त गद्य में लिखा गया है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरितों के रचयिता अमरसूरि हैं, जिन्होंने बालभारत की रचना की थी। ये वाथरगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। इन्होंने १३वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक काव्यों की रचना की थी।

२८. धन्यशालि-चरित[३]: (श्री पूर्ण चन्द्र सूरि)

इस काव्य में ६ परिच्छेद तथा १५ पद्यात्मक प्रशस्ति हैं। इसमें तीर्थङ्कर महावीर के समकालीन राजगृह के निवासी धन्यकुमार और शालिभद्र नामक दो श्रेष्ठियों का वर्णन है।

२९. अतिमुक्तकचरित[४]: (श्री पूर्ण चन्द्र सूरि)

अतिमुक्तकचरित में कुमार अतिमुक्तक का वर्णन किया गया है। ये तीर्थङ्कर महावीर के समय के एक राजकुमार थे।

३०. कृतपुण्यचरित: (श्री पूर्ण चन्द्र सूरि)

इस चरित काव्य में कृतपुण्य सेठ का चरित्र चित्रण निबद्ध है।[५]

रचयिता : रचनाकाल

ऊपर लिखित तीनों चरितों के रचयिता श्री पूर्णचन्द्रसूरि हैं, जो जिनपति सूरि के शिष्य थे। धन्यशालिभद्र काव्य की प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए ग्रन्थ प्रणयन का समय वि० सं० १२८५ (सन् १२२८ ई०) में और स्थान जैसलमेर बतलाया है।[६]

३१. वासुपूज्यचरित[७]: (श्री वर्धमान सूरि)

यह चरितकाव्य ४ सर्गों का काव्य होते हुए भी विशाल काव्य (महाकाव्य) है।

१.गायकवाड़ औरयिन्टल सीरीज बड़ौदा, १९३२ ई० में प्रकाशित

२.हीरालाल हंसराज जामनगर, १९१० ई० में प्रकाशित

३.जिनदत्त सूरिज्ञान भण्डार सूरत, १९३४ ई० में प्रकाशित

४.जिनदत्त सूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत, १९४४ ई० में प्रकाशित

५.जिनरत्नकोश, पृ०-९५

६.धन्यशालिभद्रकाव्य, प्रशस्ति पद्य, ११-१२

७.जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर १९०९ तथा हीरालाल हंसराज जामनगर, १९२८ ई० में प्रकाशित

आह्लादनांकित इस काव्य की भाषा सरल, सालंकार, तथा वर्णनानुकूल है। काव्य में यत्र-तत्र धार्मिकता एवं दार्शनिकता भी है। अधिकांश काव्य अनुष्टुप् छन्द में लिखा गया है, पर वसन्ततिलका छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

वासुपूज्यचरित काव्य के रचयिता श्री वर्धमानसूरि हैं। ग्रन्थ प्रशस्ति के अनुसार ये नागेन्द्रगच्छीय विजयसिंहसूरि के शिष्य थे। वासुपूज्य चरित की रचना वि० सं० १२९९ (सन् १२४२ ई) में अणहिल्लपुर में हुई थी।[१] यह ही इनका एकमात्र काव्य उपलब्ध होता है।

३२. धर्मशर्माभ्युदय : (महाकवि हरिश्चन्द्र)

इस महाकाव्य में १५वें तीर्थङ्कर धर्मनाथ का चरित वर्णित है। इसकी कथावस्तु २१ सर्गों में विभक्त है। धर्म-शर्म (धर्म और शान्ति) के अभ्युदय के वर्णन का लक्ष्य होने से कवि ने प्रस्तुत महाकाव्य का यह नामकरण किया है। काव्य की कथावस्तु उत्तरपुराण से ग्रहण की है।[२]

३३. जीवंधर चम्पू: (महाकवि हरिश्चन्द्र)

जीवन्धर चम्पू में पुण्यपुरुष जीवन्धर का चरित वर्णित किया गया है। इसकी कथावस्तु ११ स्तम्भों में विभक्त है।

रचयिता : रचनाकाल

दोनों काव्यों के रचयिता महाकवि हरिश्चन्द्र हैं। ग्रन्थ में दी गयी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कवि राजमान्य कुल के थे। ये दिगम्बर मतानुयायी थे।[३] पाटन भण्डार के उपलब्ध धर्मशर्माभ्युदय की सं० १२९७ की सर्वप्रथम रचना उपलब्ध है। अतः विद्वानों का मत है कि उक्त काव्य की रचना सं० १२५७ से १२८७ के बीच कभी हुई है।

३४. मुनिसुव्रतचरित[४]: (अर्हद्दास)

यह काव्य १० सर्गों में विभक्त शास्त्रीय रचना है, जिसमें २०वें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत की कथा वर्णित है।[५] इसका कथानक गुणभद्र के उत्तरपुराण पर आधारित तथा भाषा आलंकारिक है।

३५. पुरुदेव चम्पू[६]: (अर्हद्दास)

यह चम्पूकाव्य आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव (आदिनाथ) के चरित पर वर्णित है। इसमें १० स्तवक हैं। कवि ने गद्य व पद्य दोनों ही प्रौढ़ रूप में लिखे हैं। इसमें काव्यात्मकता के सभी

---

१. द्रष्टव्य - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-१०२ २. काव्यमाला ८, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ४८९-४९०
४. देवकुमार ग्रन्थमाला, जैन सिद्धान्त भवन, आरा, १९१९ में प्रकाशित ५. जिनरत्नकोश, पृ०-३१२
६. भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७२ ई०

गुण विद्यमान हैं ।[१]

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों काव्यों के रचयिता का नाम अर्हद्दास है । ग्रन्थों के आन्तरिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ये पहले जैनानुयायी नहीं थे । वैदिक पुराणों तथा हिन्दू धर्म का उन्हें प्रगाढ़ परिज्ञान था । ये सागार-धर्मामृत आदि के रचयिता पं० आशाधर के समकालीन थे । क्योंकि मुनिसुव्रतचरित में उन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने आशाधर की उक्तियों से सत्पथ पाया है ।[२] श्री पार्श्वनाथ जिनदास फड़कुले इनका समय ईसा की तेरहवीं शताब्दी मानते हैं ।[३] जिनरत्नकोश में अर्हद्दास को पं० आशाधर का शिष्य कहा है । परन्तु ये उनके शिष्य नहीं बल्कि उनसे प्रभावित अवश्य थे, ऐसा सुनिश्चित है ।

३६. शान्तिनाथचरित[४]: (अजित प्रभ सूरि)

यह छः सर्गात्मक काव्य है जिसमें शन्तिनाथ भगवान् का चरित्र निबद्ध है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता का नाम अजितप्रभसूरि है जो पौर्णमिकगच्छ के वीरप्रभसूरि के शिष्य थे। इन्होंने शान्तिनाथचरित की रचना वि० सं० १३०७ (सन् १२५० ई०) में की थी ।[५] इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार है - चन्द्रसूरि → देवसूरि → तिलकप्रभ → वीरप्रभ → अजितप्रभ ।[६]

३७. प्रत्येकबुद्धचरित[७]: (लक्ष्मी तिलकगणि)

इस काव्य का दूसरा नाम प्रत्येकबुद्ध महाराजर्षिचतुष्कचरित्र भी है । प्रत्येकबुद्धचरित में करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति नामक चार प्रत्येक बुद्धों का चरित वर्णित है । यह १७ सर्ग वाला काव्य है ।[८]

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता लक्ष्मीतिलकगणि हैं । इनके साथ-साथ जिनरत्नसूरि भी इस काव्य के रचयिता हैं । ये दोनों जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे । इन्होंने प्रत्येकबुद्धचरित की रचना वि० सं० १३११ (१२५४ ई०) में की थी ।[९]

३८. अभयकुमारचरित[१०]: (चन्द्र तिलक सूरि)

यह द्वादश सर्गात्मक महाकाव्य है । इसमें महाराजा श्रेणिक (बिम्बसार) के पुत्र

१.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ४, पृ०-५३
२. मुनिसुव्रतचरित, पृ०-१/६४-६५
३.पुरुदेव चम्पू भूमिका, पृ०-४
४.जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर १९१६ ई० में प्रकाशित
५.जिनरत्नकोश, पृ० ३७९
६.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० १०७
७.जैसलमेर बृहद् भण्डार में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं ।
८.जिनरत्नकोश, पृ० २६३
९.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० - १६४
१०.जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, १९१७ ई० में दो भागों में प्रकाशित

अभयकुमार का बड़ा ही सुन्दर रुचिकर आख्यान निबद्ध है। भाषा मुहावरेदार तथा लोकोक्तिपरक है। काव्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट है।

रचयिता : रचनाकाल

अभयकुमारचरित के रचयिता चन्द्रतिलक उपाध्याय हैं। ये चन्द्रगच्छीय थे। इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार है - वर्धमानसूरि → जिनेश्वरसूरि → जिनवल्लभसूरि → जिनदत्तसूरि → जिनचन्द्रसूरि → जिनपतिसूरि → जिनेश्वरसूरि → चन्द्रतिलक उपाध्याय।[१] अभयकुमारचरित की रचना विं० सं० १३१२,(सन् १२५५ ई०) में हुई थी।[२]

३९. मल्लिनाथचरित[३]: (विनय चन्द्र सूरि)

यह चरित ८ सर्गात्मक काव्य है। इसमें १९वें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ का चरित वर्णित है। मध्य में महासती दमयन्ती का कथानक भी आया है।

४०. पार्श्वनाथचरित[४]: (विनय चन्द्र सूरि)

यह एक विनयांकित महाकाव्य है। इसमें धार्मिक विचारधाराओं का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। यह अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन में हैं। काव्य सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है।

रचयिता : रचनाकाल

ऊपर वर्णित चरितों के रचयिता का नाम विनयचन्द्रसूरि है। ग्रन्थ प्रशस्ति के अनुसार इनकी वंश परम्परा इस प्रकार है - चन्द्रगच्छीय शीलगुणसूरि → मानतुंगसूरि → रविप्रभसूरि → (१) नरसिंहसूरि, (२) नरेन्द्रसूरि, (३) विनयचन्द्रसूरि। इनका साहित्यकाल विं० सं० १२८६ से १३४५ तक (१२२९-१२८८ ई०) तक माना जाता है।[५]

४१. पार्श्वनाथचरित[६]: (सर्वानन्द सूरि)

यह चरित ५ सर्गात्मक काव्य है। इसमें १५६ पृष्ठ नहीं हैं। कुल ३४५ पृष्ठ हैं।[७] यह अत्यन्त जीर्ण अवस्था में उपलब्ध काव्य है।

४२. चन्द्रप्रभचरित[८]: (सर्वानन्द सूरि)

यह १३ सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें आश्चर्यजनक अवान्तर कथाओं तथा धार्मिक उपदेशों की भरमार है। जिससे यह काव्य नीरस सा लगता है।

४३. जगडु-चरित: (सर्वानन्द सूरि)

इस काव्य में ७ सर्ग हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका बड़ा ही महत्त्व है। क्योंकि इसमें

१.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-१९३ २.जिनरत्नकोश, पृ०-१२
३.हस्तलिखित प्रति हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन में है। ४.भूराभाई हर्षचन्द्र यन्त्रालय, वाराणसी, २४३८
५.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ०-१२३ ६.ताडपत्रीय प्रति संघवी पाडा भण्डार पाटन में है
७.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ०-१२१ ८.ह०लिखित प्रति हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन में है

राजा बीसलदेव का वर्णन और १२५५-५८ ई० के गुजरात के भीषण काल का चित्रण किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

वर्णित तीनों काव्यों के रचयिता का नाम सर्वानन्दसूरि है। सर्वानन्दसूरि सुधर्मागच्छीय शीलभद्रसूरि के प्रशिष्य और गुणरत्नसूरि के शिष्य थे। चन्द्रप्रभचरित के अन्त में प्राप्त गुरुपरम्परा इस प्रकार है - जयसिंह → चन्द्रप्रभसूरि → धर्मघोषसूरि → शीलभद्रसूरि → सर्वानंदसूरि[1] इन्होंने पार्श्वनाथचरित की रचना १२३४ ई०[2] तथा चन्द्रप्रभचरित की रचना १२४५ ई०[3] में की थी। अतएव इनका समय १३वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

४४. शान्तिनाथचरित[4]: (मुनि देव सूरि)

यह सात सर्गात्मक काव्य है। इसमें पुराणों की तरह अलौकिक व आश्चर्यजनक प्रसंगों का पूर्णता से प्रयोग हुआ है। काव्य में अनुष्टुप् - छन्द का प्रयोग है। सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन है। भाषा सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है।

रचयिता : रचनाकाल

शान्तिनाथचरित के रचयिता मुनिदेवसूरि हैं। ये वृहद्गच्छीय मदनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने शान्तिनाथचरित की रचना वि० सं० १३२२ (सन् १२६५ ई०) में की थी।

४५. श्रेयांसनाथचरित[5]: (मान तुंग सूरि)

यह १३ सर्गात्मक महाकाव्य है। सर्गों का नामकरण विषयवस्तु के आधार पर किया गया है। सर्गान्त में भावी कथानक की संक्षेप में सूचना दे दी गई है।

रचयिता : रचनाकाल

श्रेयांसनाथचरित के रचयिता मानतुंगसूरि हैं। ये रत्नप्रभसूरि के शिष्य थे। इन्होंने श्रेयांसनाथचरित की रचना वि० सं० १३३२ (सन् १२७५ ई०) में की थी।[6]

४६. प्रभावकचरित[7]: (प्रभा चन्द्र)

यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। क्योंकि इसमें विक्रम की प्रथम शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक के आचार्यों के चरित्र निबद्ध हैं। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में यह अपने ढंग का एकमात्र चरित्र काव्य है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रभावक चरित के रचयिता प्रभाचन्द्र हैं। प्रभाचन्द्र चन्द्रकुलीय राजगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य

---

१. द्रष्टव्य - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १८
२. जिनरत्नकोश, पृ० - २४५
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ९८
४. ह०लि० प्रति हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर पाटन में है
५. जैन आत्मानंद सभा भावनगर से गुजराती भाषान्तर १९५३ ई० में प्रकाशित
६. जिनरत्नकोश, पृ० ४००
७. निर्णयसागर प्रेस बम्बई, सम्पा० पं० हरिनन्द शर्मा, १९०९ ई० में प्रकाशित

थे। प्रभाचन्द्र ने प्रभावक चरित की रचना हेमचन्द्र के स्वर्गवास के ८० वर्ष बाद वि० सं० १३३४ (सन् १२७७ ई०) में की थी। इसका संशोधन आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था।[१]

४७. श्रेणिकचरित[२] : (जिनप्रभसूरि)

श्रेणिक चरित अष्टादश सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें राजा श्रेणिक (बिम्बसार) का चरित वर्णित है। काव्य में धार्मिक भावना का अतीव प्रदर्शन हुआ है। प्रस्तुत काव्य के अध्ययन से तत्कालीन समाज की जानकारी मिलती है। इस समय बौद्धों का बाहुल्य था।[३]

रचयिता : रचनाकाल

श्रेणिक चरित, जिनप्रभसूरि द्वारा रचित काव्य है। ये लघुखरतरगच्छ के संस्थापक जिनसिंहसूरि के प्रशिष्य थे। तत्कालीन भारत का बादशाह मुहम्मद तुगलक जिनप्रभसूरि का बहुत सम्मान करता था। जिनप्रभसूरि ने श्रेणिकचरित की रचना वि० सं० (सन् १२९९ ई०) में की थी।[४]

४८. शान्तिनाथचरित : (रामचन्द्रमुमुक्षु)

यह ग्रन्थ अद्यावधि अनुपलब्ध है। इसमें शान्तिनाथ भगवान् का चरित्र वर्णित है।

रचयिता : रचनाकाल

पुण्याश्रय कथाकोश के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध रामचन्द्र मुमुक्षु ने शान्तिनाथचरित १३ वीं शताब्दी में रचा। कन्नड़ कवि नागराज ने १३३१ ई० में रचित चम्पू में इनकी कृति का उल्लेख किया है। अतएव वे उनसे पूर्ववर्ती तो हैं ही।[५]

४९. शालिभद्रचरित[६] : (धर्मकुमार)

यह सात सर्गात्मक महाकाव्य है। इसका कथानक हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के १०वें पर्व महावीर चरित से लिया गया है। इसमें महावीर के समकालीन एक धनी गृहस्थ शालिभद्र का चरित निबद्ध किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

शालिभद्रचरित के रचनाकार धर्मकुमार हैं। ये नागेन्द्र कुल के बिबुधप्रभ के शिष्य थें। उन्होंने शालिभद्रचरित की रचना वि० सं० १३३४ (१२७७ ई०) में की थी।[७]

५०. श्रेणिकचरित[८] : (देवेन्द्र सूरि)

इस चरित काव्य में ७२९ पद्य हैं। मध्य में प्राकृत पद्यों का भी समावेश है। इसमें

१.द्रष्टव्य - जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-२०५

२.जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग पालिताना से ७ सर्ग प्रकाशित, शेष जैन शास्त्र भण्डार सम्भात में हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

३.द्रष्टव्य - जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६२

४.स्कंदास्येषु कृशानुशीलगमिते संवत्सरे वैक्रमे । बालेन्दु प्रतिपत्तिथौ विषगते सम्पूर्णमेवच्छनौ ।
आदर्शेव्यधितो दयाकरमुनिः काव्यप्रियोऽस्मादिभम्। आरम्भस्य निमित्तभावमभजन्तस्यैव चाभ्यर्थना ॥ - श्रेणिकच०, प्र० प० - २

५.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ० ७०-७१

६.यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस १९१० ई० में प्रकाशित

७. जिनरत्नकोश, पृ० २८२

८.ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर जैन संस्था, रतलाम, १९३७ ई० में प्रकाशित

राजा श्रेणिक तथा उसकी पारिवारिक, धार्मिक घटनाओं का वर्णन है। यह एक विशुद्ध धार्मिक चरितकाव्य है।

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता देवेन्द्रसूरि हैं जो जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास वि० सं० १३२७ में (सन् १२७० ई० में) हुआ था।[१] अतः इनका काल इससे पूर्व निश्चित है।

५१. नेमिचरित[२]: (विक्रम)

यह काव्य निर्णयसागर प्रेस बम्बई से हिन्दी पद्यानुवाद सहित एवं इन्दौर से "नेमिदूत" नाम से छपा है। किन्तु इसका यथार्थ नाम नेमिचरित है। कवि ने स्वयं लिखा है :-

"श्रीमन्नेमेः चरितविशदं सांगणस्यांगजन्मा।

चक्रे काव्यं बुधजनमनः प्रीतये विक्रमाख्यः ।।[३]

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस काव्य में दूत नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। इस काव्य में मेघदूत के १२५ श्लोकों को अपनाया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता सांगण के पुत्र विक्रम थे। श्री नाथूराम प्रेमी ने इनका समय १३ वीं शताब्दी माना है और विनयसागर ने १४वीं शताब्दी।[४]

तेरहवीं शताब्दी के उक्त चरितकाव्यों के अतिरिक्त अनेक अन्य काव्य भी उपलब्ध हैं। इनमें वासवसेन कृत यशोधरचरित महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसकी हस्तलिखित प्रति बम्बई के सरस्वती भवन और जयपुर के बाबा दुलीचन्द्र भण्डार में है।[५]

चतुर्दश शताब्दी

५२. पुण्डरीकचरित[६]: (कमल प्रभ सूरि)

यह चरितकाव्य आठ सर्गों में विभक्त पौराणिक महाकाव्य है। प्रथम दो सर्गों में भगवान ऋषभदेव और भरत बाहुबलि का वर्णन है। इसके बाद पुण्डरीक का चरित्र निबद्ध है। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार पुण्डरीक भगवान ऋषभदेव के प्रथम गणधर थे। इसमें कहीं-कहीं पर गद्य

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १९०

२. निर्णयसागर प्रेस बम्बई एवं दि० जैनागम प्रकाशन समिति कोटा से वि० सं० २००५ में प्रकाशित। वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रका० समिति इन्दौर से भी इसी नाम से वी० नि० सं० २५०० में प्रकाशित

३. नेमिदूत (इन्दौर प्रकाशन) पद्य १२६

४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ५४९

५. वही, पृ० - २८९ की पाद टिप्पणी - १

६. जैन साहित्य संशोधन पूना, १८२५ ई० "बृहट्टिपणिका" में प्रकाशित

का भी प्रयोग किया गया है। इस काव्य में प्राकृत के गद्य-पद्य भी आ गये हैं। इसमें महाकाव्य के नियमों का पालन नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को शास्त्रीय ज्ञान नहीं था।

रचयिता : रचनाकाल

पुण्डरीक चरित काव्य के रचयिता का नाम "कमलप्रभसूरि" है। ये पूर्णिमागच्छ के रत्नप्रभसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थ प्रशस्ति में इन्होंने अपनी लम्बी गुरु परम्परा दी है। पुण्डरीकचरित की रचना कवि ने गुजरात प्रांत के धवलक (धोलका) नगर में वि० सं० १३७२ (१३१५ ई०) में की थी।[१]

५३. महापुरुषचरित[२]: (मेरुतुंग सूरि)

यह चरित ५ सर्गात्मक काव्य है। इसमें ऋषभदेव, अजितनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँच तीर्थङ्करों का जीवन चरित वर्णित है।

५४. कामदेवचरित[३]: (मेरुतुंग सूरि)

यह चरित भगवान महावीर के समकालीन एक धनी धार्मिक गृहस्थ कामदेव पर रचित है। इसका रचनाकाल वि० सं० १४०९ (१३५२ ई०) है।

५५. संभवनाथचरित[४]: (मेरुतुंग सूरि)

तृतीय तीर्थङ्कर संभवनाथ पर रचित यह चरितकाव्य है जो वि० सं० १४१३ (१३५६ई०) में रचित है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त तीनों चरितकाव्यों के रचयिता मेरुतुंगसूरि हैं। ये अंचल गच्छ के आचार्य हैं। कामदेवचरित तथा संभवचरित की रचनाओं के आधार पर इनका समय १४वीं शताब्दी है।

५६. शान्तिनाथचरित[५]: (मुनि भद्र सूरि)

इस महाकाव्य में १८ सर्ग हैं जिसमें स्तुतियों का प्राधान्य है। अवान्तर कथाओं का भी प्रयोग हुआ है। भाषा प्रौढ़, सालंकार और स्वाभाविक है। कवि ने इस काव्य की रचना, रघुवंश महाकाव्य, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित के समकक्ष जैन साहित्य में काव्य निर्माण के लिए की है।[६]

रचयिता : रचनाकाल

यह चरितकाव्य "मुनिभद्रसूरि" रचित है। ग्रन्थ प्रशस्ति में मुनिभद्रसूरि ने अपना परिचय दिया है। ये वृहद्गच्छ के गुणभद्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने शान्तिनाथचरित की रचना वि०

१.जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १८२ २.जिनरत्नकोश, पृ०-८४ ३.वही, पृ०-वही
४.जिनरत्नकोश, पृ०-४२२ ५.यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस वी० नि० संवत् २४३७ में प्रकाशित
६.शान्तिनाथचरित, प्रशस्ति पद्य, १३-१४

सं० १४१० (१३५३ ई०) में की थी ।[१]

५७. पार्श्वनाथचरित[२]: (भाव देव सूरि)

यह आठ सर्गात्मक महाकाव्य है। इसके आठों सर्गों में क्रमशः ८८५, १०६५, १६२, २५४, १३, ६०, ८३६, ३९३ पद्य हैं। अन्त में ३० पद्यात्मक प्रशस्ति हैं। पंचम सर्ग से पार्श्वनाथ का चरित प्रारम्भ होता है। बीच-बीच में अवान्तर कथाओं का समावेश है जिनमें मुख्य रूप से धर्म का उपदेश दिया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

पार्श्वनाथचरित काव्य के रचयिता "भावदेवसूरि" हैं। ग्रन्थ प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि खाण्डिलगच्छ के चन्द्रकुल में भावदेवसूरि नामक एक विद्वान् हुए हैं। जिनके तीन शिष्य थे - १. विजयसिंहसूरि, २. वीरसूरि, और ३. जिनदेवसूरि। पार्श्वनाथचरित के रचनाकार भावदेवसूरि इन तीनों में से जिनदेवसूरि के शिष्य थे।[३] पार्श्वनाथचरित की रचना कवि ने वि० सं० १४१२ (१३५५ ई०) में पत्तन नामक नगर में की थी। अतः भावदेवसूरि १४ वीं शती के विद्वान हैं।

५८. नेमिनाथचरित[४]: (कीर्ति राज उपाध्याय)

यह १२ सर्गों में विभक्त महाकाव्य है। इसकी भाषा प्रौढ़ किन्तु मधुर एवं प्रसादगुण युक्त है। इस काव्य में अन्य काव्यों की तरह पूर्वजन्मों का विवेचन नहीं किया गया है। द्वितीय सर्ग का प्रभात काल का वर्णन एवं अष्टम सर्ग का षड्ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता खरतरगच्छीय श्री कीर्तिराज उपाध्याय हैं। इन्होंने नेमिनाथचरित की रचना वि० सं० १४१५ (१३५८ ई०) में की थी।[५]

५९. वरांगचरित[६]: (वर्धमान भट्टारक)

वरांगचरित त्रयोदश सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें श्रीकृष्ण और नेमिनाथ के समकालीन वरांगकुमार के धीरोदत्त जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। विभिन्न घटनाओं को नाटकीय रूप प्रदान कर कवि ने उन्हें सजीव बना दिया है।

रचयिता : रचनाकाल

वरांगचरित काव्य के रचयिता वर्धमान भट्टारक हैं जो मूल संघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छीय आचार्य थे।[७] बलात्कारगण में दो भट्टारकों के नाम मिलते हैं - प्रथम न्यायदीपिका के रचयिता

---

१. अन्तरिक्षरजती इदीश्वरब्रह्मवक्त्रशशिसंख्यवत्सरे ।
विक्रमे शुचितयो जयातिथौ शान्तिनाथ चरितं व्यरच्यत ।। - शान्तिनाथचरित प्रशस्ति पद्य, १७

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस वी०नि०सं० २४३८ में प्रकाशित
३. पार्श्वनाथचरित, प्रशस्ति पद्य, ४-१४
४. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला भावनगर, वी० नि० सं० २४४० में प्रकाशित
५. नेमिनाथचरित्र, १२/५३
६. रावजी सखाराम दोशी सोलापुर, १९२७ ई० में प्रकाशित
७. जिनरत्नकोश, पृ०-३४२

धर्मभूषण के गुरु और द्वितीय हुम्मच शिलालेख के लेखक। वरांगचरित के रचयिता इन दोनों में प्रथम जान पड़ते हैं। डा० दरबारी लाल कोठिया ने धर्मभूषण को सायणाचार्य का समकालीन मानते हुये उनका समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध तथा पन्द्रहवीं शतो का प्रथम पाद माना है।[१] उनके गुरु होने से इनका समय चौदहवीं शताब्दी का मध्य ठहरता है।

६०. कुमारपाल चरित[२] : (जय सिंह सूरि)

यह दस सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें गुजरात के राजा कुमारपाल के जीवनचरित्र और उनके धार्मिक कार्यों का वर्णन है। इसका आधार हेमचन्द्राचार्य का कुमारपालचरित (द्व्याश्रय काव्य) जान पड़ता है।

६१. जिनयुगल चरित : (जय सिंह सूरि)

इसमें १० प्रस्ताव हैं। प्रथम प्रस्ताव से छठे प्रस्ताव तक ३१०० श्लोक प्रमाण हैं। इसमें ऋषभदेव का चरित्र वर्णित है। तथागच्छीय ज्ञान भण्डार जैसलमेर में इसकी ताड़पत्रीय प्रति उपलब्ध है।[३]

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरितों के रचयिता जयसिंहसूरि हैं। ये कृष्णात्रिगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार है - जयसिंहसूरि (प्रथम) → प्रसन्नचन्द्र → महेन्द्रसूरि → जयसिंहसूरि (द्वितीय) → जयसिंहसूरि (तृतीय) इनमें जयसिंह सूरि (तृतीय) ही प्रकृत कुमारपाल तथा जिनयुगल चरित के रचयिता थे। इनके गुरु महेन्द्रसूरि बादशाह मुहम्मदशाह द्वारा सम्मानित थे। कुमारपाल चरित की रचना इन्होंने वि० सं० १४२२ (१३६५ ई०) में की थी।[४]

६२. वर्धमानचरित : (भट्टारक पद्मनन्दि)

वर्धमानचरित काव्य में ३०० पद्य हैं। इसमें भगवान महावीर का जीवन चरित्र निबद्ध है।

रचयिता : रचनाकाल

वर्धमानचरित काव्य के रचयिता भट्टारक पद्मनन्दि हैं। ये प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। प्रभाचन्द्र का पट्टाभिषेक १२५३ ई० में रत्नकीर्ति के पट्ट पर हुआ था। प्रभाचन्द्र ७४ वर्ष तक पट्टाधीश रहे। प्रभाचन्द्र ने ही अपने पट्ट पर इन्हें १३२७ ई० में नियुक्त किया था। एक शिलालेख के अनुसार भट्टारक पद्मनन्दि ने १३९३ ई० में मूर्तिप्रतिष्ठा कराई थी।[५] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनका समय ईसा की १४ वीं शताब्दी माना है।[६]

---

१. न्यायदीपिका प्रस्तावना, पृ० ९९-१००

२. हीरालाल हंसराज जामनगर, १९१५ ई० तथा गौडी जी जैन उपाश्रय पायधुनि बम्बई, १९२६ ई० में प्रकाशित

३. श्री अगरचन्द्र नाहटा द्वारा लिखित (महावीर संबन्धी एक अज्ञात संस्कृत चरित्र, लेख, श्रमण वर्ष २६ अंक १-२ नवं० दिसं० '७४, पृ० ५३-५६

४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - २२५

५. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक २३९, पृ० २३६

६. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ० ३२३, भाग-३

६३. धन्यशालिभद्रचरित : (भद्र गुप्त)

धन्यशालिभद्रचरित में श्रेणिक (बिम्बसार) और भगवान महावीर के समकालीन धन्यकुमार और शालिभद्र नामक दो श्रेष्ठि कुमारों का वर्णन किया गया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इन्हें प्रत्येक बुद्ध की श्रेणी में रखा गया है।

रचयिता : रचनाकाल

धन्यशालिभद्रचरित के रचयिता भद्रगुप्त हैं जो रुद्रपल्लीयगच्छ के देवगुप्त के शिष्य थे। इन्होंने इस काव्य की रचना वि० सं० १४२८ (१३७१ ई०) में की थी।[१]

६४. जम्बूस्वामीचरित[२] : (जय शेखर सूरि)

यह छः सर्गों वाला काव्य है। इसमें भगवान महावीर के अन्तिम गणधर और २४वें कामदेव जम्बूस्वामी का चरित वर्णित किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

जम्बूस्वामी चरित के रचयिता जयशेखरसूरि हैं। इन्होंने वि० सं० १४३६ (१३७९ ई०) में इस काव्य की रचना की है। ये अंचलगच्छ के विद्वान् थे।[३]

६५. मलयसुन्दरीचरित[४] : (जय तिलक सूरि)

मलयसुन्दरीचरित ४ प्रस्तावों और ८२४ पद्यों का काव्य है। इसमें मलयसुन्दरी का बड़ा ही रोचक उपाख्यान वर्णित है। मलयसुन्दरी भगवान पार्श्वनाथ के निर्वाण से १०० वर्ष बाद उत्पन्न हुई थी।[५]

६६. हरिविक्रमचरित[६] : (जय तिलक सूरि)

यह १२ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें हरिविक्रम का जीवन चरित वर्णित हैं।

६७. सुलभाचरित : (जय तिलक सूरि)

यह ८ सर्गों का महाकाव्य है जिसमें सुलभा का चरित निबद्ध है। सुलभा, भगवान महावीर के समय श्राविका संघ की प्रधान श्राविका थी, जो अपने सम्यक्त्व की दृढ़ता के लिये प्रसिद्ध थी।

रचयिता : रचनाकाल

ऊपर वर्णित तीनों चरितों के रचयिता जयतिलक सूरि हैं जो आत्मागच्छीय आचार्य थे। इनके समय की निश्चित जानकारी नहीं है किन्तु सुलभाचरित की प्राचीनतम प्रति वि० सं० १४५३ (१३९६ ई०) की मिलने के कारण उससे ये प्राचीन हैं।[७]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ०-१८८
२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, गुजराती अनुवाद सहित १९१३ में प्रकाशित
३. जिनरत्नकोश, पृ० १३२
४. देवचन्द्रलालभाई जैन पुस्तकोद्धार भाण्डागार (१९१६ ई० में प्रकाशित)
५. मलयसुन्दरी चरित, ८/८२४
६. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१६ ई० में प्रकाशित
७. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७

६८. ऋषभदेवचरित : (वाग्भट)

यह चरितकाव्य संप्रति उपलब्ध नहीं है। परन्तु वाग्भट ने अपने काव्यानुशासन में "यथा स्वोपज्ञऋषभदेवचरित महाकाव्ये" कहकर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।[1]

रचयिता : रचनाकाल

ऋषभदेवचरित के रचयिता काव्यानुशासन प्रणेता वाग्भट हैं। ये वाग्भट नेमिनिर्वाण तथा वाग्भटालंकार के प्रणेता से भिन्न हैं। ये मेवाड़ के प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के अनुज थे। इनका समय ईसा की चौदहवीं शताब्दी है।[2]

६९. स्थूलभद्र चरित[3] : (जयानन्द सूरि)

इस काव्य में स्थूलभद्र का चरित अंकित है। श्वेताम्बर साहित्य में स्थूलभद्र मान्य व्यक्ति हैं। इनका उल्लेख विविध प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

रचयिता : रचनाकाल

स्थूलभद्र चरित के रचयिता जयानन्दसूरि हैं। ये तपागच्छीय सोमतिलकसूरि के शिष्य थे। इनका समय ईसा की चौदहवीं शताब्दी है।[4]

पंचदश शताब्दी

७०. शान्तिनाथचरित[5] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

यह सोलह अधिकारों में विभक्त है। इसमें पौराणिक तत्त्व अधिक हैं।

७१. वीरवर्धमानचरित[6] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

यह चरित १९ परिच्छेदों वाला महाकाव्य है। इसके बीच-बीच में दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों का समावेश किया गया है।

७२. ऋषभदेव चरित[7] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

यह २० सर्गों का महाकाव्य है जिसमें भगवान ऋषभदेव का चरित अंकित किया गया है।

७३. यशोधरचरित[8] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

इसमें आठ सर्ग हैं जिनमें यशोधर महाराज का लोकप्रिय चरित वर्णित किया गया है। इसमें मुख्य रूप से अहिंसा का महत्त्व प्रतिपादित है।

---

१. यत्पुष्पदन्तमुनिसेनमुनीन्द्रमुख्यैः, पूर्वं कृतं सुकविभिस्तदहंविधितनु।
हास्याय कस्य ननु नास्ति तथापि सन्तः, श्रण्वन्तु कंचन ममापि सुयुक्तिसूक्तिम् ॥ (काव्यानुशासन निर्णयसागर द्वि०सं० पृ०.१५)

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ५, पृ० - ११५

३. श्रेष्ठी देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला १९१५ ई० में प्रकाशित   ४. जिनरत्नकोश, पृ० ४५५

५. जिनवाणी प्रकाशन कलकत्ता, शांतिपुराण नाम से १९३९ ई० में प्रकाशित

६. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७४ ई० में प्रकाशित   ७. जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, १९३४ में प्रकाशित

८. हस्तलिखित प्रति पार्श्वनाथ शास्त्र भण्डार जयपुर में है

७४. धन्यकुमारचरित[1] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

यह सात सर्गात्मक काव्य है जिसमें धन्यकुमार श्रेष्ठी का चरित गुम्फित किया गया है।

७५. सुकुमाल चरित[2] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

सुकुमाल चरित ९ सर्गों का काव्य है । इसमें पूर्वभवों का चित्रण करते हुए बताया है कि एक जन्म में लिया गया वैर जन्म-जन्मान्तर तक दुःखदायी होता है ।

७६. सुदर्शनचरित[3] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

इसमें शीलव्रत के पालन करने वाले दृढ़ी, सेठ सुदर्शन का चरित वर्णित है जो ८ सर्गों में विभक्त है ।

७७. श्रीपालचरित[4] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

इस चरितकाव्य में सात परिच्छेद हैं । इसमें श्रीपाल का कुष्ठी होना, समुद्र में गिरा दिया जाना, शूली पर चढ़ा दिया जाना, आदि परम्परागत घटनाओं का वर्णन है । श्रीपाल कोटिभट्ट कहलाते थे क्योंकि इनमें एक करोड़ योद्धाओं के बराबर बल था ।

७८. मल्लिनाथचरित[5] : (भट्टारक सकल कीर्ति)

यह सात सर्गों में विभक्त, ८७४ श्लोकात्मक काव्य है जिसमें मल्लिनाथ के चरित के साथ-साथ ग्राम नगरादि का बड़ा ही रमणीय वर्णन किया गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त वर्णित सभी काव्यों के रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं । विपुलचरितकाव्य प्रणयन की दृष्टि से भट्टारक सकलकीर्ति का स्थान सर्वोत्कृष्ट है । इनके पिता का नाम कर्मसिंह व माता का नाम शोभा था । ये हूंवड जाति के थे और अणहिलपुरपट्टन के रहने वाले थे ।[6]

प्रो० विद्याधर जोहरापुर ने सकलकीर्ति का समय वि० सं० १४५० से १५१० (१३९३-१४५३ ई०) माना है ।[7] किन्तु डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर इनका काल वि० सं० १४४३-१४९९ (१३८६-१४४२ ई०) सिद्ध किया है ।[8] इस प्रकार इनका समय १४वीं शताब्दी का अन्तिम चरण तथा पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा है ।

७९. श्रीधरचरित[9] : (माणिक्य सुन्दर सुरि)

यह ९ सर्गों का महाकाव्य है । कवि की कल्पना का वैशिष्ट्य आश्चर्यजनक है । श्रीधरचरित काव्य की रचना वि० सं० १४६३ (१४०६ ई०) में की थी ।[10]

१.हिन्दी अनुवाद जैन भारती बनारस १९११ में प्रकाशित

२. रावजी सखाराम दोशी सोलापुर, वी० नि० सं० २४५५ में प्रकाशित

३.रावजी सखाराम दोशी सोलापुर, वी० नि० सं० २४५३ में प्रकाशित

४.हस्तलिखित प्रति नया मन्दिर दिल्ली में है

५.जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता १९२२ ई० में प्रकाशित

६.भट्टारक सम्प्रदाय, पृ०-१५८

७.वही, पृ०-१५८

८.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-३२९

९.चरित्रस्मारक ग्रन्थमाला, पाण्डवी पोल, अहमदाबाद वि० सं० २००७ में प्रकाशित

१०. द्रष्टव्य - जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ३६३

रचयिता : रचनाकाल

श्रीधरचरित काव्य के रचयिता माणिक्यसुन्दरसूरि हैं। ये आंचलिकगच्छीय मेरुतुंगसूरि के शिष्य थे। इनके विद्यागुरु जयशेखर सूरि थे।

८०. जम्बूस्वामीचरित : (ब्रह्म जिन दास)

यह ११ सर्गात्मक काव्य है जिसमें केवलज्ञानी जम्बूस्वामी का चरित वर्णित किया गया है। भाषा वर्णनानुकूल और सुभाषितों से समन्वित है।

८१. रामचरित : (ब्रह्म जिन दास)

इस चरितकाव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित वर्णित है। इसकी कथावस्तु रविषेणाचार्य के पद्मपुराण से ली गई है। भाषा सरल एवं आलंकारिक है। धार्मिकता तथा दार्शनिकता का प्रतिपादन हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों चरितों के रचयिता का नाम ब्रह्मजिनदास है। ये कुन्दकुन्दान्वय सरस्वतीगच्छ के भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य थे। सकल-कीर्ति का समय ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। अतः इनका समय इनके बाद माना जा सकता है इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि मनोहर, मल्लिदास, गुणदास और नेमिदास इनके शिष्य थे। मूलतः ये राजस्थानी भाषा के कवि थे, पर संस्कृत में भी इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

८२. जयानन्दकेवलिचरित[१] : (मुनि सुन्दर सूरि)

इस चरित में जयानन्द केवली का चरित वर्णित है। प्रत्येकबुद्धों के समान कुछ केवलियों के चरितों पर भी जैन कवियों ने रोचक काव्य लिखे हैं।

रचयिता : रचनाकाल

जयानन्द केवली चरित के रचयिता मुनिसुन्दरसूरि हैं। ग्रन्थ की सर्गान्त पुष्पिका से ज्ञात होता है कि मुनिसुन्दरसूरि ज्ञानसागर के प्रशिष्य और सोमसुन्दर सूरि के शिष्य थे।[२] इन्होंने इस काव्य की रचना वि० सं० १४७८ और १५०३ के मध्य (१४२१-१४४६ ई०) में की थी।[३]

८३. महिपालचरित[४] : (चारित्र सुन्दरगणि)

महिपालचरित में राजा महीपाल की कल्पित चरितगाथा है। जिसमें १४ सर्ग हैं।

८४. कुमारपाल चरित[५] : (चारित्र सुन्दर गणि)

यह चरित १० सर्गात्मक काव्य है। इस काव्य में कुमारपाल व उसके वंशजों की कुछ

---

१. हीरालाल हंसराज जामनगर, वि० सं० १९६८ में प्रकाशित

२. इति श्रीतपागच्छनायकश्रीदेवसुन्दरसूरिश्रीज्ञानसागरसूरिशिष्यश्रीसोमसुन्दरसूरिपदप्रतिष्ठितैः श्रीमुनिसुन्दरसूरिभिः विरचिते जयानन्द राजर्षि केवलिचरित्रे - सर्गान्त पुष्पिका

३. जिनरत्नकोश, पृ० १३४

४. हीरालाल हंसराज जामनगर १९०८ ई० एवं १९१७ ई० में प्रकाशित

५. जैन आत्मानंद सभा भावनगर वि० सं० १९७३ में प्रकाशित

ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। काव्य वीर रस प्रधान है।

रचयिता : रचनाकाल

महिपालचरित तथा कुमारपालचरित के रचयिता चारित्रसुन्दरगणि हैं। ये भट्टारक रत्नसिंह सूरि के शिष्य थे। रत्नसिंहसूरि सत्तपोगच्छ के आचार्य थे। कुमारपाल चरित का रचनाकाल १४३० ई० के आसपास है।[१] अतः इसी के आसपास महीपालचरित की भी रचना की होगी।

८५. विक्रमचरित[२] : (रामचन्द्र)

इस चरितकाव्य में राजा विक्रमादित्य का चरित्र निबद्ध किया गया है। इसमें प्रधानतया विक्रमादित्य राजा द्वारा प्राप्त पंचदण्डछत्र की घटना का वर्णन है। इसे पंचदण्डकथात्मक विक्रमचरित्र भी कहते हैं। प्रो० वेबर ने इस नाम से जर्मनी भाषा में प्रस्तावना के रोमनलिपि में बर्लिन से १८७७ ई० में छपाया भी था।

रचयिता : रचनाकाल

विक्रमचरित काव्य के रचयिता रामचन्द्र हैं जो साधुपूर्णिमागच्छ के अभयचन्द्र के शिष्य थे। विक्रमचरित की रचना वि० सं० १४९० (१४३३ ई०) में की थी।[३]

८६. पृथ्वीचन्द्रचरित : (जयसागर गणि)

पृथवीचन्द्रचरित में राजर्षि पृथवीचन्द्र का वर्णन है। इनकी गणना प्रत्येकबुद्धों में की गई है। ये किसी के उपदेश दिये बिना ही सम्यक्दर्शन के प्रभाव से केवलज्ञान पाकर मुक्त हो गये थे।

रचयिता : रचनाकाल

पृथ्वीचन्द्र चरित के रचयिता जयसागरगणि हैं। ये जिनवर्धन सूरि के शिष्य थे, जो खरतरगच्छ के थे। इन्होंने इस चरित्र की रचना वि० सं० १५०३ (१४४६ ई०) में की थी।[४]

८७. पाण्डवपुराण : (यशः कीर्ति)

इस ग्रन्थ में ३४ सन्धियाँ हैं। इस ग्रन्थ में पाण्डव और कौरवों के चरित के साथ श्रीकृष्ण का चरित भी अंकित किया गया है। रचना की भाषा-शैली प्रौढ़ है।[५]

८८. हरिवंशपुराण : (यशः कीर्ति)

इसमें १३ सन्धियाँ हैं और २७१ कड़वक हैं, जिसमें हरिवंश की कथा अंकित है।[६]

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों पुराणों के रचयिता यशःकीर्ति हैं। काष्ठासंघ के मथुरान्वय पुष्करगण के

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० -४१६

२. हीरालाल हंसराज जामनगर द्वि० सं०, १९१४ ई० में प्रकाशित

३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ३७९

४. जिनरत्नकोश, पृ० २५६

५. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४११

६. वही, पृ० ४११

भट्टारकों में भट्टारक यशः कीर्ति का नाम आया है। यों तो यशः कीर्ति नामक कई आचार्य हुये हैं।[१] श्री जोहरा पुरकर ने इनका समय १४८६-१४९७ वि० सं० माना है। परमोपाचल के मूर्तिलेखों में इनका निर्देश वि० सं० १५१० तक पाया जाता है। अतः इनका समय वि० सं० पन्द्रहवीं शती का अन्तिम भाग तथा १६ वीं का पूर्वभाग है।[२]

८९. धन्यकुमारचरित[३] : (जयानन्द)

धन्यकुमारचरित पाँच अध्यायात्मक काव्य है। इसमें धन्यकुमार श्रेष्ठीकुमार का चरित वर्णित किया गया है।

९०. स्थूलभद्रचरित[४] : (जयानन्द)

स्थूलभद्रचरित में स्थूलभद्र का चरित्र निबद्ध किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों धन्यकुमारचरित व स्थूलभद्रचरित के रचयिता जयानन्द हैं, जो खरतरगच्छीय जिनशेखर के प्रशिष्य और जिनधर्मसूरि के शिष्य थे। इन्होंने धन्यकुमार चरित की रचना वि० सं० १५१० (१४५३ ई०) में की थी।[५]

९१. भोजचरित[६] : (राजवल्लभ)

यह ग्रन्थ पाँच प्रस्तावों में विभक्त है। प्रस्तावों का नामकरण कथावस्तु के आधार पर किया गया है, जिनमें महाराजा भोज का चरित्र निबद्ध है। भारतीय परम्परा में महाराज भोज बड़े ही लोकप्रिय हैं। इस ग्रन्थ में विशेष रूप से अन्नदान की महिमा का प्रतिपादन किया गया है।

९२. चित्रसेनपद्मावतीचरित[७] : (राजवल्लभ)

इस चरितकाव्य में महाराजा चित्रसेन एवं महारानी पद्मावती का चरित्र निबद्ध है। इसका दूसरा नाम पद्मावतीचरित्र भी मिलता है।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों काव्यों के रचयिता राजबल्लभ हैं। सर्गान्त पुष्पिका से ज्ञात होता है कि राजबल्लभ धर्मघोषगच्छ के वादीन्द्र श्री धर्मसूरि की सन्तान-परम्परा में श्री महीतिलक सूरि के शिष्य थे।[८] डा० बी० सी० एच० छाबड़ा तथा एस० शंकरनारायणन् राजबल्लभ का समय १४४० ई० या उसके कुछ पहले मानते हैं।[९] इसी प्रकार डा० हीरालाल जैन और डा० ए० एन० उपाध्ये उनका समय १५ वीं शताब्दी के मध्य मानते हैं।[१०]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ० ४०९
२. वही, पृ०-४१०
३. जैन आत्मानंद सभा भावनगर, वि० सं० १९७३ ई० में प्रकाशित
४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, १९१५ ई० में प्रकाशित
५. जिनरत्नकोश, पृ० - १८७
६. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६४ ई० में प्रकाशित
७. हीरालाल हंसराज जामनगर, १९२४ ई० में प्रकाशित
८. इतिधर्मघोषगच्छेवादीन्द्र श्रीधर्मसूरिसन्ताने श्रीमहीतिलकसूरिशिष्य पाठक राजबल्लभ कृते ... । सर्गान्त पुष्पिका
९. भोजचरित, इन्ट्रोडक्शन, पृ०-५
१०. वही, ग्रन्थमाला सम्पादकीय

९३. श्रीचन्द्रकेवलीचरित[1] : (शील सिंह गणि)

इसमें श्रीचन्द्रकेवली का चरित्र अंकित है। यह ४ अध्याय काव्य है। इसमें क्रमशः ६१३, ७०५, ७२४, और ९६६ कुल ३००८ पद्य हैं। आकार की दृष्टि से यह महाकाव्य के समान जान पड़ता है।

रचयिता : रचनाकाल

चन्द्रकेवलीचरित के रचयिता शीलसिंहगणि हैं, जो तपागच्छीय जयानन्दसूरि के शिष्य थे। इन्होंने इस काव्य की रचना वि० सं० १४९४ (१४३७ ई०) में की थी।[2]

९४. वस्तुपालचरित[3] : (जिन हर्ष गणि)

वस्तुपालचरित में महामात्य वस्तुपाल का चरित्र वर्णित है। यह एक ऐतिहासिक चरितकाव्य है।

रचयिता : रचनाकाल

वस्तुपालचरित के रचयिता जिनहर्षगणि हैं, जो जयसुन्दरसूरि के शिष्य थे। ये जयसुन्दरसूरि सोमसुन्दरसूरि के प्रशिष्य और मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य थे। ये तपागच्छ से संबद्ध थे।[4] इन्होंने वस्तुपाल चरित की रचना वि० सं० १४९७ (१४४० ई०) में की थी।[5]

९५. नागकुमारचरित : (धर्मधर)

यह चरितकाव्य पुष्पदन्त के जयकुमारचरित के आधार पर लिखा गया है, जिसमें नागकुमार का चरित वर्णित है।

९६. श्रीपालचरित : (धर्मधर)

इस चरितकाव्य में चम्पापुर के राजकुमार श्रीपाल का वर्णन किया गया है। एक षड्यन्त्र से श्रीपाल का राज्य छीन लिया गया था तथा कोढ़ियों में शरण पाने से उन्हें कोढ़ हो गया था। बाद में सिद्धचक्र के पाठ से उसका कोढ़ दूर हुआ।

रचयिता : रचनाकाल

नागकुमार चरित तथा श्रीपाल चरित के रचायता धर्मधर हैं। जिनरत्नकोश के अनुसार धर्मधर वृद्धतपागच्छीय विजयरत्नसूरि के शिष्य थे।[6] कवि ने नागकुमार चरित में मूलसंघ सरस्वतीगच्छ के भट्टारक पद्मनन्दी शुभचन्द्र और जिनचन्द्र का उल्लेख किया है।[7] अतएव इन्हें मूलसंघ के सरस्वती गच्छीय होना चाहिये। इन्होंने नागकुमार चरित की रचना वि० सं० १५११ (१४५४ ई०) में की थो।[8]

१.हीरालाल हंसराज जामनगर, १९१५ ई० में प्रकाशित
२.जिनरत्नकोश, पृ०-३९६
३.हीरालाल हंसराज जामनगर, १९११ ई० में प्रकाशित
४.वस्तुपाल चरित - प्रस्तावना पुष्पिका
५.भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ०-१७२
६.जिनरत्नकोश, पृ० - ३९७
७. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-५८
८.वही, भाग-४, पृ० ५८

९७. सुदर्शनचरित[१] : (विद्या नन्दि)

इस काव्य में १२ अध्याय हैं जिनमें सुदर्शनमुनि का चरित्र वर्णित है। सुदर्शनमुनि को जैन परम्परा में महावीर का समकालीन अन्तःकृत्केवली माना गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता विद्यानन्दि हैं जो मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रशिष्य और देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे।[२] डा० गुलाबचन्द्र चौधरी ने इनका कार्यकाल वि० सं० १४८९-१५३८ (१४३२-१४८१ ई०) माना है।[३] सुदर्शनचरित की रचना गंगधरपुरी में वि० सं० १५१३ (१४५६ ई०) में हुई थी।[४]

९८. पृथ्वीचन्द्रचरित[५] : (सत्यराज गणि)

यह गद्य पद्यात्मक ग्रन्थ है। जिसमें पृथ्वीचन्द्र का चरित्र वर्णित है।

९९. श्रीपालचरित[६] : (सत्यराज गणि)

इस चरितकाव्य में श्रीपाल का चरित्र निबद्ध है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरितों के रचयिता सत्यराजगणि हैं। ये पूर्णिमा गच्छीय गुणसमुद्रसूरि के प्रशिष्य और पुण्यरत्नसूरि के शिष्य थे। इन्होंने पृथ्वीराजचन्द्रचरित की रचना वि० सं० १५३५ (१४७८ ई०) में की थी।[७]

१००. अंजनाचरित : (भुवन कीर्ति)

अंजनाचरित में हनुमान की माता एवं पवनञ्जय की पत्नी सती अन्जना का आख्यान निबद्ध है।

रचयिता : रचनाकाल

अंजनाचरित के रचयिता भुवनकीर्ति हैं। श्री विद्याधर जोहरापुरकर ने भुवनकीर्ति को भट्टारक सकलकीर्ति का शिष्य मानते हुए इनका समय वि० सं० १५०८-१५२७ (१४५१-१४७० ई०) माना है।[८] सुदर्शनचरित में भुवनकीर्ति को देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक का शिष्य बतलाया गया है।[९] जिनरत्नकोश में भी इनको देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक का शिष्य कहा गया है।[१०] श्री विद्याधर जोहरापुर ने बलात्कारगण ईडरशाखा के काटपट्ट में सकलकीर्ति के बाद भुवनकीर्ति को रखा है[११] किन्तु इनके मध्य देवेन्द्रकीर्ति को होना चाहिए।

१. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७० ई० में प्रकाशित
२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४
३. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १९८
४. सुदर्शनचरित, प्रस्तावना, पृ०-१७
५. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला भावनगर, वि० सं० १९७६ में प्रकाशित
६. विजयदानसूरीश्वर ग्रन्थमाला सूरत, वि० सं० १९९५ में प्रकाशित
७. पृथ्वीचन्द्रचरित, पृ० ७४
८. भट्टारक सम्प्रदाय, बलात्कारगण ईडरशाखा कालपट्ट १५८
९. सुदर्शनचरित, १२/४९
१०. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४
११. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५८

१०१. विमलनाथचरित[1] : (ज्ञान सागर)

यह ५ सर्गों का काव्य है। जिसमें तीर्थंकर विमलनाथ का वर्णन है। बीच-बीच में अवान्तर कथाओं का समावेश है।

१०२. शान्तिनाथचरित : (ज्ञान सागर)

यह शान्तिनाथ के चरित पर वर्णित काव्य रचना है।[2]

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों विमलनाथचरित तथा शान्तिनाथचरित के रचयिता ज्ञानसागर हैं। ग्रन्थ में दी गई अन्तिम प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ज्ञान सागर बृहत्तपागच्छ के रत्नसिंहसूरि के शिष्य थे। विमलनाथ चरित की रचना इन्होंने वि० सं० १५१७ (१४६० ई०) में की थी।[3]

१०३. भुवनभानुचरित[4] : (इन्द्र हंस गणि)

इस ग्रन्थ का दूसरा नाम बलिरनरेन्द्र कथानक भी है।

१०४. विमलचरित : (इन्द्र हंस गणि)

इस चरितकाव्य में तीर्थङ्कर विमलनाथ का चरित नहीं अपितु इसमें मंत्री विमलशाह का चरित्र वर्णित है। इस काव्य का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

१०५. बलिराजचरित : (इन्द्र हंस गणि)

बलिराजचरित नामक एक काव्य उपलब्ध है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त तीनों चरितों के रचयिता इन्द्रहंसगणि हैं। ये धर्म हंसगणि के शिष्य थे। भुवनभानुचरित की रचना वि० सं० १५५४ (१४९७ ई०) में की थी।[5] विमलचरित की रचना वि० सं० १५७८ (१५२१ ई०) में की थी[6] तथा बलिराजचरित की रचना वि० सं० १५५७ (१५०० ई०) में की थी।[7]

१०६. प्रद्युम्नचरित[8] : (सोम कीर्ति)

यह १६ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र निबद्ध है। इसकी रचना वि० सं० १५३० (१४७३ ई०) में की गई थी।[9]

१०७. यशोधरचरित[10] : (सोम कीर्ति)

इसमें आठ सर्ग हैं जिनमें यशोधर का लोकप्रिय परम्परागत आख्यान निबद्ध है। इसकी

१. हीरालाल हंसराज जामनगर १९१० ई० में प्रकाशित
२. जैन सा० का बृहद् इ०, भाग - ६, पृ० - १०३, ११०
३. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८
४. हीरालाल हंसराज जामनगर १९१५ ई० में प्रकाशित
५. जिनरत्नकोश, पृ० २९८
६. वही, पृ० ३५८
७. वही, पृ० २९८
८. हिन्दी अनुवाद जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई १९१० ई० में प्रकाशित
९. जिनरत्नकोश, पृ० २६४
१०. हस्तलिखित प्रति नया मन्दिर दिल्ली में है

रचना वि० सं० १५३६ (१४७९ ई०) में हुई थी ।[1]

१०८. सप्तव्यसनचरित[2] : (सोम कीर्ति)

सप्तव्यसनचरित में सातों व्यसनों के कारण दुःख भोगने वाले व्यक्तियों के चरित्रों को अंकित किया गया है। द्यूतव्यसन में युधिष्ठिर की, मांस व्यसन में बक राजकुमार की, मदिरा व्यसन में यादवों की, वेश्याव्यसन में चारुदत्त की, शिकार में चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की, चोरी में शिवभूति ब्राह्मण की और पर स्त्री व्यसन में प्रतापी रावण की कथा निबद्ध है। इसकी श्लोक सं० २१९७ है। इसकी रचना वि० सं० १५२९ में माघ सुदी प्रतिपदा सोमवार के दिन हुई थी ।[3]

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त प्रद्युम्नचरित, यशोधर चरित तथा सप्तव्यसनचरित के रचयिता सोमकीर्ति हैं। सोमकीर्ति लक्ष्मीसेन के प्रशिष्य और भीमसेन के शिष्य थे । श्री विद्याधर जोहरपुरकर ने काष्ठासंघ-नंदीतटगच्छ कालपट्ट में सोमकीर्ति का समय वि० सं० १५२६-१५४० (१४६९-१४८३ई०) माना है ।[4]

१०९. शान्तिनाथचरित[5] : (भाव चन्द्र सूरि)

यह चरित संस्कृत गद्य में लिखित ६ प्रस्तावों में विभक्त काव्य है । इसमें तीर्थंकर शान्तिनाथ का पूर्व ११ भवों सहित वर्णन किया गया है। ग्रंथकार द्वारा लिखित मूलप्रति लालबाग बम्बई के एक ग्रन्थ भंडार से मिली है ।

रचयिता : रचनाकाल

शान्तिनाथचरित के रचयिता भावचन्द्रसूरि हैं। ये पूर्णिमागच्छ के पार्श्वचन्द्रसूरि के प्रशिष्य और जयचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने शान्तिनाथचरित की रचना वि० सं० १५३५ (१४७८ ई०) में की थी ।[6]

११०. यशोधरचरित : (श्रुत सागर सूरि)

यशोधरचरित संस्कृत गद्यात्मक ग्रन्थ है । केवल मंगलाचरण और प्रशस्ति पद्य में है । यह सिद्धचक्रपाठ का माहात्म्य दिखाने के लिये लिखा गया था ।

१११. श्रीपालचरित : (श्रुत सागर सूरि)

इस चरितकाव्य में श्रीपाल का आख्यान निबद्ध है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के रचयिता श्रुतसागरसूरि हैं । ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के आचार्य थे । इनके गुरु का नाम विद्यानन्दि था । विद्यानन्दि देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य और पद्मनन्दि

१.जिनरत्नकोश, पृ० ३२० २.हिन्दी अनुवाद जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई १९१२ ई० में प्रकाशित

३.सप्तव्यसन चरित, प्रशस्ति पद्य ६-७ ४.भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २९८

५.जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर वि० सं० १९६७ में प्रकाशित ६.जिनरत्नकोश, पृ० ३७९

के प्रशिष्य थे।[1] इनके गुरु विद्यानन्दि ने सुदर्शनचरित की रचना वि० सं० १५१३ (१४५६ ई०) में की थी।[2] उनके शिष्य होने से इनका समय भी ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी ही ठहरता है। विपुलसाहित्य निर्माण और मौलिकता की दृष्टि से इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी कुल ३८ रचनायें हैं।

११२. हनुमच्चरित : (ब्रह्म अजित भट्टारक)

यह १२ सर्गात्मक महाकाव्य है जिसमें जैन परम्परा मान्य अठारहवें कामदेव हनुमान् और उनकी माता अंजना का चरित्र वर्णित है। इस काव्य का दूसरा नाम अंजनाचरित भी है।[3]

रचयिता : रचनाकाल

हनुमानचरित के रचयिता ब्रह्मअजित भट्टारक हैं। ये सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह और माता का नाम पीथा था।[4] इनके गुरु विद्यानन्दि का समय १४३२-१४८१ ई० है।[5] अतः इन्हें भी पन्द्रहवीं शताब्दी में रखा जा सकता है।

षोडश शताब्दी

११३. हरिवंशपुराण[6] : (श्रुत कीर्ति)

यह वृहद्काव्य रचना है जिसमें ४७ सन्धियाँ हैं। जिसमें २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का जीवनचरित वर्णित है। प्रसंगवश इसमें श्रीकृष्ण आदि यदुवंशियों का संक्षिप्त जीवन परिचय भी आया है। यह ग्रन्थ काव्य, सिद्धान्त, आचार आदि सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।[7]

रचयिता : रचनाकाल

हरिवंश पुराण के रचयिता श्रुतकीर्ति हैं जो नन्दीसंघ के बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ के विद्वान हैं। ये भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य और त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य थे। श्रुतकीर्ति का समय उनकी रचनाओं के आधार पर वि० सं० १६ वीं शती सिद्ध होता है।[8]

११४. पृथ्वीचन्द्रचरित : (लब्धि सागर)

यह राजा पृथ्वीचन्द्र पर रचित प्रसिद्ध आख्यान है। श्वेतांबर परम्परानुसार पृथ्वीचन्द्र प्रत्येकबुद्धों की श्रेणी में आते हैं।[9]

रचयिता : रचनाकाल

पृथ्वीचन्द्रचरित के रचयिता लब्धिसागर हैं। ये वृहत्तपागच्छ के उदयसागर के शिष्य थे। इनका समय १५ वीं तथा १६ वीं शताब्दी का सन्धिकाल माना जा सकता है क्योंकि इन्होंने पृथ्वीचन्द्रचरित की रचना वि० सं० १५५८ (१५०१ ई०) में की थी।[10]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ० - ३९१ २. सुदर्शनचरित प्रस्तावना पृ० १७
३. जिनरत्नकोश, पृ० ५५९ ४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १३९
५. वही, पृ० १९८ ६ जैन सिद्धान्त भवन आरा पाण्डुलिपि वि० सं० १५५३ की है
७. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४३२ ८. वही, पृ० ४३०
९. हीरालाल हंसराज जामनगर १९१८ ई० में प्रकाशित १०. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-२७४

११५. भद्रबाहुचरित[1] : (रत्न कीर्ति)

भद्रबाहुचरित में इतिहास प्रसिद्ध राजा चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु जैनाचार्य का आख्यान बड़े ही मनोरम ढंग से ४ सर्गों में गुम्फित किया गया है। कथानक परम्परा प्राप्त तथा शैली पौराणिकहै।

रचयिता : रचनाकाल

भद्रबाहुचरित के रचयिता का नाम रत्नकीर्ति है। संस्कृत साहित्य में रत्नकीर्ति नामक अनेक आचार्य हुये हैं। प्रकृत रत्नकीर्ति का रत्ननंदी नाम से भी उल्लेख पाया जाता है। ये अनंतकीर्ति के प्रशिष्य और ललितकीर्ति के शिष्य थे।[2] भद्रबाहुचरित में की गई लुंकामत की समीक्षा के आधार पर डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनका समय वि० सं० की १६ वीं शती का उत्तरार्द्ध माना है।[3]

११६. श्रीपालचरित : (ब्रह्म नेमिदत्त)

श्रीपालचरित ९ सर्गात्मक काव्य है। इसमें कुष्टव्याधि से पीड़ित श्रीपाल के साथ मयनासुन्दरी का विवाह और सिद्धचक्र विधान के माहात्म्य से उनके नीरोग होने का वर्ण किया गया है।

११७. धन्यकुमारचरित : (ब्रह्म नेमिदत्त)

यह ५ सर्गात्मक ग्रन्थ है जिसमें धन्यकुमार का चरित वर्णित है।

११८. प्रीतिङ्करमहामुनिचरित : (ब्रह्म नेमिदत्त)

यह भी ५ सर्गात्मक ग्रन्थ है जिसमें महामुनि प्रीतिङ्कर का चरित्र चित्रितं किया है।

११९. सीताचरित[4] : (ब्रह्म नेमिदत्त)

एक सीताचरित नामक चरित काव्य भी उपलब्ध होता है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त सभी ४ ग्रन्थों के रचयिता ब्रह्मनेमिदत्त हैं। ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य थे। इनके दीक्षागुरु का नाम भट्टारक विद्यानन्दि था।[5] श्रीपालचरित की रचना १५२८ ई० में हुई थी।[6] अतः इनका समय १६वीं शती का है।

१२०. चन्द्रप्रभचरित : (भट्टारक शुभचन्द्र)

चन्द्रप्रभचरित ८ सर्गात्मक काव्य है जिसमें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभ का चरित वर्णित है।

---

१. मूलचन्द किसनदास कापडिया गान्धी चौक सूरत से एवं पं० उदयपाल काशलीवाल के हिन्दी अनुवाद के साथ जैन भारती भवन बनारस सिटी वी० नि० सं० २४३७ में प्रकाशित

२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ० - ४३६ ३. वही, पृ. ४३१-४३७

४. जिनरत्नकोश, पृ० ४४२ ५. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४०३

६. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० - १७४

१२१. करकण्डुचरित : (भट्टारक शुभ चन्द्र)

इसमें करकण्डु का चरित वर्णित है। करकण्डु श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य प्रमुख ४ प्रत्येकबुद्धों में से एक हैं। दिगम्बर आचार्यों ने भी इनके ऊपर स्वतन्त्र रचनायें लिखी हैं।

१२२. चन्दनाचरित : (भट्टारक शुभ चन्द्र)

यह भी एक महाकाव्य है जिसमें महासती चन्दना का चरित वर्णित है।

१२३. जीवन्धरचरित : (भट्टारक शुभ चन्द्र)

जीवन्धरचरित में जीवन्धरकुमार का प्रिय आख्यान निबद्ध है। इसका प्रणयन वि० सं० १५९६ (१५३९ ई०) में हुआ था।[१]

१२४. श्रेणिकचरित : (भट्टारक शुभ चन्द्र)

श्रेणिकचरित का नाम श्रेणिकपुराण भी है। इसकी हस्तलिखित प्रति नया मन्दिर दिल्ली के ग्रन्थ भण्डार में है।[२]

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त वर्णित पाँचों काव्यों के रचयिता भट्टारक शुभचन्द्र हैं जो विजयकीर्ति के शिष्य थे। प्रो० विद्याधर जोहरापुरकर ने इनका भट्टारक काल वि० सं० १५७३-१६१३ (१५१६-१५५६ ई०) माना है।[३] किन्तु डा० नेमिचन्द्र शास्त्री इनका भट्टारक काल वि० सं० १५३५-१६२० (१४७८-१५६३ ई०) मानते हैं।[४] अतः इनका रचनाकाल १६वीं शताब्दी का प्रथम चरण निश्चित है।

१२५. होलिरेणुकाचरित : (पं० जिन दास)

यह चरितकाव्य सात अध्यायों में विभक्त है। इसका दूसरा नाम होलिकारेणुपर्वचरित भी है।[५] इसमें पंचनमस्कार मन्त्र का माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

होलिकारेणुका चरित काव्य के रचयिता पं० जिनदास हैं जो रणस्तम्भ दुर्ग के समीप नवलक्षपुर के निवासी हैं। कवि ने ग्रन्थ प्रशस्ति में ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १६०८ (१५५१ ई०) दिया है।[६]

१२६. शालिभद्रचरित : (विनय सागर गणि)

इस काव्य की रचना वि० सं० १६२३ (१५६६ ई०) में हुई थी।[७] अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३९९
२. द्रष्टव्य - अनेकान्त, वर्ष-४, किरण-५, जून १९४१, पृ० ३५२
३. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५८
४. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-३६४
५. जिनरत्नकोश, पृ० ४६३
६. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-८४
७. जिनरत्नकोश, पृ० ३८२

रचयिता : रचनाकाल

शालिभद्रचरित काव्य के रचयिता का नाम विनयसागरगणि है। इनका समय १६वीं शती है।

१२७. जम्बूस्वामी चरित[१] : (कविराज मल्ल)

जम्बूस्वामीचरित त्रयोदश सर्गात्मक काव्य है। जिसके प्रथम चार सर्गों में जम्बूस्वामी के पूर्वभवों का आख्यान है। पाँचवें सर्ग से जम्बूस्वामी की कथा वर्णित है। अनुष्टुप् छन्द में रचित यह काव्य अत्यधिक रमणीय है।

रचयिता : रचनाकाल

जम्बूस्वामीचरित के रचयिता कविराजमल्ल हैं जो आगरा निवासी थे। ये अकबर बादशाह के समकालीन थे। इन्होंने जम्बूस्वामी चरित की रचना वि० सं० १६३२ (१५७५ई०) में की थी।[२]

१२८. पार्श्वनाथचरित[३] : (हेम विजय)

यह काव्य छः सर्गों में विभक्त है। इसमें ३०३६ पद्य हैं। अन्त में १६ प्रशस्ति पद्य हैं।

रचयिता : रचनाकाल

पार्श्वनाथचरित काव्य के रचयिता हेमविजय हैं। सर्गान्त पुष्पिका से ज्ञात होता है कि हेमविजयगणि, कमलविजयगणि के शिष्य थे जो भट्टारक हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरि की परम्परा से संबद्ध थे।[४] ग्रन्थ प्रशस्ति के अनुसार काव्य की रचना वि० सं० १६३२ (१५७५ई०) में हुई थी तथा यह ३१६० अनुष्टुप् प्रमाण हैं।[५]

१२९. साम्बप्रद्युम्नचरित[६] : (रवि सागर गणि)

इस चरितकाव्य में १६ सर्ग हैं। प्रद्युम्न और उनके अनुज साम्ब कुमार का वर्णन है।

रचयिता : रचनाकाल

साम्बप्रद्युम्नचरित के रचयिता रविसागरगणि हैं। इनके गुरु तपागच्छीय हरिविजय सन्तानीय राजसागर थे। सहजसागर और विजय सागर इनके अध्यापक थे। इन्होंने इस चरितकाव्य की रचना माडलिनगर में खेंगार राजा के राज्यकाल में वि० सं० १६४५ (१५८८ई०) में की थी।[७]

१३०. जम्बूस्वामिचरित : (विद्या भूषण भट्टारक)

जम्बूस्वामि के चरित पर रचा काव्य उपलब्ध होता है।

१.माणिक्यचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई १९११ ई० में प्रकाशित

२. जिनरत्नकोश, पृ० १३२

३.श्री मुनिमोहनलाल जैन ग्रन्थमाला सरस्वती फाटक बनारस १९१६ में प्रकाशित

४. पार्श्वनाथचरित, सर्गान्त पुष्पिका

५.पार्श्वनाथचरित, प्रशस्ति, १४-१५

६.हीरालाल हंसराज जामनगर १९१७ ई० में प्रकाशित

७.द्रष्टव्य - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १४७

रचयिता : रचनाकाल

जम्बूस्वामि चरित के रचयिता विद्याभूषण भट्टारक हैं। इन्होंने वि० सं० १६५३ (१५९६ई०) में जम्बूस्वामिचरित की रचना की।[१] विश्वसेन के पट्टशिष्य विद्याभूषण ने वि० सं० १६०४ में दो मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई थी।[२] सम्भवतः ये विद्याभूषण ही जम्बूस्वामीचरित के रचयिता हैं।

१३१. भविष्यदत्तचरित : (पद्म सुन्दर गणि)

इस चरितकाव्य में पाँच सर्ग हैं। जिन पुण्यपुरुष भविष्यदत्त का आख्यान निबद्ध है। इसकी हस्तलिखित प्रति वि० सं० १६१५ (१५५८ ई०) बम्बई के ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में उपलब्ध है।[३]

१३२. पार्श्वनाथचरित : (पद्म सुन्दर गणि)

यह सप्तसर्गात्मक काव्य है। इसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित्र अंकित है।

रचयिता : रचनाकाल

भविष्यदत्त चरित व पार्श्वनाथ चरित के रचयिता पद्मसुन्दरगणि हैं। पं० पद्मसुन्दर आनन्दमेरु के प्रशिष्य और पद्ममेरु के शिष्य थे।[४] इन्होंने भविष्यदत्त चरित की रचना वि० सं० १६१४ (१५५७ ई०) कार्तिक शुक्ल पंचमी में की।[५] अतः इनका समय १६वीं शताब्दी का है।

१३३. पार्श्वनाथचरित[६] : (उदय वीर गणि)

यह ग्रन्थ आठ सर्गात्मक है। जिसमें हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित की परम्परा के अनुसार तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का चरित संस्कृत गद्य में लिखा गया है। बीच-बीच में अवान्तर कथाओं का भी समावेश हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता उदयवीरगणि हैं जो तपागच्छीय हेमसूरि के प्रशिष्य और संघवीर के शिष्य थे। प्रशस्ति के अनुसार पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल वि० सं० १६५४ (१५९७ ई०) है।[७]

१३४. उत्तमकुमारचरित[८] : (चारु चन्द्र)

इस चरितकाव्य में ६८६ पद्य हैं। उत्तमकुमार एक धार्मिक एवं साहसी राजकुमार थे। इस काव्य में उनकी साहसपूर्ण घटनाओं का चित्रण किया गया है। बीच-बीच में अवान्तर कथायें भी दी गई हैं तथा अन्य ग्रंथों के प्राकृतपद्य भी ग्रहण किये गये हैं।[९]

---

१. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग-६, पृ० १५५
२. भट्टारक सम्प्रदाय लेखांक ६७६, ६७७, पृ०-२७१
३. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-८३
४. देखें जैनाचार्यों का अलंकार शास्त्र में योगदान, पृ०-४६
५. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ-८३
६. जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर वि० सं० १९७० में प्रकाशित
७. पार्श्वनाथचरित, सर्गान्त पुष्पिका
८. हीरालाल हंसराज जामनगर १९०९ ई० में प्रकाशित
९. जिनरत्नकोश, पृ० - ४१

रचयिता : रचनाकाल

उत्तमकुमारचरित के रचयिता चारुचन्द्र हैं जो भक्तिलाभ के शिष्य थे। ये १६वीं शताब्दी के विद्वान् हैं।

१३५. सुलोचनाचरित : (भट्टारक वादि चन्द्र)

सुलोचनाचरित में ९ परिच्छेद हैं। यह एक कथात्मक काव्य है।

१३६. यशोधरचरित : (भट्टारक वादि चन्द्र)

यशोधरचरित में महाराज यशोधर का चरित वर्णित है।

रचयिता : रचनाकाल

उक्त सुलोचनाचरित तथा यशोधरचरित के रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र हैं। ये वादिचन्द्र, मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण की सूरत शाखा के थे। ये भट्टारक प्रभाचन्द्र के पट्ट पर आसीन हुये थे।

प्रो० विद्याधर जोहरापुरकर ने इनका समय वि० सं० १६३७-१६६४ (१५८०-१६०७ ई०) माना है।[१] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री भी यही समय मानते हैं।[२]

१३७. भुजबलिचरित[३] : (दोड्डय्य)

इस संस्कृत चरित के कवि ने पुराण प्रसिद्ध श्री बाहुबलि की मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोलस्थ लोकविख्यात आश्चर्यकारी अलौकिक अनुपम दिव्य-मूर्ति के इतिहास को सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है।

रचयिता : रचनाकाल

भुजबलिचरित के रचयिता दोड्डय्य हैं। जैन सिद्धान्त भास्कर में प्रकाशित भुजबलिचरित की भूमिका में कहा गया है कि आत्रेय गोत्रीय जैन विप्रोत्तम पंडित मुनि के शिष्य परियपट्टन के निवासी करणितिलक देवय्य के पुत्र १६वीं शताब्दी के कवि दोड्डय्य का यह भुजबलिचरित, भुवलिशतकम् के नाम से भी प्रसिद्ध है।

सप्तदश शताब्दी

१३८. पाण्डवचरित[४] : (देव विजय गणि)

पाण्डवचरित गद्यात्मक ग्रन्थ है। इसमें १८ सर्ग हैं। यह देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित का सरल संस्कृत गद्यरूप की तरह जान पड़ता है। कहीं-कहीं तो उसके पद्य भी उद्धत किये गये हैं।

१.भट्टारक सम्प्रदाय, पृ०-२०१   २.तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-७२

३.जैन सिद्धान्त भास्कर भाग - १०, वि० सं० २००० के परिशिष्ट में श्री पी० के० भुजबली शास्त्री विद्याभूषण के सम्पादकत्व में प्रकाशित

४.यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस वी० नि० सं० २४३८ में प्रकाशित

१३९. रामचरित[1] : (देव विजय गणि)

रामचरित दश सर्गात्मक गद्यकाव्य है । इसमें राक्षस, वानर वंश की उत्पत्ति, रावण-कुम्भकरण-विभीषण-सीता-राम-लक्ष्मण आदि का वर्णन तथा अन्त में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की मुक्ति का वर्णन है ।

रचयिता : रचनाकाल

पाण्डवचरित तथा रामचरित के रचयिता देवविजयगणि हैं जो तपागच्छीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य और संगविजय के शिष्य थे । इन्होंने अहमदाबाद में रहकर वि० सं० १६६० में पाण्डवचरित की रचना की थी । इसका संशोधन शान्तिचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र ने किया था ।[2]

१४०. पार्श्वनाथपुराण : (चन्द्र कीर्ति)

यह पन्द्रह सर्गात्मक काव्य है जो २७१० ग्रन्थ प्रमाण है । इसमें भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र वर्णित है । इसकी रचना वि० सं० १६५४ (१५९७ ई०) में श्री भूषण भट्टारक के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने वैसाख शुक्ला सप्तमी को गुरुवार के दिन देवगिरि के पार्श्वनाथ जिनालय में की थी ।[3]

इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बई में है ।[4]

१४१. ऋषभदेवपुराण : (चन्द्र कीर्ति)

इसमें भगवान ऋषभदेव की कथा २५ सर्गों में विभक्त है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों काव्यों के रचयिता चन्द्रकीर्ति हैं । चन्द्रकीर्ति के गुरु श्री भूषण भट्टारक काष्ठासंघीय थे । वे काष्ठासंघ के नन्दी तट-गच्छ के भट्टारक थे । प्रो० विद्याधर जोहरापुरकर ने उनकी परम्परा को इस प्रकार बतलाया है : धर्मसेन → विमलसेन → विशालकीर्ति → विश्वसेन → विद्याभूषण → चन्द्रकीर्ति । प्रो० जोहरापुरकर ने चन्द्रकीर्ति का समय वि० सं० १६५४-१६८१ (१५९७-१६२४ ई०) माना है ।[5] इन्होंने सं० १६५४ में देवगिरि पर पार्श्वनाथपुराण की रचना की थी ।[6]

१४२. रामपुराण : (सोमसेन)

रामपुराण में रामकथा वर्णित है । इस कथा का आधार रविषेण का पद्मचरित है । कथावस्तु ३३ अधिकारों में विभक्त है । भाषा सरल होते हुये भी प्रवाहमयी है ।

रचयिता : रचनाकाल

रामपुराण के रचयिता सोमसेन हैं । ये सेनगण और पुष्करगच्छ की भट्टारक परम्परा में

१.हीरालाल हंसराज जामनगर १९१५ ई० में प्रकाशित   २.जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ५४

३.जिनरत्नकोश, पृ० २४६-२४७   ४.जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १२५, पाद टिप्पणी-६

५.भट्टारक सम्प्रदाय, पृ०-२९९   ६.पार्श्वनाथपुराण, प्रशस्ति

हुये हैं। सोमसेन गुणभद्र के शिष्य थे। इनके संबंध में लिखा है कि "विबुधविविधजनमनइंदीवर विकासनपूर्ण शशिसमानानां .... सोमसेन भट्टारकाणान्।"[१]

इन्होंने वि० सं० १६५६ में रामपुराण की रचना की अतः सोमसेन का समय १७वीं शती है।[२]

१४३. नेमिनाथचरित[३] : (अजय राज पाटणी)

प्रस्तुत काव्य और उसके रचयिता का वर्णन इसी अध्याय के "ख" भाग "नेमि विषयक साहित्य" पृष्ठ ७७ क्रम सं० ११७ के अन्तर्गत किया गया है।

१४४. शान्तिनाथपुराण : (श्री भूषण)

शान्तिनाथपुराण में १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीवन चरित्र वर्णित है। इसकी कथावस्तु १६ सर्गों में विभक्त है।

रचयिता : रचनाकाल

शान्तिनाथचरित के रचयिता श्री भूषण हैं। ये काष्टासंघ के नन्दीगच्छ के आचार्यों की परम्परा में समाविष्ट हैं जिसमें रामसेन के अन्वय में क्रमशः नेमिसेन → धर्मसेन → विमलसेन → विशालकीर्ति → विश्वसेन → विद्याभूषण → श्रीभूषण → के नाम हैं। इन्होंने शान्तिनाथपुराण की रचना वि० सं० १६६९ (१६१२ ई०) में की थी।[४]

१४५. प्रद्युम्नचरित[५] : (रत्न चन्द्र गणि)

यह १६ सर्गात्मक महाकाव्य है। इसमें श्रीकृष्ण, सत्यभामा, रूक्मणी आदि का भी चरित्र वर्णित है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रद्युम्नचरित के रचयिता रत्नचन्द्रगणि हैं जो तपागच्छीय शान्तिचन्द्र के शिष्य थें। इन्होंने प्रद्युम्नचरित की रचना सूरत में वि० सं० १६७४ (१६१७ ई०) में विजयादशमी के दिन की थी।[६]

१४६. मुनिसुव्रतपुराण : (ब्रह्म कृष्ण दास)

इसमें २०वें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत का जीवन अंकित है। जिसमें २३ सन्धि या सर्ग हैं और ३०२५ पद्य हैं।

रचयिता : रचनाकाल

मुनिसुव्रतकाव्य के रचयिता ब्रह्मकृष्णदास हैं। ब्रह्मकृष्णदास काष्ठासंघ के भट्टारक भुवनकीर्ति के पट्टधर भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे।[७] इन्होंने इस काव्य की रचना वि० सं०

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक-३४
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४४४
३. देवचन्द्र लाल भाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत, १९२० ई० में प्रकाशित
४. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४४०
५. वी० वी० एण्ड कम्पनी खारगेट भावनगर १९१७ ई० में प्रकाशित
६. जिनरत्नकोश, पृ० २६४
७. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ०-४४०

१६८१ कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी में पूर्ण की थी ।[१]

१४७. जयकुमारचरित : (ब्रह्मचारी काम राज)

जयकुमारचरित १३ सर्गात्मक महाकाव्य हैं जिसमें जयकुमार और उनकी पत्नी सुलोचना का चरित वर्णित किया गया है । इस काव्य का नाम जयपुराण भी है ।

रचयिता : रचनाकाल

जयकुमारचरित के रचयिता ब्रह्मचारी कामराज हैं । विक्रम की १७ वीं शती के उत्तरार्द्ध में इन्होंने जयकुमारचरित की रचना की थी ।[२]

१४८. श्रीपालचरित[३] : (ज्ञान विमल सूरि)

श्रीपालचरित अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रवाहमयी गद्य भाषा में लिखा गया है । बीच-बीच में पद्य भी मिलते हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

श्रीपालचरित के रचयिता ज्ञानविमलसूरि हैं । जो नयविमलसूरि के शिष्य थे । इन्होंने श्रीपालचरित्र की रचना संस्कृत गद्य में वि० सं० १७४५ (१६८८ ई०) में की थी ।[४]

१४९. सुषेण चरित : (जगन्नाथ)

इसमें धर्मनाथ तीर्थंकर के सेनापति सुषेण अथवा वरांगकुमार के सौतेले भाई सुषेण का वर्णन है । अभी तक काव्य उपलब्ध नहीं है ।

रचयिता : रचनाकाल

सुषेण चरित के रचयिता जगन्नाथ हैं । इन्होंने १७ वीं शती में इस काव्य की रचना की है।

१५०. शान्तिनाथचरित[५] : (मेघविजय उपाध्याय)

यह चरित नैषधीयचरित प्रथम सर्ग की समस्यापूर्ति-के रूप में लिखा गया है । यह ६ सर्गात्मक काव्य है ।

१५१. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : (मेघविजय उपाध्याय)

यह १० सर्गों का काव्य है । काव्यतत्त्वों की दृष्टि से इस काव्य का विशेष महत्त्व नहीं है । इसमें हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित का अनुकरण किया गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरितों के रचयिता मेघविजय उपाध्याय हैं । ये कृपाविजय गणि और उपाध्याय जिनप्रभसूरि के शिष्य थे । इनके ग्रन्थों का रचनाकाल १६५२-१७०३ ई० माना जाता है।[६]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-८५
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १७९
३. देवेन्द्र लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला बम्बई १९२१ ई० में प्रकाशित
४. श्रीपालचरित प्रशस्ति पद्य-२०
५. अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला बीकानेर से प्रकाशित
६. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - ७८

अष्टादश शताब्दी

१५२. अजितपुराण : (अरुण मणि)

इस पुराण में तीर्थङ्कर अजितनाथ का जीवनवृत्त वर्णित किया गया है। इसकी पाण्डुलिपि जैन सिद्धान्त भवन आरा में है।[१]

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराण के रचयिता अरुणमणि हैं। ये भट्टारक श्रुतकीर्ति के प्रशिष्य और बुधराघव के शिष्य थे। अरुणमणि ने औरंगजेब के राज्यकाल में वि० सं० १७१६ में जहानाबाद नगर वर्तमान नई दिल्ली के पार्श्वनाथ जिनालय में अजितनाथपुराण की समाप्ति की है। अतः कवि का समय १८ वीं शती है।

१५३. भक्तामर चरित : (विश्व भूषण भट्टारक)

भक्तामर चरित में ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। तथा विभिन्न समय के विभिन्न विद्वानों को समकालीन बताया गया है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ कोई महत्व नहीं रखता है।

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता विश्वभूषण भट्टारक हैं। ये अनन्त भूषण भट्टारक के शिष्य थे। इनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं है। इनका समय अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ठहरताहै।[२]

१५४. गौतमचरित[३] : (रूप चन्द्रगणि)

यह ११ सर्गात्मक काव्य है। इसमें जैन संघ का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह मनोरम है।

रचयिता : रचनाकाल

गौतमचरित के रचयिता रूपचन्द्रगणि हैं जो दत्तगच्छ के थे। उन्होंने सं० १८०७ (१७५० ई०) में जोधपुर नगर में अभयसिंह राजा के राज्यकाल में गौतमचरित (गोतमीयकाव्य) की रचना की थी। इस पर वि० सं० १८५२ (१७९५ ई०) में अमृत धर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणगणि ने गौतमीयप्रकाश नामक टीका लिखी थी।[४]

एकोनविंशति शताब्दी

१५५. पृथ्वीचन्द्र चरित[५] : (रूप विजय गणि)

यह ११ सर्गात्मक काव्य है। जो संस्कृत गद्य में लिखा गया है। बीच-बीच में कहीं-कहीं संस्कृत और प्राकृत के पद्य भी उद्धत हैं।

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-९० २. जिनरत्नकोश, पृ० २८९

३. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था सूरत, १९४० ई० में प्रकाशित

४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १९६ ५. जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर, १९३६ ई० में प्रकाशित

रचयिता : रचनाकाल

पृथ्वीचन्द्रचरित के रचयिता रूपविजयगणि हैं जो तपागच्छीय सविग्न शाखा के पद्मविजयगणि के शिष्य थे। इन्होंने पृथ्वीचन्द्रचरित्र की रचना वि० सं० १८८२ (१८२५ ई०) में की थी।[१]

विंशति शताब्दी

१५६. समुद्रदत्तचरित[२] : (भूरा मल्ल शास्त्री)

यह चरित ९ सर्गात्मक काव्य है जिसमें कुल ३४५ पद्य हैं। अन्त में ४ प्रशस्ति पद्य हैं जिनमें अन्य ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है।

१५७. महावीर चरित[३] (वीरोदय काव्य) : (भूरा मल्ल शास्त्री)

यह चरितकाव्य २२ सर्गात्मक महाकाव्य है, जिसमें भगवान् महावीर के चरित के साथ प्रारम्भ में भारत की दुर्दशा का चित्रण बड़ा ही हृदयद्रावक है। अन्त में जैन धर्म के ह्रास पर चिन्ता व्यक्त की गई है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों चरितों के रचयिता भूरामल्ल शास्त्री हैं। ये ही मुनि दीक्षा के बाद ज्ञानसागर महाराज कहलाये। आपका जन्म राजस्थान के जयपुर के समीपवर्ती राणौली ग्राम में सेठ चतुर्भुज के घर वि० सं० १९४८ (१८९१ ई०) में हुआ था। आपने वि० सं० २००४ में ब्रह्मचर्य प्रतिमा, २०१२ में क्षुल्लक दीक्षा और सं० २०१४ में आचार्य शिवसागर जी महाराज से खानियां जयपुर में मुनिदीक्षा धारण की थी।[४] उनकी सुदर्शनोदय तथा दयोदय आदि अन्य रचनायें भी उपलब्ध हैं।

इन चरितकाव्यों की श्रृंखला से स्पष्ट है कि जैन कवि ईसा की सातवीं शतादी से लेकर निरन्तर काव्य रचना में संलग्न हैं। यद्यपि वे प्राकृत भाषा की परम्परा से लेकर काव्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुये थे किन्तु उन्होंने भाषागत साम्प्रदायिक बन्धनों को तोड़कर संस्कृत को भी प्राकृत भाषा के समान ही महत्त्व प्रदान किया तथा एक समृद्ध एवं ऐश्वर्यशाली परम्परा का निदर्शन प्रस्तुत किया है।

---

१. पृथ्वीचन्द्रचरित, प्रशस्ति पद्य, ५-११

२. दि० जैन जैसवाल समाज अजमेर, वी० नि० सं० २४९५ में प्रकाशित

३. मुनिज्ञानसागर, जैन ग्रन्थमाला, १९६८ ई० में प्रकाशित

४. सुदर्शनोदय काव्य, ग्रन्थकार का संक्षिप्त परिचय

तीर्थङ्कर नेमिनाथ विषयक साहित्य

जैन धर्म के २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का भारतीय जनजीवन में अप्रतिम प्रभाव रहा है। भारत के धार्मिक जीवन में जिन विभूतियों का चिरस्थायी प्रभाव है, उनमें नेमिनाथ अग्रणी हैं। जैन कवियों ने अपने साहित्य में तीर्थङ्कर महावीर और पार्श्वनाथ के बाद उन्हें सर्वाधिक स्थान दिया है। जैन कवियों की दृष्टि भाषागत विवादों से पृथक् थी। यही कारण है कि भारत की सार्वभौम भाषाओं के रूप में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में हिन्दी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तमिल आदि सभी भाषाओं में उन्होंने नेमिनाथ विषयक साहित्य की विपुल मात्रा में रचना की है।

जैन परम्परा में बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की ऐतिहासिक प्रमाणिकता भले ही सिद्ध न हो सकी हो परन्तु यह निर्विवाद है कि उनका व्यक्तित्व जैन साहित्यकारों को अधिक प्रिय रहा है। वर-वेश में सुसज्जित नेमिकुमार का पशुओं का करुण क्रन्दन सुनने मात्र पर वाग्दत्ता राजुल (राजीमति) को विवाह मण्डप में विरहदग्ध छोड़कर अक्षय वैराग्य धारण कर लेना तथा रैवतक पर्वत पर दुर्धर तपश्चर्या द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करना, साथ ही राजुल के संयम, अनन्य निष्ठा, एवं अन्त में वैराग्यपूर्वक मुक्तिलाभ की घटनाओं ने कवियों को कितना अधिक प्रभावित किया है।

यही कारण है कि उनके जीवन पर विशाल साहित्य लिखा गया है। यहाँ विभिन्न भारतीय भाषाओं में विरचित नेमिनाथ विषयक साहित्य का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

संस्कृत

१. उत्तरपुराण (गुणभद्र)

इस पुराण में २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का कथानक सविस्तार बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराणकाव्य के दो भाग हैं। प्रथम भाग के रचयिता गुणभद्र हैं तथा दूसरे भाग के लेखक उनके शिष्य लोकसेन हैं। प्रथम भाग का रचनाकाल शक सं० ७७० या ७७२ (८४८ ८५० ई०) होना चाहिए।[१]

२. नाभेयनेमिद्विसन्धान : (नेमिनाथचरित) (सूराचार्य)

इस श्लेषमय पद्य रचना में नेमिनाथ के चरित के साथ-साथ ऋषभदेव के चरित का भी अर्थ घटित होता है।[२]

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ६१-६२

२. वही, पृ० ५२२

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता का नाम सूराचार्य है। यह ११वीं शताब्दी का रचित है। रचनाकाल वि० सं० १०९० (सन् १०३३ ई०) है।

३. नाभेयनेमिद्विसन्धान

एक दूसरी रचना भी प्राप्त होती है। इसका संशोधन कवि चक्रवर्ती श्रीपाल ने किया है जिसका समय १२ वीं शती है।[1]

४. नेमिनिर्वाण (वाग्भट्ट प्रथम)

नेमि निर्वाण काव्य १५ सर्गों में विभक्त है और तीर्थङ्कर नेमिनाथ का जीवन चरित अंकित है। २४ तीर्थङ्करों के नमस्कार के उपरान्त मूल कथा प्रारम्भ की गई है। कवि ने नेमिनाथ के गर्भ, जन्म, विवाह, तपस्या, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकों का निरूपण सीधे और सरल रूप में किया है। कथावस्तु का आधार हरिवंशपुराण है। नेमिनाथ के जीवन की दो मर्मस्पर्शी घटनायें इस काव्य में अंकित हैं :-

एक घटना राजुल और नेमि का रैवतक पर पारस्परिक दर्शन और दर्शन के फलस्वरूप दोनों के हृदय में प्रेमाकर्षण की उत्पत्ति रूप में है।

दूसरी घटना पशुओं का करुण क्रन्दन सुन नेमि का विवाह त्यागना तथा बिलखती राजुल तथा आर्द्रनेत्र हाथ जोड़े उग्रसेन को छोड़ मानवता की प्रतिष्ठार्थ वन में तपश्चरण के लिये जाना है। इन दोनों घटनाओं की कथावस्तु को पर्याप्त सरस और मार्मिक बनाया गया है। कवि ने वसन्त वर्णन, रेवतक वर्णन, जलक्रीड़ा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सुरत, मदिरापान, प्रभृति काव्य विषयों का समावेश कथा को सरस बनाने के लिए किया है। कथावस्तु के गठन में एकान्विति का सफल निर्वाह किया गया है। पूर्वभवावलि के कथानक के हटा देने पर भी कथावस्तु में छिन्न-भिन्नता नहीं आती। यों तो यह काव्य अलंकृत शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है पर कथा गठन की अपेक्षा इसमें कुछ शैथिल्य भी पाया जाता है।

कवि ने इस काव्य में नगरी, पर्वत, स्त्री-पुरुष, देवमन्दिर, सरोवर आदि का सहज-ग्राह्य चित्रण किया है। रस भाव योजना की दृष्टि से भी यह काव्य सफल है। श्रृंगार, रौद्र, वीर, और शान्त रसों का सुन्दर निरूपण किया है। विरह की अवस्था में किये गये शीतलोपचार निरर्थक प्रतीत होते हैं। ११वें सर्ग में वियोग श्रृंगार का अद्भुत चित्रण आया है।

छन्द शास्त्र की दृष्टि से इस काव्य का सप्तम सर्ग विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिस छन्द का नामांकन किया है कवि ने उसी छन्द में पद्य रचना भी प्रस्तुत की है। कवि कल्पना का धनी है। सन्ध्या के समय दिशायें अन्धकार से लिप्त हो गई थी और रात्रि में ज्योत्स्ना ने उसे

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ५२२

चन्दन द्रव्य से चर्चित कर दिया। अब नवीन सूर्य किरणों से संसार कुंकुम द्वारा लीपा जा रहा है। अन्धकार रूपी कीचड़ में फँसी हुई पृथ्वी का पर्वतरूपी उन्नत श्रृंगों से उद्धार करते हुए उदय को प्राप्त सूर्यदेव ने हजारों किरणों को फैलाकर सार्थक नाम प्राप्त किया है।

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार काव्य मूल्यों की दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण है।[१]

रचयिता : रचनाकाल

रचयिता, रचनाकाल (विवेचन) परिचय इसी अध्याय के "ग" भाग में दिया गया है।

५. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित (आचार्य हेमचन्द्र)

इस महाचरित में जैनों के कथानक इतिहास पौराणिक-कथायें, सिद्धान्त एवं तत्वज्ञान का संग्रह है। इस ग्रन्थ में १० पर्व हैं जिनमें २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का चरित्र ७ व ८ पर्व में रचित मिलता है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र हैं। बूलन ने इनकी रचना का समय सं० १२१६ से १२२८ तक माना है। (सन् ११५९ से ११७१ ई०)[२]

६. पुराणसागर संग्रह (दामनन्दि आचार्य)

प्रस्तुत चरितसंग्रह में नेमिनाथ चरित्र ५ सर्गों में उपलब्ध होता है।

रचयिता : रचनाकाल

इस ग्रन्थ के रचयिता दामनन्दि आचार्य हैं। इनका समय ११वीं से १३ वीं शताब्दी के बीच का है।[३]

७. अममस्वामीचरित (मुनिनन्दसूरि)

इस काव्य में छठे सर्ग के बाद नेमिनाथ का जन्म, राजीमती का वर्णन, नेमिनाथ की दीक्षा और फिर नेमिनाथ के मोक्ष गमन की कथा का वर्णन आया है।[४]

रचयिता : रचनाकाल

इस ग्रन्थ के कर्ता चन्द्रगच्छीय पूर्णिमामत प्रकटकर्ता श्रीमान् चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धर्मघोषसूरि के शिष्य समुद्रघोषसूरि के शिष्य मुनिनन्दसूरि हैं। यह ग्रन्थ वि. सं० १२५२ (सन् ११९५ ई०) में पत्तनगर में लिखा गया है।[५]

८. प्रत्येकबुद्धचरित (श्री तिलक सूरि चन्द्र गच्छीय)

ऋषिभाषित सूत्र में ४५ प्रत्येकबुद्धों के उपदेश संग्रहीत हैं। उनमें से २० नेमिनाथ के उपदेश हैं। यह प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में रचित है।

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-२४
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० ७३
३. वही, पृ०-६३
४. वही, भाग-६, पृ० -१२७
५. वही, पृ० -१६०

रचयिता : रचनाकाल

श्री तिलकसूरिचन्द्रगच्छीय शिवप्रभसूरि के शिष्य थे जिनका रचनाकाल वि० सं० १२६१ (सन् १२०४ ई०) का है ।[१]

९. प्रत्येकबुद्धचरित

यह एक संस्कृत रचित काव्य है जिसका पूरा नाम "प्रत्येकबुद्धमहाराजर्षिचतुष्कचरित्र" है । इसके प्रत्येक पर्व में चार सर्ग हैं और अन्त में एक चूलिका सर्ग है । इसके १७ सर्गों का श्लोक प्रमाण १०१३० है । प्रस्तुत सर्ग जिनलक्ष्मी शब्दांकित है । संभवतः यह जिनतिलक तथा लक्ष्मीतिलकसूरि को द्योतित करता है ।[२]

१०. नेमिचरित (कवि रामन)

सं० १२६१ में धनपाल के पिता कवि रामन ने नेमिचरित्र महाकाव्य लिखा ।[३]

११. नेमिनाथचरित्र

वि० सं० १२८७ (सन् १२३० ई०) में कवि दामोदर ने सल्लखणपुर (मालवा) के परमारवंशी राजा देवपाल के राज्यकाल में यह चरित्र काव्य रचना की ।[४]

१२. नेमिदूत (कवि विक्रम)[५]

२२वें तीर्थङ्कर पर रचा गया यह एक चरितकाव्य है । इसमें १२६ पद्य हैं । इसकी रचना में मेघदूत काव्य के अन्तिम चरण की समस्या पूर्ति की गई है जिसमें नेमिनाथ व राजीमती का विरह वर्णन है । वस्तुतः यह मेघदूत पर आधारित मौलिक काव्य रचना है । इसके नामकरण का यह अर्थ नहीं कि इसमें नेमिनाथ ने दूत का काम किया है बल्कि आराधक नायक नेमि के लक्ष्य से दूत (वृद्ध ब्राह्मण) भेजने के कारण इसका नेमिदूत नामकरण हुआ । मेघदूत में दूत नायक की तरफ से भेजा जाता है तो नेमिदूत में नायिका की ओर से ।[६]

घटना प्रसंग इस प्रकार है कि नेमि अपने विवाह भोज के लिए बाड़े में एकत्र किये गये पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर विरक्त हो रेवतक पर्वत पर योगी बन जाते हैं । दुलहिन राजीमती एक वृद्ध ब्राह्मण को दूत बनाकर उन्हें मनाने के लिए भेजती है । अन्त में राजीमती का विरह शम भाव में परिणत हो जाता है ।

यह काव्य अपनी भाषा भाव और पद्य रचना में तथा काव्य गुणों से बड़ा ही सुन्दर बन गया है । कवि ने विरही जनों की यथार्थ दुःखमयी अवस्था का जो वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि कवि ऐसे अनुभवों के धनी थे । शान्त रस प्रधान होने पर भी नेमिदूत सन्देश काव्य की अपेक्षा विरह काव्य अधिक है ।

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - १६०
२. वही, पृ० - १६१
३. वही, पृ० - ११५
४. वही, पृ०-११५
५. वही, पृ०-५४८
६. वही, पृ० - ५४७

रचयिता : रचनाकाल

इसके कर्ता खम्भात निवासी सागंण के पुत्र कवि विक्रम हैं। इनका सम्प्रदाय विवादग्रस्त है।

इस दूतकाव्य की प्राचीनतम प्रति वि० सं० १४७२ की और दूसरी वि० सं० १५१९ की मिली है। अतः कवि को वि० सं० १४७२ से पूर्व मानने में कोई विरोध नहीं है।

प्रेमी जी के मत के अनुसार कवि १३ वीं शती और विनयसागर के अनुसार १४ वीं शती में हुये थे।[1]

१३. जैन मेघदूत (मेरुतुंग आचार्य)

नेमिनाथ एवं राजीमती के प्रसंग को लेकर यह दूसरा दूतकाव्य है। इसमें कवि ने पहले दूतकाव्य की तरह मेघदूत को समस्यापूर्ति का आश्रय नहीं लिया है। यह नाम साम्य के अतिरिक्त शैली, रचना, विभाग आदि अनेक बातों से स्वतन्त्र है। इसमें चार सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में क्रमशः ५०, ४९, ५५, ४२ पद्य हैं।[2]

नेमिनाथ द्वारा पशुओं का चीत्कार सुनना तथा विवाह परित्याग कर मार्ग से ही रेवतक (गिरनार) पर्वत पर मुनिवत् तपस्या करना, राजीमती द्वारा मूर्च्छित होना, सखियों द्वारा उपचार, राजीमती द्वारा होश में आना, तथा अपने समक्ष उपस्थित मेघ को अपने विरक्त पति का परिचय देकर अपने प्रियतम को रिझाने के लिये दूत के रूप में चुनना तथा अपनी दुःखित अवस्था का वर्णन कर अपना सन्देश सुनाना वर्णित है। सन्देश को सुनकर सखियाँ राजीमती को समझाती हैं कि नेमिनाथ मनुष्य भव को सफल बनाने के लिये वीतरागी हुये हैं। कहाँ मेघ तथा कहाँ तुम्हारा संदेश और कहाँ उनकी वीतरागी प्रवृत्ति, इन सबका मेल नहीं बैठता और न ही अब नेमिनाथ अनुराग की ओर ही प्रवृत्त हो सकते। अन्त में राजीमती शोक त्याग कर नेमिनाथ के पास जाकर साध्वी बन जाती हैं।

१४. हरिवंशपुराण (सकलकीर्ति, जिनदास)

जिनसेन के हरिवंशपुराण के आधार पर रचित इस कृति में ८० सर्ग हैं। इसमें हरिवंश कुलोत्पन्न २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण तथा उनके समकालीन कौरव पाण्डवों का वर्णन है।

रचयिता : रचनाकाल

इस अंक के प्रथमांश १४ सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति और शेष सर्गों की रचना उनके शिष्य ब्रह्मजिनदास ने की है। इनके समय के सम्बन्ध में विवाद है। डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल इनका जन्म वि० सं० १४४३ (सन् १३८६ ई०) और स्वर्गवास १४९९ मानते हैं। जब कि ज्योतिप्रसाद जैन ने जन्म १४१८ और मृत्यु १४९९ माना है और डा० जोहराकरपुर

१. द्र० जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी)
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ५४९

द्वारा निर्धारित काल १४५०-[१] में डूंगरपुर के संस्थापक तथा बागड (सागवांडा) बड साजन पद के भी संस्थापक थे। इन्होंने संस्कृत में २८ तथा ६ राजस्थानी भाषा में ग्रन्थ लिखे।

१५. हरिवंशपुराण (ब्रह्मजिनदास)

यह संस्कृत रचित पुराण काव्य २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के वंश में उत्पन्न व्यक्तियों पर लिखा गया है।[२]

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता ब्रह्म जिनदास थे। ये संस्कृत के महान् विद्वान् और कवि थे। ये कुन्दकुन्दान्वयी सरस्वतीगच्छ के भट्टारक सकल कीर्ति के कनिष्ठ भ्राता और शिष्य थे। इनका समय वि० सं० १४५०-१५२५ (सन् १३९३-१४६८ ई०) है।

१६. नेमिनाथ महाकाव्य (श्री कीर्तिराज उपाध्याय)

काव्यात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें १२ सर्ग हैं जिसमें ७०३ पद्य हैं। सर्गों के निर्माण में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा, माधुर्य एवं प्रसादगुण युक्त है। यह काव्यरचना पूर्णरूप से भगवान् नेमिनाथ पर रचित है, जिसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं।[३]

इस काव्यरचना में पूर्व भवों का वर्णन एकदम छोड़ दिया है। प्रथम सर्ग में च्यवन कल्याणक, दूसरे सर्ग में प्रभात वर्णन, तीसरे सर्ग में जन्म कल्याणक, चतुर्थ सर्ग में दिक्कुमारियों का आगमन, पाँचवें सर्ग में मेरुवर्णन, छठे सर्ग में जन्मोत्सव, सातवें सर्ग में जन्मोत्सव आठवें सर्ग में षड्ऋतुओं का वर्णन, नवें सर्ग में कन्यालाभ, दशवें सर्ग में दीक्षा वर्णन, ग्यारहवें सर्ग में मोह संयम, युद्ध वर्णन तथा बारहवें सर्ग में जनार्दन का आगमन और उनके द्वारा स्तुति तथा नेमिनाथ का मोक्ष वर्णन दिया है।

रचयिता : रचनाकाल

काव्य के कर्ता का नाम श्री कीर्तिराज उपाध्याय है, जैसा कि काव्य में १२वें सर्ग से सूचित होता है। इनके समय के विषय में एक हस्त लिखित प्रति उपलब्ध है - "सं० १४९५ वर्षे श्री योगिनी पुरे (दिल्ली) लिखितमिदम्"[४] सम्भवतः यही या इससे पूर्व ही कवि का समय है। एक अनुमान है कि कवि खरतरगच्छ के थे।

१७. नेमिनाथचरित (गुणविजयगणि)

यह चरित ग्रन्थ संस्कृत पद्य के १३ विभागों में निर्मित है। ग्रन्थ ५२८५ श्लोक प्रमाण है।[५] इस चरित्रकाव्य में नेमिनाथ के पूर्व नव भवों का, नेमिनाथ और राजीमती का नव भवों

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ५१
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग -३, पृ०-३४०
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ११६
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० ११६
५. वही, पृ० - ११६

का उत्तरोत्तर आदर्श प्रेम, पति-पत्नी का अलौकिक स्नेह, राजीमती का वैराग्य, साध्वी जीवन, नेमिनाथ की बालक्रीड़ा, दीक्षा, कैवल्यज्ञान, मोक्ष-गमन का सुन्दर वर्णन है।

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता तपागच्छ के हरिविजयसूरीश्वर के पट्टधर कनकविजय पण्डित के प्रशिष्य और वाचक विवेकहर्ष के शिष्य गुणविजयगणि हैं। इन्होंने सौराष्ट्र के सुरपत्तन शहर के पास द्रगबन्दर में वि०सं० १७६८ (सन् १७११ ई०) को आषाढ़ पंचमी को यह ग्रन्थ प्रारंभ किया और श्रावण षष्ठी को समाप्त किया था।[१]

१८. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (मेघविजय उपाध्याय)

यह चरित्रकाव्य त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित के अनुकरण पर निर्मित है। प्रस्तुत चरितकाव्य में भी नेमिनाथ का चरित अंकित किया गया है।[२]

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता मेघविजय उपाध्याय हैं। इन्होंने अन्य ग्रन्थों के अन्त में प्रशस्तियाँ दी हैं जिनका रचनाकाल वि०सं० १७०९-१७५० (सन् १६५२-१७०३ ई०) है।

१९. नेमिनरेन्द्रस्तोत्र (जगन्नाथ कवि)

जगन्नाथ कवि संस्कृत के एक अच्छे कवि हैं जिनके द्वारा २२ वें तीर्थङ्कर के ऊपर एक स्तोत्र लिखा गया है, वह है "नेमिनरेन्द्रस्तोत्र"।

रचयिता : रचनाकाल

ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय १७ वीं शती का अन्त तथा १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ था। इन्होंने वि० सं० १७२९ (सन् १६७२ ई०) में वाग्भट्टालंकार की कविचन्द्रिका नाम की टीका लिखी है।[३]

२०. हरिवंशपुराण (जिनसेन)

यह महाकाव्य की शैली पर लिखा एक पुराण है। इस ग्रंथ का मुख्य विषय हरिवंश में उत्पन्न हुए २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का चरित्र वर्णित करना है। इसका दूसरा नाम "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रह" भी है। नेमिनाथ का इतना वर्णन इससे पूर्व अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है।[४]

रचयिता : रचनाकाल

ग्रन्थ की समाप्ति पर ६६ वें सर्ग में एक महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति दी गई है, जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता पुन्नाट संघीय जिनसेन हैं। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण और दादागुरु

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ११७
२. वही, पृ० - ७७
३. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०-९१
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०- ४३

का नाम जिनसेन था । जिनसेन ने इस ग्रन्थ की रचना शक सं० ७०५ (सन् ७८३ ई०) वि० सं० ८४० में की थी ।[१]

२१. नेमिनाथपुराण (श्रीब्रह्मनेमिदत्त)

इस पुराणे ग्रन्थ की रचना १६ अधिकारों में की गई है और इसमें नेमिनाथ का चरित्र अंकित किया गया है । उनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और केवल्य इन पाँचों कल्याणकों का विस्तारपूर्वक वर्णन आया है ।[२]

नेमिनाथ की अपूर्व शक्ति से प्रभावित होकर राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण द्वारा प्रस्तुत की गई कूटनीति का भी चित्रण है । श्रीकृष्ण की कूटनीति के कारण ही नेमिनाथ विरक्त होते हैं । बिलखती हुई राजुल के आँसुओं का प्रभाव भी उन पर नहीं पड़ता । कवि ने सभी मर्मस्पर्शी कथाओं का उद्घाटन किया है । अन्त में इस चरित को मोक्ष पद बताया गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराणकाव्य के रचयिता श्री ब्रह्मनेमिदत्त हैं । ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण के विद्वान भट्टारक मल्लिभूषण के शिष्य थे । इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १८८५ (सन् १८२८ ई०) है ।

२२. सप्तसन्धान (महोपाध्याय मेघविजय)

यह काव्य नौ सर्गों में लिखा गया है । प्रत्येक पद्य में श्लेष द्वारा ऋषभ, शान्ति, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँचों तीर्थङ्करों एवं राम और कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित्र निकलते हैं ।[३]

रचयिता : रचनाकाल

इस सन्धान के रचयिता १८ वीं शती के महोपाध्याय मेघविजय हैं जिनकी रचना सं० १७६० (सन् १७०३ ई०) में की गई है ।[४]

२३. नेमिनाथ स्तोत्र (वस्तुपाल)

यह एक नेमिनाथ पर रचित स्तोत्र रचना है ।[५]

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता वस्तुपाल हैं । इनका रचनाकाल १८ वीं शती है ।

२४. नेमिनाथचरित (सूराचार्य)

यह २२ वें तीर्थङ्कर पर रचित एक काव्य है ।[६]

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ४६
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग - ३, पृ० ४०२-४०४
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ५२९
४. वही, पृ० - ५२९
५. द्रष्टव्य - वही, पृ० - ५०१
६. द्रष्टव्य - वही, पृ० - ११५

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता सूराचार्य हैं । (रचनाकाल अनुपलब्ध है)

२५. नेमिद्विसंधान (हेमचन्द्रसूरि)

इस सन्धान के कर्ता अजितदेव के शिष्य हेमचन्द्रसूरि हैं ।[१]

२६. नेमिनाथपुराण (भागचन्द्र)

रचयिता : रचनाकाल

पण्डित भागचन्द्र द्वारा रचित नेमिनाथपुराण उपलब्ध है। इनका रचनाकाल १९ वीं शताब्दी का अन्त तथा बीसवीं शताब्दी का प्रथम भाग है। ये संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान थे।[२]

२७. नेमिनाथचरित (उदयप्रभ)

सन् १२९९ के लगभग नागेन्द्रगच्छ के विजयसूरि के शिष्य उदयप्रभ ने भी २१०० ग्रन्थ प्रमाण नेमिनाथचरित की रचना की ।[३]

२८. नेमिभक्तामरकाव्य (प्राणप्रियकाव्य) (रतनसिंहसूरि)

यह काव्य नेमि राजीमती की स्तुति में रचा गया काव्य है । इसमें ४९ पद्य हैं । इस काव्य का दूसरा नाम प्राणप्रिय काव्य भी है ।[४]

रचयिता : रचनाकाल

यह काव्य धर्मसिंह के शिष्य रत्नसिंहसूरि कृत है । (रचनाकाल अनुपलब्ध है)

२९. नेमिचरित्र स्तोत्र (देवेन्द्रसूरि)

यह देवेन्द्रसूरि कृत नेमिनाथ पर रचित स्तोत्र है । (रचनाकाल अनुपलब्ध है)

३०. समामृत (रत्नसिंह)

यह एक नेमिनाथ पर आधारित एकांकी छाया नाटक है । इसकी प्रस्तावना में कहा गया है - भगवतः श्रीनेमिनाथस्य यात्रा-महोत्सवे विद्वद्भिः सभासद्भिरादिष्टोऽस्मि । यथा नेमिनाथस्य समामृतं नाम छाया नाटक अभिनयस्वेति ।[५]

रचयिता : रचनाकाल

इस एकांकी के रचयिता का नाम रत्नसिंह है । यद्यपि कर्ता ने अपना समय व अन्य परिचय नहीं दिया है पर सम्भव है कि ये नेमिनाथचरित पर आधारित प्राणप्रियकाव्य के कर्ता हों।

३१. पाण्डवचरित (देवप्रभसूरिमलधारिगच्छ)

यह चरित्रकाव्य जैन परम्परा के अनुसार वर्णित है । पाण्डवों के चरित्र के साथ-साथ नेमिनाथ का चरित्र भी स्वतः ही आ गया है ।[६]

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ११५
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग - ४, पृ० २९७-२९८
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ११५
४. वही, पृ० - ५६७
५. वही, पृ० - ५८९
६. वही, पृ० - ४९

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता देवप्रभसूरिमलधारिगच्छ थे । (रचनाकाल अनुपलब्ध है)

३२. महापुरुषचरित (मेरुतुंग)

इस रचना में ५ सर्ग हैं जिनमें ५ तीर्थङ्करों का वर्णन है जिसमें तृतीय सर्ग में नेमिनाथ का वर्णन आया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता मेरुतुंग हैं ।[१] (रचनाकाल अनुपलब्ध है)

३३. नेमिनिर्वाण काव्य (ब्रह्म नेमिदत्त)

यह नेमिनाथ पर रचित काव्य है । इसके रचयिता श्री ब्रह्मनेमिदत्त हैं । इस काव्य की प्रति ईडर में प्राप्त है ।[२]

३४. नेमिनिर्वाण काव्यपञ्जिकाटीका (भट्टारक ज्ञान भूषण)

यह एक संस्कृत रचना है जिसके रचयिता का नाम भट्टारक ज्ञानभूषण हैं ।[३]

अन्य प्रकाशित नेमिचरितों के लेखक

तिलकाचार्य (ग्रन्थाग्र ३५०० श्लोक) नरसिंह, भोजसागर, हरिषेण, मंगरस तथा मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त का उल्लेख मिलता है ।

ब्रह्मनेमिदत्त की कृति का नाम नेमिनिर्वाण तथा नेमिपुराण भी है । इसकी रचना वि० सं० १६३६ में हुई थी । इसमें १६ सर्ग हैं । रचयिता ने अपने को मूलसंघ सरस्वतीगच्छ का माना है ।

प्राकृत

३६. नेमिनाह चरिय (जिनेश्वर)

यह नेमिनाथ पर रचित प्राकृत रचना है ।

रचयिता : रचनाकाल

यह रचना जिनेश्वरकृत है जो वि० सं० ११७५ (सन् १११८ ई०) है ।[४]

३७. नेमिनाह चरिय (मल्लधारी हेमचन्द्र)[५]

यह भी प्राकृत रचना उपलब्ध है ।

इस प्राकृत रचना के रचनाकार मल्लधारी हेमचन्द्र (हर्षपुरीयगच्छ अभयदेव के शिष्य) हैं । इसका ५१०० ग्रन्थाग्र प्रमाण हैं जो १२वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हैं ।[६]

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ७७
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग-३, पृ०-४०४
३. वही, पृ० - ३५२
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ८७
५. वही, पृ० - ८७
६. वही, पृ० - ८८

३८. नेमिनाह चरिय (रत्नप्रभसूरि)[1]

यह एक गद्य-पद्यमय रचना है जो छः अध्यायों में विभक्त है। यह नेमिनाथ पर रचित विशाल रचना है। इसका ग्रन्थाग्र १३६०० प्रमाण है।

रचयिता : रचनाकाल

इस रचना के रचयिता बृहद्गच्छ के वादिदेवसूरि के शिष्य रतनप्रभसूरि है जिसकी रचना वि० सं० १२३३ (सन् ११७६ ई०) की है।[2]

३९. कृष्णचरित : कण्हचरिय (देवेन्द्रसूरि)

यह चरित श्राद्ध दिन कृत्य नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत दृष्टान्त रूप में आया है। यह एक प्राकृत में रचित काव्य है। इसके अन्तर्गत ही नेमिनाथचरित (नेमि निर्वाण) का वर्णन हुआ है। इसमें वसुदेव, कृष्ण, चारुदत्त, बलराम, नेमिनाथ आदि का वर्णन किया गया है।[3]

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं। इनका समय १४ वीं शताब्दी है।

अपभ्रंश

४०. नेमिनाहचरिउ की प्रशस्ति (हरिभद्रसूरि)

यह अपभ्रंश भाषा में २३ पद्यों में लिखित प्रशस्ति है।

रचयिता : रचनाकाल

इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य हरिभद्रसूरि हैं जो सं० १२१६ (सन् ११५९ ई०) में कुमारपाल के राज्यकाल में हुये हैं। मन्त्री पृथ्वीपाल की प्रेरणा से आचार्य ने यह ग्रन्थ लिखा था।[4] इसलिए ग्रन्थकार ने अपनी गुरु परम्परा के परिचय के साथ इस मन्त्री के पूर्वजों का भी थोड़ा बहुत परिचय दिया है।

४१. णेमिणाह चरिउ (महाकवि रइधू)

इस चरितकाव्य में श्री नेमिनाथ (२२वें तीर्थङ्कर) का जीवन चरित वर्णित है। इसकी कथावस्तु १४ सन्धियों में विभक्त है और ३०२ कडवक हैं। इस पौराणिक महाकाव्य में भी रस, अलंकार आदि की योजना हुई है। इस काव्य में पुराण दर्शन के तत्त्व भी समृद्ध रूप से प्रयुक्त हैं।

रचयिता : रचनाकाल

णेमिणाहचरिउ के रचयिता कवि रइधू हैं। इनका दूसरा नाम सिंहसेन था। इनके पिता का नाम हरिसिंह और पितामह का नाम संघपति देवराज था। उनकी माँ का नाम विजयश्री और

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ० - ८७
२. वही, पृ० - ८८
३. वही, पृ० - १३१
४. वही, पृ० - ४४३

पत्नी का नाम सावित्री था। इनके उदयराज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के जन्म के समय कवि णेमिणाहचरिउ की रचना कर रहे थे।[१] कवि का रचनाकाल वि० सं० १४५७ से १५३६ (सन् १४०० से १४७९ ई०) सिद्ध होता है।[२]

४२. णेमिणाहचरिउ (अमर कीर्तिगणि)

यह चरितकाव्य भी अपभ्रंश भाषा में रचित है जिसमें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। प्रसंगवश कृष्ण व उसके चचेरे भाइयों का भी चरित पाया जाता है। इसमें २५ सन्धियाँ हैं जिसकी श्लोक संख्या ६८९५ है।[३]

रचयिता : रचनाकाल

यह ग्रन्थ अमरकीर्तिगणि द्वारा रचित है। कवि की मुनि गणि और सूरि उपाधियाँ हैं।

इस ग्रन्थ को कवि ने वि० सं० १२४४ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को समाप्त किया था। वि० सं० १५१२ की इसकी प्रति सोनागिर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।

४३. णेमिणाहचरिउ (दामोदर)

अपभ्रंश भाषा में रचित यह २२वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ पर लिखा गया चरितकाव्य है। इसमें पाँच सन्धियाँ हैं। यह चरितकाव्य आडंबरहीन तथा गम्भीर अर्थपूर्ण है जिनमें नेमिनाथ की कथा साधारण रूप से गुंफित है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता का नाम दामोदर है। यह रचना वि० सं० १२८७ (सन् १२३० ई०) में लिखी गई है। कवि ने अपने गुरु का नाम दामोदर बताया है जो गणधर के पट्टधर शिष्य थे। ग्रन्थ के पुष्पिका वाक्य में कवि ने यह स्वयं उल्लेख किया है।[४]

४४. णेमिणाहचरिउ (कवि लक्ष्मणदेव)

णेमिणाहचरिउ की दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। एक पाण्डुलिपि पंचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित है। दूसरी पाण्डुलिपि पटोदी शास्त्र भण्डार जयपुर में है। यह प्राचीन अपभ्रंश काव्य रचना है। इस ग्रन्थ में चार सन्धियाँ हैं और ८३ कड़वक हैं। ग्रन्थ प्रमाण १३५० श्लोक के लगभग है।[५]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ४, पृ० २०१-२०२
२. महाकवि रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ० १२०
३. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ४, पृ० - १५८
४. इय णेमिणाह चरिए महामुणि कमलभट्ट पच्चक्खे महाकई-कणिटठ दामोदर विरइए पंडित रामंवर - आएसिए महाकव्वे मल्हसुअणम्म एव आयेण्णिए णेमि णिव्वाणमणं पंचमो परिच्छेओ सम्मत्तो।
तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग - ४, पृ० - १९५
५. वही, भाग - ४, पृ० - २०७

प्रथम सन्धि में मंगल स्तवन के अनन्तर सज्जन दुर्जन स्मरण किया गया है। तदन्तर कवि ने अपनी अल्पज्ञता प्रदर्शित की है। मगध देश और राजगृह नगर के वर्णन के पश्चात् कवि राजा श्रेणिक द्वारा गौतम गणधर से नेमिनाथ का चरित वर्णित करने के लिये अनुरोध करता है। वराड देश में द्वारवती नगरी में तीर्थङ्कर नेमिनाथ का जन्म समुद्रविजय के यहाँ हुआ।

दूसरी सन्धि में नेमिनाथ की युवावस्था, वसन्त वर्णन, जलक्रीडा, आदि के प्रसंग, नेमिनाथ के पराक्रम से कृष्ण को ईर्ष्या, विरक्ति का प्रयास, जूनागढ़ के राजा की पुत्री से विवाह, बारात का सजधज के जूनागढ़ प्रस्थान, नेमिनाथ की दृष्टि बाड़े में बंधे चीत्कार करते पशुओं पर जाना, दयालु-हृदय पीड़ा से युक्त होना, विवाह परित्याग, पशु छुड़वाना, वन को प्रस्थान, वापस लौटाने का प्रयास विफल, अन्त में ऊर्जयन्त गिरि पर गमन और सहस्नाम वन में वस्त्रालंकार त्यागकर दिगंबर मुद्रा धारण करना आदि घटनाओं का वर्णन है।

तीसरी सन्धि में राजीमति की वियोगावस्था, विरक्ति तथा तपश्चरण के लिए आत्म साधना में प्रवृत्त होना।

चौथी सन्धि में तपश्चर्या के द्वारा नेमिनाथ को कैवल्य ज्ञान प्राप्ति होना, समवशरण सभा, प्राणि कल्याणार्थ धर्मोपदेश और अन्त में निर्वाण प्राप्त करना। इस ग्रन्थ में श्रावकाचार और मुनि आचार का भी वर्णन आया है।[१]

रचयिता : रचनाकाल

इस चरितकाव्य के रचयिता कवि लक्ष्मण देव हैं। इस ग्रन्थ की पुष्पिकाओं में कवि ने अपने आपको रत्नदेव का पुत्र कहा है जिनकी यह एकमात्र रचना है। इसका लेखनकाल वि० सं० १५९२ है। इसकी दो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध है। एक पाण्डुलिपि पंचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ की दूसरी पाण्डुलिपि वि० सं० १५१० की लिखी हुई प्राप्त होती है।[२]

हिन्दी

४५. नेमिनाथ फागु (राजशेखर सूरि)

यह एक नेमिनाथ पर रचित भक्तिप्रधान काव्य है। इसमें २७ पद्य हैं जिसमें सौन्दर्य चित्रण भी हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता राजशेखरसूरि हैं जो हर्षपूरीयगच्छ के कोटिकगण से सम्बन्धित मुनितिलकसूरि के शिष्य थे। इस फागु की रचना कवि ने वि० सं० १४०५ (सन् १३४८ ई०) के लगभग की थी।[३]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ४, पृ० - २०८ २. वही, पृ० - २०८

३. "नेमि शीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख - डा० कु० इन्दुराय जैन "अनेकान्त" वर्ष ३९, किरण ४, अक्तू- दिसं० ८६ पृ० ८

४६. नेमिनाथ विवाह (गुणकीर्ति)

नेमिनाथ विवाह में ४४ कड़वक हैं। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा नेमिनाथ के विवाह सम्बन्ध का निश्चय और विवाह के अवसर पर मारे जाने वाले पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर नेमिनाथ का विरक्त होना वर्णित है।

४७. नेमिनाथ जिनदीक्षा (गुण कीर्ति)

इसमें ४५ कड़वक हैं जिनमें नेमिनाथ की तपस्या और मुक्ति का वर्णन है।[१]

४८. नेमिनाथ पालना (गुण कीर्ति)

इसमें १९ कड़वक हैं जिसमें बालक नेमिनाथ के झूले में झूलने का वर्णन है।[२]

रचयिता : रचनाकाल

इन कडवकों के रचयिता गुणकीर्ति हैं। इनकी रचनाओं में सकलकीर्ति भुवनकीर्ति और ब्रह्मजिनदास का गुरु रूप में उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि गुणदास का ही मुनिदीक्षा के बाद का नाम गुणकीर्ति होगा।[३]

इनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ सन् १४५० ई० के आसपास स्पष्ट होता है।[४]

४९. नेमिनाथ नवरस फागु (सोमसुन्दरसूरि)

इस फागु की भाषा पर प्राकृत एवं गुजराती का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें कवि ने तीर्थङ्कर नेमिनाथ के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को निवेदित किया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता सोमसुन्दरसूरि हैं। इनका समय ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी है।[५]

५०. नेमिनाथ विवाहलो (उपाध्याय जयसागर)

प्रस्तुत रचना में नेमिनाथ के विवाह की रोमांचक घटना का वर्णन किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

कृति के रचयिता उपाध्याय जयसागर हैं। काव्य का रचनाकाल वि० सं० १४१८ (सन् १३६१ ई०) के लगभग है।[६]

५१. नेमिनाथ छन्द (शुभचन्द्र)

यह एक हिन्दी में रचित छन्द रचना है जो २२ वें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ के पावन चरित्र पर आधारित है, जिसमें नेमि जिन का चित्रण २५ पद्यों में किया गया है।[७]

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - २०९ २. वही, पृ० २०८
३. वही, भाग - ७, पृ० - २०८ ४. वही, पृ० - २०७
५. नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य, अनेकान्त, अक्तु - दिसं० १९८६, पृ० - ८
६. वही, पृ० - ८ विशेष जानकारी के लिए द्र० - हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि (डा० प्रेमसागर जैन) पृ० ५२
७. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ३, पृ० - ३८७

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत छन्द काव्य श्री शुभचन्द्र कवि द्वारा रचित है। ये भट्टारक शुभचन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय वि० सं० १५३५ से १६२० (सन् १४७८ से १५६३ ई०) का है।

५२. नेमिनाथ रास (जिनसेन भट्टारक)

प्रस्तुत रास भी श्री नेमिनाथ के चरित्र पर चित्रित है। इस रासकाव्य में नेमि जिन का जन्म, बारात, विवाह, कंकण को छोड़कर वैराग्य ग्रहण करना, तत्पश्चात् कैवल्य प्राप्ति एवं निर्वाण लाभ, इन सभी घटनाओं का संक्षेप में वर्णन हुआ है।[१]

यह रास प्रबन्ध काव्य है और जीवन की समस्त प्रमुख घटनाऐं इसमें चित्रित हैं। समस्त रचना में ९२ पद्य हैं। इसकी प्रति जयपुर के दिगंबर जैन बड़ा मन्दिर तेरहपन्थी शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। रास की भाषा राजस्थानी मिश्रित है जिस पर गुजराती का प्रभाव है।[२]

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत रास जिनसेन भट्टारक (द्वितीय) की एकमात्र कृति है, जिसकी रचना वि० सं० १५१६ (सन् १४५९ ई०) पौष शुक्ला पूर्णिमा है।

५३. नेमिजिन वन्दना (धनपाल)

इस ग्रन्थ में अजमेर के दिगम्बर जैन मन्दिर सांवला बाग में नेमिनाथ की स्तुति की गई है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता धनपाल हैं जो कविदेल्ह के पुत्र थे। देल्ह की बुद्धि प्रकाश, विशालकीर्ति कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। इनके पुत्र उक्कुंरसी अच्छे कवि थे। कवि खण्डेलवाल दिगम्बर जैन पहाड़िया थे। डा० कासलीवाल ने इनका समय वि० सं० १५२५-१५९० (सन् १४६८-१५३३) माना है।[३]

५४. नेमिचरित रास (ब्रह्मजीवन्धर)

यह रास काव्य भी नेमि के चरित पर रचा गया है जिसमें ११५ पद्य हैं।[४]

वसन्त ऋतु के वर्णन के माध्यम से कवि ने २२ वें तीर्थङ्कर नेमिनाथ का चरित्र अंकित किया है। वसन्त वर्णन में कवि ने पुरानी रूढ़ि के अनुसार अनेक वृक्षों, फलों, फूलों के नामों की गणना की है। कथानक इस प्रकार है :-

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-३, पृ० ३८७

२. वही, भाग - ३, पृ० - ३८६

३. बाई अजीतमति एवं उसमें समकालीन कवि, पृ० ९५-९६

४. द्रष्टव्य - तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ३, पृ० ३८८-३८९

वसन्तोत्सव मनाने के लिए द्वारवती के सभी नर-नारी जन उल्लास से भर रहे हैं और टोलियों के रूप में वन की ओर जा रहे हैं। नेमि जिन भी अपनी भाभियों की प्रेरणा से वसन्तोत्सव में जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। वन में पहुँचकर सभी ने वसन्तोत्सव सम्पन्न किया। वसन्तोत्सव से वापस लौटने पर कवि ने प्रसिद्ध घटना की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। एक दिन सभा में नेमि जिन के बल का कथन हो रहा था। बलदेव ने कहा कि नेमि जिन से बढ़ कर कोई शक्तिशाली नहीं है। इस कथन को सुनकर श्रीकृष्ण को अभिमान उत्पन्न हो जाता है और उन्होंने नेमि जिन से कहा कि यदि आप अधिक बलशाली हैं तो मल्लयुद्ध करके देख लीजिए। तब नेमिजिन ने उत्तर दिया - "योद्धा मल्लयुद्ध करते हैं सत्य है, पर राजकुमारों के बीच शक्ति-परीक्षण के लिए मल्लयुद्ध का होना उचित नहीं है। यदि तुम्हें मेरे बल की परीक्षा करनी है तो मेरे हाथ या पैर की अंगुली को झुकाओ। लेकिन श्रीकृष्ण हाथ या पैर की अंगुली को नहीं झुका सके। नेमि ने अपनी अंगुली से ही श्रीकृष्ण को झुका दिया। उन्हें उनकी शक्ति का परिज्ञान हुआ। जब नेमि के विवाह का उपक्रम किया गया तो श्रीकृष्ण ने षड्यन्त्र कर पशुओं को एक बाड़े में एकत्र कर दिया। जब बारात जूनागढ़ पहुँची तो नेमि जिन पशुओं का करुण क्रन्दन सुन विरक्त हो गये। उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण की और ऊर्जयन्त गिरि पर तपस्या करने चले गये।

जब राजुल को नेमिजिन की विरक्ति का समाचार मिला तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। वह सखियों के साथ गिरनार पर्वत पर जाने के लिए तैयार हो गयी। माता-पिता गुरुजनों ने बहुत समझाया पर वह नहीं मानी और दीक्षा लेकर तपश्चरण करने में संलग्न हो गई। इस प्रकार नेमिचरित रास उच्च कोटि का काव्य है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता श्री भट्टारक ब्रह्मजीवन्धर हैं। ये भट्टारक सोमकीर्ति के प्रशिष्य एवं यमःकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय वि० सं० १६ वीं शताब्दी है।[१]

५५. नेमिनाथ बसन्त (कवि वल्ह) (बूचिराज)

कवि वल्ह द्वारा रचित यह रचना भी पद्यात्मक है जिसमें २३ पद्य हैं। बसन्त ऋतु का रोचक वर्णन करने के बाद नेमिनाथ ने अकारण पशुओं को घिरा हुआ देखकर और सारथी से अतिथियों के लिए पशुओं के वध की बात सुनकर विरक्त हो रैवतक गिरि पर जाना वर्णित है। राजीमती का विरह एवं तपस्विनी के रूप में आत्मसाधना वर्णित है। इस प्रकार यह भी चरित्र प्रधान काव्य रचना है।[२]

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग - ३, पृ० - ३८७

२. वही, भाग - ४, पृ० २३३

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता - कवि वल्ह (बूचिराज) हैं। कवि वल्ह या बूचिराज मूलसंघ के भट्टारक पद्मनन्दि की परम्परा में हुये हैं। ये राजस्थान के निवासी थे। ये एक अच्छे कवि थे। इनका समय पठन पाठन आदि में व्यतीत होता था। कवि अपभ्रंश तथा लोक भाषा के भी अच्छे जानकार थे। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका समय वि० सं० की १६वीं शती प्रतीत होता है।[१]

५६. नेमिनाथ बारहमासा (कवि वल्ह)

भगवान् नेमिनाथ पर रचित नेमिनाथ बारहमासा काव्य मिलता है जिसमें बारह महीनों में राजीमती ने अपने उद्गारों को व्यक्त किया है तथा विभिन्न महीनों चैत्र, बैसाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, विभिन्न प्रकार की विशेषताओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण राजीमती को उद्वेलित किया गया है और वह नेमिनाथ को सम्बोधित कर अपने भावों को व्यक्त करती है। यह कृति सरस तथा मार्मिक है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता कवि वल्ह हैं। कवि का समय वि० सं० की १६वीं शती का उत्तरार्द्ध है।[२] नेमिनाथबसन्त के सन्दर्भ में इनका परिचय इसके ठीक पूर्व दिया गया है।

५७. नेमिजिनेश्वर संगीत (कवि मंगरस)

एक नेमिनाथ पर रचित संगीत रचना है। जिसमें संगीत की अनुपम छटा है। सभी राग रागनियाँ इसके चरणों पर लेटती हैं।

रचयिता : रचनाकाल

इस संगीत रचना के रचयिता कवि मंगरस हैं। इनका समय ई० सन् १५०८ है। इनका गीतिकारों तथा प्रबन्धकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।[३]

५८. नेमिश्वर का बारहमासा (बूचराज)

इस कृति में राग बडहानुके कुल १२ पद्य हैं जिन्हें प्रारम्भ श्रावण मास से करके आषाढ़ पर समाप्त किया है। यह गुटका दिगम्बर जैन मन्दिर नागदी बूंदी में है।

५९. नेमिनाथ बसन्त (बूचराज)

यह एक लघु रचना है जिसमें वसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली में रोचक वर्णन किया गया है।[४]

---

१. तीर्थङ्कर महीवीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ० - २३० २. वही, पृ० - २३३

३. वही, भाग-३, पृ० ४४३

४. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, पृ० - ८७

६०. नेमीश्वर गीत (बूचराज)

यह भी एक नेमिनाथ विषयक लघुगीति है ।

रचयिता : रचनाकाल

इन काव्य कृतियों के रचनाकार बूचराज हैं जो विक्रम की १६वीं शती के अन्तिम चरण के प्रमुख कवियों में से थे । इनके वचा, वल्ह, वील्ह, वल्हव नाम भी लोकप्रिय रहे तथा ये भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे ।

बारहमासा में कवि ने अपना नाम बूचा कहकर उल्लेख किया है ।[१]

६१. नेमीश्वर को उरगानो (श्रावक चतरुमल अथवा चवरुमल)

यह एक "उरगानो" संज्ञक रचना है । कवि ने स्पष्ट किया है कि गुणों को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो (काव्य) कहते हैं । कवि ने नेमि द्वारा विवाह मण्डप से विरक्त हो लौट आने और वैराग्य धारण करने की मार्मिक कथा को ४५ पदों में प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है ।

रचयिता : रचनाकाल

यह काव्य श्रावक चतरुमल अथवा चवरुमल द्वारा रचित है । कृति की रचना वि०सं० १५७१ (ई० सन् १५१४) में ग्वालियर में भादव बदी पंचमी सोमवार में की गई थी । कवि की यह सबसे बड़ी रचना है ।[२]

६२. नेमिराजमतीवेलि (कविठक्कुरसी)

इसका दूसरा नाम नेमीश्वरवेलि भी है । इसमें नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसंग से लेकर वैराग्य धारण करने एवं अन्त में निर्वाण प्राप्त करने तक की संक्षिप्त कथा दी गई है । सम्पूर्ण वेलि में १० दोहे हैं । ५ पद्धडिया छन्द हैं । इसकी भाषा ब्रज है तथा राजस्थानी का प्रभाव है । नेमि-राजमति बेलि की पाण्डुलिपियाँ राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होती हैं । जिनमें जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी हैं ।[३] परन्तु २० छन्दों वाली इस वेलि को डा० कासलीवाल ने "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" पुस्तक में प्रकाशित करवा दिया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस वेलि के रचयिता कविवर ठक्कुरसी हैं । ठक्कुरसी राजस्थान के ढूंढाहड क्षेत्र के कवि थे । इन्होंने स्वयं अपनी कृति "मेघमाला कहा" में ढूंढाहड शब्द का उल्लेख किया है ।[४]

---

१. 'आषाढ़ चडिया भराड बूचा नेमि अजउ न आइया ।।'
नेमीस्वर का बारहमासा, "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि", पृ० - २३

२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, पृ० १५९ - १६०

३. वही, पृ० २४०-२४१ ४.वही, पृ० - २३८

"मेघमाला कहा" का रचनाकाल वि० सं० १५८० (सन् १५२३ ई०) है। अतः इनका रचनाकाल १६ वीं शती है।

६३. नेमिरंगरत्नाकरछन्द (कवि लावण्य समय) (लघुराज)

प्रस्तुत कृति की १७ पत्रों वाली प्रति आमेर शास्त्र भण्डार (अब महावीर जी में स्थानान्तरित) में संग्रहीत है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत कृति के रचनाकार कवि लावण्यसमय हैं। इनके बचपन का नाम लघुराज था और वे १६ वीं शताब्दी के कवियों में से एक थे।

(लावण्यसमयकृत - "राजुलविरहगीत" अथवा "राजुलनेमि अबोला" की प्रति भी उक्त शास्त्र भण्डार में. है)

६४. नेमिनाथ स्तवन (कवि धनपाल)

नेमिनाथ स्तवन अथवा नेमिजिनवन्दना ५ छन्दों की लघु कृति है जिसमें नेमिनाथ के तोरणोद्वार से लौटने, राजुल का त्याग, गिरनार पर्वत पर तप एवं नेमि निर्वाण का सुन्दर वर्णन हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता कवि धनपाल हैं जो प्रसिद्ध कवि देल्ह के पुत्र तथा ठक्कुरसी के अनुज थे। इनका समय सं० १५२५ से १५९० (१४६८-१५३३ ई०) तक माना जाता है।[२]

६५. नेमीश्वर रास या हरिवंश रास (ब्रह्मजिनदास)

इस कृति को हरिवंश रास भी कहते हैं। कवि ने नेमिनाथ के गर्भ च्यवन से लेकर निर्वाण तक की कथा कही है और प्रासंगिक रूप से श्रीकृष्ण और पाण्डवों की कथा भी अनुस्यूत है। यह कृति तीन हजार श्लोक प्रमाण है। यह हिन्दी का जैन महाभारत भी कहा जाता है।[३]

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता ब्रह्मजिनदास हैं। जिनदास नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलता है परन्तु विवेच्य जिनदास भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य एवं अनुज थे। ये संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और पहले नेमिनाथ पुराण की रचना संस्कृत में की थी परन्तु बाद में बहुजन हिताय संवत् १५२० (१४६३ ई०) में स्वयं ही उपर्युक्त रास की रचना हिन्दी में की।[४]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेख अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - ९

२. महाकवि ब्रह्मजिनदास - व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० - ४२

३. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेखअनेकान्त, अक्तूबर - दिसम्बर, पृ० ९

४. वही, पृ० ९

६६. नेमिनाथ रास (मुनि पुण्यरतन)

राजस्थानी मिश्रित हिन्दी भाषा में प्रस्तुत नेमिनाथ रास की रचना हुई है। इस कृति की एक पूर्ण प्रति भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर अजमेर के शास्त्र भण्डार वेष्टन ७३९ में बद्ध है। कुल पद्य संख्या ६९ है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत रास के रचयिता मुनि पुण्यरतन हैं। इस कृति की रचना सं० १५८६ (सन् १५२९ ई०) में की थी। कवि के नाम से "नेमिनाथ फागु" का भी उल्लेख मिलता है जिसकी प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर के विजयराम पांडया, जयपुर के शास्त्र भण्डार में गुटका नं० १४ वेष्टन १०२ में संकलित है।[१]

६७. नेमिनाथ गीत (ब्रह्म० यशोधर)

प्रस्तुत गीत रचना तीन रूपों में मिलती है। प्रथम नेमिनाथगीत १५८१ की है। इस गीत में १८ अन्तरे हैं पर इसकी कोई पूर्ण प्रति अभी उपलब्ध नहीं हो सकी है। दूसरा गीत राग-सोरठा में निबद्ध है तथा गीत में कुल पाँच छन्द हैं। तीसरा नेमिनाथ गीत अपेक्षाकृत बड़ी रचना है जिसमें कुल ७१ छन्द हैं जो राग गौड़ी में बद्ध हैं। गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित है तथा इसका मूल पाठ "आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर" (डा० कपूरचन्द कासलीवाल) में प्रकाशित हो गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत काव्य की रचना १६ वीं शताब्दी के प्रख्यात कवि ब्रह्म यशोधर ने की है।[२]

६८. नेमिनाथ स्तवन (भट्टारक शुभचन्द्र प्रथम)

इस स्तवन में कुल २५ छन्द हैं और इस कृति को नेमिनाथ छन्द भी कहते हैं। इस कृति का उल्लेख जिनरत्नकोश में हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत स्तवन के रचयिता भट्टारक शुभचन्द्र जो १६ वीं शताब्दी के मूर्धन्य भट्टारक रहे तथा जिन्होंने पाण्डव पुराण जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा, इन्होंने ही हिन्दी भाषा में यह स्तवन लिखा है।[३]

६९. नेमीश्वर गीत (जयसागर भट्टारक)

"नेमीश्वर गीत" की कोई प्रति उपलब्ध नहीं तदपि इनके द्वारा रचित "चुनड़ी गीत"

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेख अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - ९

२. महाकवि ब्रह्मजिनदास - व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० - ४२

३. द्र०- डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", ले०, अक्तू० दिस०, पृ० ९ ४.वही, पृ० ९

प्रकाशित हो गया है जिसे चरित्र चुनड़ी भी कहते हैं । इस रूपक गीत में नेमिनाथ के वैराग्य लेने पर राजुल ने चारित्र चुनड़ी को किस प्रकार धारण किया, इसका १६ पद्यों में मार्मिक वर्णन हुआ है ।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत गीत के रचयिता जयसागर भट्टारक, रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यों में से थे परन्तु इनके जीवन के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती ।[१]

७०. नेमिनाथ भवान्तर (चिमना पण्डित)

यह ११ पद्यों का गीत है जिसमें माता शिवा देवी और नेमिनाथ के संवाद के रूप में उनके पूर्वजन्मों का संक्षिप्त वर्णन है ।[२]

७१. नेमिनाथ पालना (चिमना पण्डित)

यह एक १८ पद्यों का गीत है जिसमें बालक नेमिनाथ के झूले में झूलने का वर्णन है।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों रचनाओं के रचयिता चिमना पण्डित हैं जिनका समय सन् १६५०-१६७५ है ।[३]

७२. नेमिनाथ भवान्तर (महीचन्द्र)

नेमिनाथ भवान्तर में ७१ कड़वक हैं जिनमें माता शिवादेवी के साथ संवाद के रूप में नेमिनाथ के पूर्वजन्मों की कथा वर्णित है ।[४]

रचयिता : रचनाकाल

इस भवान्तर के रचयिता महीचन्द्र हैं जो लातूर के भट्टारक विशालकीर्ति के पट्टशिष्य थे । इनका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी है ।[५]

७३. नेमि धर्मोपदेश एवं ७४. नेमिनाथ पूजा (ब्रह्म ज्ञानसागर)

उपर्युक्त दोनों रचनाऐं क्रमशः हिन्दी तथा संस्कृत में लिखी गई हैं । जिनमें नेमिनाथ का चरित्र अंकित किया गया है । ये रचनायें भाषा भाव की दृष्टि से साधारण हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

इन दोनों रचनाओं के रचयिता ब्रह्मज्ञानसागर हैं । इनकी रचना १७ वीं शताब्दी में की गई है ।[६]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेख अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ०-१०

२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-२१५

३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - २१५

४. वही, पृ० - २२०

५. वही, पृ० - २१९

६. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग-३ पृ० ४४३

७५. नेमिकुमार रास (श्री वीरचन्द्र)

यह एक नेमिनाथ पर रचा गया रास है जो भगवान नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर आधारित है ।[१]

रचयिता : रचनाकाल

इस रास के रचयिता श्री वीरचन्द्र हैं । डा० कस्तूरचन्द काशलीवाल की सूचना के अनुसार इसकी पाण्डुलिपि उदयपुर के अग्रवाल दिगंबर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है । इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६७० (सन् १६१३ ई०) में समाप्त हुई है । स्वयं आचार्य ने लिखा है -

"संवत् सोलहोत्तरि, श्रावण सुदि गुरुवार ।
दशमी को दिन संपडो, रास रच्यो मनोहार ।।

यह रचना गुजराती मिश्रित राजस्थानी में है ।

७६. राजीमतीनेमिसुर ढमाल (भगवतीदास)

इसमें राजीमती और नेमिकुमार के जीवन चरित्र को अंकित किया गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता कवि भगवती दास हैं । ये भट्टारक गुणचन्द्र के पटधर के भट्टारक सकलचन्द्र के प्रशिष्य और महीन्द्रसेन के शिष्य थे । इनका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा १८ वीं का पूर्वार्द्ध निश्चित है । कवि की सभी रचनायें १७ वीं शती में सम्पन्न हुई ।[२]

७७. नेमिनाथ की आरती (गंगादास)[३]

इसमें ४ कडवक हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

आरती के रचयिता गंगादास हैं जो मूलतः गुजराती थे और कारंजा के भट्टारक धर्मचन्द्र के शिष्य थे । इनका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी है ।

७८. नेमीश्वर गीत (महीचन्द्र)

इसमें १० कड़वक हैं, जिनमें राजीमती की विरह वेदना का वर्णन है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता महीचन्द्र हैं जिनका समय १७ वीं शताब्दी है ।[४]

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग-३, पृ० ३७७
२. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग - ४, पृ० २४०
३. आरती संग्रह (प्र० जिनदास चवड़े, वर्धा, १९२६) में प्र० द्र० - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - २२०
४. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - २२०

७९. नेमिनाथ वन्हाड (वीरदास पासकीर्ति)

यह ४० पद्यों का गीत है, जिसमें नेमिनाथ के विवाह का अपूर्व समारोह वर्णन है ।[१]

रचयिता : रचनाकाल

इस पद्य गीत के रचयिता का नाम वीरदास (पासकीर्ति) है । इनका समय १७ वीं शताब्दी का है ।[२]

८०. नेमीश्वर चन्द्रायण (नरेन्द्रकीर्ति)

यह प्रति श्री महावीरजी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके कृतिकार भ्टटारक नरेन्द्रकीर्ति थे जो आमेर गादी के संस्थापक भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे । इसकी रचना सं० १६९० (सन् १६३३ ई०) में की थी ।[३]

८१. नेमीश्वर रास (ब्रह्म रायमल्ल)

इस कृति में कुल १४५ कड़वक छन्द हैं जिनमें नेमिनाथ के गर्भ से निर्वाण तक की घटनायें वर्णित हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

नेमीश्वर रास के रचयिता ब्रह्म रायमल्ल १७ वीं शताब्दी के प्रतिनिधि कवियों में हैं । नेमीश्वर रास की रचना इन्होंने वि० सं० १६१५ (सन् १५५८ ई०) के लगभग की थी।

नेमीश्वर रास के अतिरिक्त ब्रह्म रायमल्ल ने नेमि निर्वाण, काव्य भी लिखा है जो अत्यन्त लघु कृति है जिसमें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की भक्तिपूर्वक वन्दना की है । इसकी प्रति भट्टारक दिगम्बर जैन मन्दिर अजमेर के भण्डार में है ।[४]

८२. नेमिगीत (अजीतमती)

यह एक रागवसन्त पर रचित रचना है । कुल छन्द संख्या छः है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत की रचना बाई अजीतमती ने की थी । ये भट्टाकर वादिचन्द्र की प्रमुख शिष्या थी । इन्होंने कई स्फुट पदों और गीतों की रचना की ।[५]

८३. नेमिजी को मंगल (श्री विश्व)

नेमिजी को मंगल, राजस्थानी हिन्दी में विरचित एक लघु रचना है ।

---

१. सन्मति, जून १९६० में प्रकाशित, जोहरापुर
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - २१२
३. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेख अनेकान्त, अक्तूबर - दिसम्बर १९८६, पृ० - १०
४. वही, पृ० - १०
५. वही, पृ० - १०

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता श्री विश्व, बलात्कारगण की अटेरशाखा के ख्यातिप्राप्त भट्टारक थे। "नेमिजी को मंगल" की रचना आपने सं० १६९८ (सन् १६४१ ई०) में की थी। कृति की एक पूर्ण प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर पटौदी का, जयपुर, गु० नं० १२ में संकलित है। कवि विश्वभूषण कृत "लक्षुरिनेमीश्वर की" प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर विजयराम पांड्या, जयपुर के भण्डार में गुटका नं० ४ में संग्रहीत है।[१]

८४. नेमिनाथ रास (रूपचन्द्र)

रास शैली में विरचित यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

रचयिता : रचनाकाल

नेमिनाथ रास के रचयिता कवि रूपचन्द्र हैं। रूपचन्द्र नाम के अनेक कवि हुए हैं परन्तु आलोच्य कृति के रचनाकार पाण्डे रूपचन्द्र, भगवानदास के पुत्र थे। नेमिनाथ रास की रचना संवत् १६९० (सन् १६३३ ई०) के लगभग की थी। रूपचन्द्र विरचित "राजुल विनती" (गुटका नं० ८१ शास्त्र भण्डार, श्री महावीरजी) तथा "नेमिनाथ स्तवन" (गुटका नं० ७६, भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर, अजमेर) का भी उल्लेख मिलता है।[२]

८५. नेमिजिनेद्र व्याहलो[३] (खेतसी, खेतसिंह)

नेमिनाथ के विवाह से सम्बन्धित रचना।

८६. नेमिश्वर राजुल की लहुरि[४] (खेतसी, रवेत सिंह)

लहुरि शैली में लिखित नेमिनाथ भगवान् का वर्णन।

८७. नेमीश्वर का बारहमासा[५] (खेतसी, रवेत सिंह)

बारहमासा शैली में तीर्थङ्कर नेमिनाथ का विस्तृत वर्णन।

रचयिता : रचनाकाल

इनके रचनाकार खेतसी अथवा खेतसिंह हैं। ये सादूं शाखा के चारण कवि और जोधपुर नरेश के आश्रित थे। "व्याहलो" का सृजन इन्होंने संवत् १६९१ (सन् १६३४) में किया था। कविता में खेतसी अपना "सहि" या "साहि" नाम प्रयुक्त करते थे। इस कृति की प्रतियाँ १. गुटका नं० ६५, पटौदी का मन्दिर जयपुर, २. गुटका नं० ६, दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मन्दिर जयपुर ३. गुटका नं० ४२, शास्त्र भण्डार श्री महावीरजी में उपलब्ध है।[६]

---

१. डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", लेख अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १२७३, पृ० १०

२. वही, पृ० - ११

३. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र - व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० - २४

४. वही, पृ० २४

५. वही, पृ० २४

६. वही, पृ० - २४

८८. नेमीश्वर के दश भवान्तर (ब्रह्म० धर्मरूचि)

प्रस्तुत कृति में तीर्थङ्कर नेमिनाथ के पूर्वजन्मों का विस्तृत वर्णन है। काव्य की प्रतियाँ, गुटका नं० १३६, बधीचन्द्र जी का मन्दिर, जयपुर तथा गुटका नं० ८, गुटका नं० ८५, गोधों का मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत है।

रचयिता : रचनाकाल

इस कृति के रचयिता ब्रह्म० धर्मरूचि, अभयचन्द्र प्रथम के शिष्य थे और इनका रचनाकाल सत्रहवीं का पूर्वार्द्ध है।[1]

८९. नेमिश्वर को डोरडो (कवि हर्षकीर्ति)

इस काव्य में कुल २१ पद्य हैं और काव्य की भाषा राजस्थानी प्रधान है। इसकी प्रति शास्त्र भण्डार महावीर जी में है।

रचयिता : रचनाकाल

विवेच्य काव्य के कवि हर्षकीर्ति हैं। ये सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजस्थान के ख्यात सन्त रहे। हर्षकीर्ति ने ही नेमिनाथ का बारहमासा (गुटका नं० १६२, बधीचन्द्र जी का मन्दिर, जयपुर) तथा नेमि-राजुल की भक्ति विषयक ६९ स्फुट पदों की रचना की थी।[2]

९०. नेमीश्वर राजुल विवाह (ब्रह्म ज्ञानसागर)

प्रस्तुत कृति में नेमिनाथ और राजीमती के विवाह की मार्मिक घटना का चित्रण किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचनाकार ब्रह्म० ज्ञानसागर हैं। इनके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी। कृति की एकमात्र प्रति गुटका नं० ५० (पत्रसंख्या २६ से ३१ तक) पटौदी के मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डार में है।[3]

९१. नेमिनाथ फाग (भट्टारक रत्नकीर्ति)

इस कृति में कुल ६९ पद्य हैं जो राग केदार में निबद्ध हैं।[4]

रचयिता : रचनाकार

यह कवि की सबसे बड़ी रचना है। इस फागु में नेमिनाथ एवं राजुल का जीवन वर्णित है।

इस कृति के कृतिकार भट्टारक रत्नकीर्ति हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी के मूर्धन्य सन्त एवं साहित्यकार थे। भट्टारक अभयनन्दी ने सं० १६३० (१५७३ ई०) में भट्टारक पद पर इनका

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - ११

२. वही, पृ० - ११

३. वही, पृ० - ११

४. भट्टारक सकलकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १२१-१२६

महाभिषेक किया था। नेमिनाथ फाग की रचना गुजरात के हासारे नगर में हुई थी।[१] भट्टारक रत्नकीर्ति नें गुजरात के ही घोघा नगर में "नेमिनाथ बारहमासा" लिखा था। इनका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी है। भट्टारक रत्नकीर्ति की नेमिनाथ बीनती नामक कृति भी है।[२]

१२. राजुल का बारहमासा (कवि पद्मराज)

बारहमासा शैली में लिखित यह एक सुन्दर रचना है।

रचयिता : रचनाकाल

इस कृति के रचयिता सत्रहवीं शताब्दी के ही कवि पद्मराज हैं। सम्भवतः ये ही पद्मराज "अभयकुमार प्रबन्ध" के रचयिता हैं और ये खरतरगच्छीय आचार्य जिनहंस के प्रशिष्य और पुण्यसागर के शिष्य थे। विवेच्य रचना की एक प्रति बधीचन्द जी के मन्दिर, जयपुर के शास्त्र भण्डार में गुटका नं० ९२ वेष्ठन १०९८ में है।[३] इनका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी का है।

१३. नेमिनाथ रास (मुनि अभयचन्द)

हिन्दी में लिखित नेमिनाथ विषयक रास साहित्य में प्रस्तुत कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचनाकार मुनि अभयचन्द्र हैं, जो भट्टारक कुमुदचन्द्र के योग्य शिष्य थे और ये संवत् १६८५ (१५२८ ई०) में गद्दी पर विराजमान हुए। नेमिनाथ रास का सृजन विक्रम की सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में किया था। इसकी प्रति गुटका नं० ५३ वेष्ठन ५९२ में भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर अजमेर के शास्त्र भण्डार में है। कवि की एक अन्य प्रसिद्ध कृति "चन्दागीत" है जिसमें कालिदास के मेघदूत के विरही यक्ष की भाँति राजुल भी अपना सन्देश चन्द्रमा के माध्यम से नेमिनाथ के पास भेजती है।[४] (यह गीत डा० कासलीवाल द्वारा संपादित पुस्तक "भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" में प्रकाशित किया गया है) इनका रचनाकाल १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

१४. नेमिनाथ बारहमासा (सुमतिसागर)

प्रस्तुत बारहमासा में १३ पद्य हैं। प्रथम १२ पद्यों में विरहणी राजुल की व्यथा व्यंजित है और अन्तिम पद्य में कवि प्रशस्ति।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता सुमतिसागर हैं जो भट्टारक अभयनन्दी के शिष्य थे।

---

१. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० ५२
२. वही, पृ० ५१-५२
३. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - ११
४. वही, पृ० - ११-१२ एवं द्रष्टव्य - भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

सुमतिसागर ने ही एक सुन्दर "नेमिगीत" की रचना की थी जिसमें बड़े मार्मिक ढंग से वर्णित है कि स्वामी के अभाव में अबला नारी राजुल स्वयं को कैसा निरीह, अनाथ, परिमलविहीन पुष्प, कमल रहित सरोवर, प्रतिभाविहीन मन्दिर जैसा अनुभव करती है। गीत "भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" में प्रकाशित हुआ है।[१]

९५. नेमिनाथ हमची या नेमीश्वर हमची (भट्टारक कुमुदचन्द्र)

इस हमची में कुल ८७ छन्द हैं और भाषा राजस्थानी मराठी मिश्रित है। कुमुदचन्द्रकृत "त्रण्यरति गीत" एक विरहात्मक गीत है जिसमें तीन प्रमुख ऋतुओं में प्रिय वियोग जनित, राजुल की मनोव्यथा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण है।

इसी प्रकार ३१ छन्दों वाले "हिन्दोल" गीत में कवि ने विश्व विदग्धा राजीमती के सन्देश विभिन्न वाहकों के माध्यम से नेमिनाथ तक पहुँचायें हैं।

नेमिनाथ का "द्वादशमासा" भी कुमुदचन्द्र रचित १४ छन्दों की लघु कृति है। आषाढ़ से श्रावण तक प्रसारित इस गीत में राजुल के उद्‌गारों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

नेमिजिनगीत, नेमिनाथबारहमासा, नेमीश्वरगीत कवि की अन्य रचनायें उपलब्ध हैं।[२]

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त कृति के रचनाकार भट्टारक कुमुदचन्द्र हैं जो प्रसिद्ध भट्टारक रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। इनका समय वि० सं० १६५६-१६८५ (सन् १५९९-१६२८ ई०) है।[३]

उक्त सभी रचनाओं का मूल पाठ "भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र - व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (डा० कासलीवाल) में प्रकाशित हुआ है।

९६. नेमिगीत (ब्रह्म संयमसागर)

नेमिनाथ के ऊपर लिखित यह एक लघुकाय किन्तु प्रभावक गीतिकाव्य है।

रचयिता-: रचनाकाल

प्रस्तुत गीत के रचयिता ब्रह्म संयमसागर हैं, जो भट्टारक कुमुदचन्द्र के शिष्य थे। कवि की कोई बड़ी रचना प्राप्त नहीं हुई है। नेमिगीत का सृजन सत्रहवीं शताब्दी के दूसरे चरण में किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने नेमि विषयक स्फुट पद रचे जो विभिन्न गुटकों में संग्रहीत हैं। इनका समय १७ वीं शताब्दी है।[४]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - ११-१२ एवं द्रष्टव्य - भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व। पृ० १२

२. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० - ६३

३. वही, पृ० ५९, २०२

४. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १२

९७. नेमिनाथ रास (कनक कीर्ति)

इसमें रास शैली में नेमिनाथ के विवाह की घटना का चित्रण है ।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत रास के रचयिता खरतगच्छीय शाखा के नयकमल के शिष्य और जयमन्दिर के शिष्य कनककीर्ति ने नेमिनाथ रास की रचना १६३५ ई० में की थी । भाषा गुजराती प्रधान है और इसकी प्रति विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार जयपुर में उपलब्ध है । सत्रहवीं शताब्दी में ही कवि सिंहनन्दि विरचित "नेमीश्वर राजमती गीत" (गुटका नं० २६२ भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर अजमेर) एवं "नेमीश्वर चौमासा" तथा साधुकीर्ति रचित "नेमिस्तवन" एवं नेमिगीत का उल्लेख मिलता है ।[१]

९८. नेमिनाथ रास (भट्टारक वीरभद्र)

नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर आधारित एक लघु कृति है ।

९९. वीरविलास फाग (भट्टारक वीर भद्र)

तीर्थङ्कर नेमिनाथ की जीवन घटना का वर्णन किया है । फाग में १३३ पद्य हैं । यह एक खण्डकाव्य है ।

रचयिता : रचनाकाल

उपर्युक्त दोनों काव्यों के रचयिता भट्टारक वीरभद्र हैं । ये भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे । जो व्याकरण एवं न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे । इनका संस्कृत, प्राकृत, गुजराती एवं राजस्थानी पर पूर्ण अधिकार था । ये १७ वीं शताब्दी के प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हैं । नेमिनाथ रास काव्य की रचना सं० १६३३ (सन् १५७६) में की थी ।[२]

१००. नेमिनाथ समवसरण (वारिचन्द्र)

यह दिगम्बर जैन खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर के शास्त्र भण्डार के गुटके में संग्रहीत है।

रचयिता : रचनाकाल

वारिचन्द्र विद्यानन्दि की परम्परा में होने वाले भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य एवं भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे । इनका रचना काल १७ वीं शताब्दी का है ।[३]

१०१. नेमिराजुल गीत (हर्षकीर्ति)

इसमें गीत शैली में नेमिनाथ एवं राजीमती का संवाद चित्रित है ।

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य", अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १२

२. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० - २४

३. वही, पृ० - ३४

१०२. नेमीश्वर गीत (हर्ष कीर्ति)

इस रचना में नेमिनाथ का वर्णन है ।

१०३. नेमिनाथ बारहमासा (हर्ष कीर्ति)

इस बारहमासा में नेमिनाथ का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

रचयिता : रचनाकाल

इन तीनों रचनाओं के रचयिता हर्षकीर्ति थे । ये १७ वीं शताब्दी के चतुर्थ पाद के कवि थे । ये राजस्थानी सन्त, तथा भट्टारकों से प्रभावित थे ।[१]

१०४. नेमि राजुल प्रकरण (रत्नकीर्ति)

यह गीतरूप रचना है, जिसमें नेमि राजुल प्रकरण ही प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है । इन गीतों की आत्मा में नेमि राजुल उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार मीरा के कृष्ण रहे हैं ।[२] रचना महत्त्वपूर्ण है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस प्रकरण के रचयिता भट्टारक रत्नकीर्ति हैं जो अपने समय के प्रमुख सन्त थे । उनका पूर्णतः वैरागी जीवन था । इनके गीत १७ वीं शती में बहुत लोकप्रिय रहे और समस्त देश में गाये जाते थे ।[३] इसके अतिरिक्त कवि की अन्य रचनायें भी उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं-

नेम हम कैसे चले गिरनार ।[४] नेमजी दयालु डरे तू तो यादव कुल सिणधारे ।[५]

नेमि तुम जावो धारिय धरे ।[६] नेमिनाथ विनती ।[७]

नेमिनाथ फागु ।[८] नेमिनाथ बारहमासा ।[९]

१०५. चुनड़ी गीत (ब्रह्म जयसागर)

इसका दूसरा नाम चारित्र चूनड़ी भी दिया गया है । जिसमें राजीमती नेमिनाथ से चारित्र चूनड़ी ओढ़ने के लिए मांग रही है । नेमि गिरनार के भूषण है । चूनड़ी में १६ पद्य हैं ।[१०]

१०६. नेमीश्वर गीत[११] (ब्रह्म जयसागर)

यह भी एक लघुकाय रचना है ।

रचयिता : रचनाकाल

चूनड़ी गीत एवं नेमीश्वरगीत के रचयिता ब्रह्म जयसागर थे जो भट्टारक रत्नकीर्ति के

---

१. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ० - १३

२. वही, पृ० ५३ ३. वही, पृ० ५३ ४. वही, पृ० - ५०

५. वही, पृ० ५१ ६. वही, पृ० ५० ७. वही, पृ० ५१

८. वही, पृ० ५० ९. वही, पृ० ५० १०. वही, पृ० ९६

११. वही, पृ० - ६८

प्रमुख शिष्य थे । ब्रह्म जयसागर ने अपने पद्य में रत्नकीर्ति को स्मरण किया है ।[१]

१०७. नेमि राजुल संवाद[२] (कल्याणकीर्ति)

प्रस्तुत कृति नेमिनाथ एवं राजुल के संवाद रूप में लिखित हिन्दी की एक प्रसिद्ध रचना है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस संवाद के रचयिता कल्याणकीर्ति हैं । ये १७ वीं शताब्दी के प्रमुख जैन संत सतदेव कीर्तिमुनि के शिष्य थे ।[३]

१०८. नेमिनाथनी गीत[४] (पं० श्रीपाल)

यह गुजराती एवं राजस्थानी भाषा के प्रभाव वाली एक हिन्दी रचना है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत के रचयिता श्रीपाल हैं । सं० १७४८ (सन् १६९१ ई०) की एक प्रशस्ति में पं० श्रीपाल के परिवार के परिचय में कहा गया है कि श्रीपाल के पितामह का नाम बणायग एवं पिता का नाम जीवराज था ।[५]

१०९. नेमिगीत (सुमतिसागर)

इस गीत में राजुल नेमि के अभाव में अपने आपको कैसा समझती है, इसी का वर्णन है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता सुमतिसागर हैं । ये भट्टारक अभयनन्दि के शिष्य थे । अपने गुरु के ही साथ रहते थे ।[६]

११०. शिवा नेमि संवाद (सटवा)

यह २० कडवकों का गीत हैं जिसमें नेमिनाथ के वैराग्य प्रसंग का वर्णन है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस संवाद के रचयिता सटवा हैं जिनका समय सन् १७१८ है ।[७]

१११. नेमीश्वर गीत (नीबा)

इस गीत में ३ कड़वक हैं जिनमें नेमिनाथ के वैराग्य प्रसंग का वर्णन है ।

---

१. सूरि रत्नकीर्ति जयकारी, शुभधर्म शशि गुणधारी । नर नारी चूनड़ी गावे, ब्रह्मसागर कहे भावे ।। चूनड़ी गीत १६ (भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र - व्यक्तित्व एवं कृतित्व से उद्धृत)
२. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र - व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० - १६
३. वही, पृ - १४
४. वही, पृ० - ९०
५. वही, पृ० - ८८
६. वही, पृ० - १०२
७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - १२२

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत के रचयिता का नाम नीबा है जिनका समय सन् १७२६ ई० का सिद्ध होता है ।[१]

११२. नेमीश्वर रास (मलूकपुत्र भाऊ)

प्रस्तुत रास में कुल ११५ चौपाई छन्दों में नेमि के वैराग्य, राजुल के संयम और नेमिनाथ के निर्वाण का मार्मिक निरूपण हुआ है । इसकी प्रतियाँ गुटका नं० ६५ पटौदी का मन्दिर जयपुर तथा गुटका नं० २३२ भट्टारकीय दिगम्बर जैन मन्दिर अजमेर में संग्रहीत है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता मलूकपुत्र भाऊ हैं जो १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के ख्यात कवि रहे हैं।[२]

११३. नेमिराजुल बारहमासा (जिनहर्ष)

नेमि राजुल बारहमासा जिसे नेमिराजीमती बारहमासा सवैया भी कहा गया है । काव्य में कुल १२ सवैया छन्द हैं और इसकी प्रतियाँ अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर तथा शास्त्र भण्डार महावीर जी में उपलब्ध हैं ।

रचयिता : रचनाकाल

इस बारहमासा के रचयिता का नाम जिनहर्ष है । इसकी रचना वि० सं० १७१५ (सन् १६५८ ई०) में की थी । जिनहर्ष कवि ने ही नेमीश्वर गीत (वेष्टन १२४५ बधीचन्द्र जी का मन्दिर, जयपुर) एवं नेमिराजुल स्तवन गुटका नं० ९७ ठोलियों का मन्दिर जयपुर की रचना की थी ।[३]

११४. नेमीश्वर गीत (ब्रह्म० धर्मसागर)

नेमीश्वर गीत में कुल १२ छन्द हैं जिनमें राजुल के सौन्दर्य और विरह का सुन्दर निरूपण हुआ है । यह गीत डा० कासलीवाल द्वारा सम्पादित पुस्तक "भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" में दिया गया है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत के रचयिता ब्रह्म धर्मसागर हैं जो अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध के संत और कवि थे । ये भट्टारक अभयचन्द्र द्वितीय के संघ में थे । कवि ने इसके अतिरिक्त भी स्फुट गीत लिखकर नेमिप्रभु के प्रति अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया है ।[४]

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ० - २२२

२. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १२

३. वही, पृ० - १२

४. वही, पृ० - १३

११५. नेमिनाथ का बारहमासा (विनोदीलाल)

यह बारहमासा "जैन पुस्तक भवन कलकत्ता" से प्रकाशित है ।

रचयिता : रचनाकाल

इसके कृतिकार विनोदी लाल वि० सं० १७५० (सन् १६९३ ई०) तीर्थङ्कर नेमि के एकनिष्ठ भक्त थे अतः इनकी अनेक रचनाऐं नेमिराजुल से सम्बन्धित है । इनकी कृतियां अत्यधिक लोकप्रिय हुई ।

विनोदीलाल कृत नेमि ब्याह सुन्दर खण्ड काव्य है । राजुल पच्चीसी २५ छन्दों की लघुकृति है । नेमिनाथ के नव मंगल में ९६ छन्दों में नेमि कथा वर्णित है । नेमि राजुल रेखता उर्दू, फारसी, मिश्रित हिन्दी भाषा की रचना है तथा नेमीश्वर राजुल संवाद में शीर्षक के अनुरूप संवाद शैली में नेमि के वैराग्य पूर्ण उत्तर और विरहणी राजुल के प्रश्न मार्मिक रूप में प्रस्तुत हैं ।[१]

११६. नेमिनाथाष्टक (भूधरदास)

नेमिनाथाष्टक आठ छन्दों की एक स्वतंत्र लघु कृति है, जिसकी प्रति गुटका नं० ३९५ शास्त्र भण्डार श्री महावीरजी में है ।

रचयिता : रचनाकाल

नेमिनाथाष्टक के रचयिता कवि भूधरदास हैं जो अठारहवीं शताब्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों में से हैं । कवि भूधरदास ने भूधरविलास नामक पद संग्रह में नेमि राजुल पर अनेक पद लिखे हैं जिनका परिचय डा० प्रेमसागर जैन ने अपनी पुस्तक हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि में दिया है ।[२]

११७. नेमिनाथचरित (अजयराज पाटणी)

प्रस्तुत काव्य में कुल २६४ पद्य हैं और इसकी सं० १७९८ (१७४१ ई०) में लिपिबद्ध प्रति गुटका नं० १०८ ठोलियों का मन्दिर, जयपुर के शास्त्र भण्डार में प्राप्त है ।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता अजयराज पाटणी हैं, जिन्होंने सन् १७९३ ई० में नेमिनाथ चरित्र की रचना की थी । काव्यसृजन की प्रेरणा इन्हें अम्बावती नगर के जिनमन्दिर में स्थापित तीर्थङ्कर नेमिनाथ की मनोज्ञ प्रतिमा को देखकर मिली ।[३]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६ , पृ० १३

२. द्रष्टव्य - हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि - पृ० -

३. द्र० - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० -१३

११८. नेमिराजुल बारहमासा (लक्ष्मीवल्लभ)

इस काव्य के कुल १४ पद्य हैं जो सभी सवैया छन्द में निबद्ध हैं। गेयात्मकता सराहनीय बन पड़ी है।

रचयिता : रचनाकाल

नेमि राजुल बारहमासा के रचयिता लक्ष्मी वल्लभ, खरतरगच्छीय शाखा के उपाध्यक्ष लक्ष्मी कीर्ति के शिष्य थे। यह बारहमासा १८ वीं शताब्दी के दूसरे चरण में लिखा गया।[१]

११९. नेमि राजमती जखड़ी (पाण्डे हेमराज)

इस लघु रचना की एक प्रति बुधीचन्द्र जी के मन्दिर, जयपुर गुटका नं० १२४ में है।

रचयिता : रचनाकाल

विवेच्य कृति के रचनाकार पाण्डे हेमराज हैं। डा० कासलीवाल ने अपनी पुस्तक "कविवर बुलाकीचन्द्र, बुलाकीदास एवं हेमराज" में पाण्डे हेमराज रचित जखड़ी की जिस प्रति का परिचय दिया है उसे त्रिलोक चन्द पटवारी चाकसू वाले ने संवत् १७८२ (सन् १७२५ ई०) में दिल्ली में लिपिबद्ध किया था।[२]

१२०. नेमिकुमार चूंदड़ी (मुनि हेमचन्द्र)

यह कुल ९ पृष्ठों की लघुकृति है और इसकी पूर्ण प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा तेरापंथियों के शास्त्र भण्डार के वेष्ठन ९१५ में संकलित है। गीत की टेक है :-

मेरी सील सूरंगी चूंदड़ी

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत चूंदड़ी के रचयिता मुनि हेमचन्द्र हैं।[३]

१२१. नेमीश्वर रास (नेमिचन्द्र)

वस्तुतः यह एक सुन्दर बारहमासा है और कुल १२ छन्दों में राजुल की व्यथा का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है।

रचयिता : रचनाकाल

कवि नेमिचन्द्र ने नेमीश्वर रास की रचना संवत् १७६९ (सन् १७१२ ई०) में की थी। जयपुर वेष्ठन १०७८ से प्राप्त प्रति के अनुसार लेखनकाल सं० १७८२ (सन् १७२५ ई०) है।[४]

---

१. डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त, अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, , पृ० १३

२. कविवर बुलाखी चन्द्र बुलाकीदास एवं हेमराज, पृ० २२२

३. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० १३

४. वही, पृ० १३-१४

१२२. नेमिराजुलगीत (भट्टारक शुभचन्द्र)

कवि ने नेमिराजुल की जीवन घटनाओं पर आधारित भक्तिपरक गीतों की सृष्टि की है।

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत गीत के रचयिता १८ वीं शताब्दी के कवि थे। ये भट्टारक शुभचन्द्र (द्वितीय) अभयचन्द्र के शिष्य थे।[१]

१२३. नेमिनाथ बारहमासा (श्यामदास गोधा)

प्रस्तुत बारहमासे की पूर्ण प्रति बधीचन्द्र जी के मन्दिर जयपुर में शास्त्र भण्डार गुटका नं० १६१ में है।

रचयिता : रचनाकाल

इस बारहमासा के रचयिता श्यामदास गोधा हैं और उन्होंने इस काव्य की रचना संवत् १७८६ (सन् १७२९ ई०) में की थी।[२]

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त अठारहवीं शताब्दी में भवानी प्रसाद द्वारा रचित तीन गीत उपलब्ध होते हैं जिनके नाम क्रमशः-

''नेमिनाथ बारहमासा'' ''नेमि हिण्डोलना'' ''नेमिनाथ राजमती''

कवि विनय विजय ने "नेमिनाथ भ्रमरगीत स्तवन" और नेमिनाथ बारहमासा की रचना की। (इनका उल्लेख डा० प्रेमसागर जैन ने हिन्दी जैन भक्ति काव्य कवि शीर्षक पुस्तक में किया है)।[३]

१२४. नेमिचन्द्रिका (मनरंगलाल)

यह हिन्दी काव्य रचना है, जिसकी पत्र सं० १९ है तथा कुल छन्द संख्या ८६ है। यह नेमिनाथ पर रचित काव्य है जो कनौजी भाषा से प्रभावित है। इस खण्डकाव्य को कवि ने दोहा, चौपाई, सोरठा, आदि छन्दों में निबद्ध किया है। यह १९ वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण कृति है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता मनरंगलाल हैं।[४] मनरंगलाल कन्नौज के निवासी थे तथा जाति के पल्लीवाल थे। इनके पिता का नाम कन्नौजीलाल और माता का नाम देवकी था। इस काव्य का रचनाकाल सं० १८८० (सन् १८२३ ई०) है।[५]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० -१४

२. वही, पृ० -१४

३. वही, पृ० -१४

४. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग - ४, पृ० - ३०६

५. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० -१४

१२५. नेमिनाथ आरती (रतन)

इसमें ६ पद्य हैं।

रचयिता : रचनाकाल

नेमिनाथ आरती के रचयिता रतन है जिनका रचनाकाल वि० सं० १८२६ (सन् १७६९ ई०) का है।[1]

१२६. नेमिनाथ रास (विजयदेवसूरि)

प्रस्तुत रास की पूर्ण प्रति जिसकी पत्र संख्या ४ है, पाटोदी के मन्दिर जयपुर (वेष्ठन नं० १०२६) में एवं दो प्रतियां श्रीमहावीरजी के शास्त्र भण्डार (गुटका नं० ३५ और २८६) में संग्रहीत हैं।

रचयिता : रचनाकाल

इस रास के रचयिता विजयदेवसूरि हैं। इसका लिपिकाल सं० १८२६ (सन् १७६९ ई०) है।[2]

१२७. नेमिचरित (जयमल)

इसकी प्रतियाँ श्रीमहावीरजी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत हैं।

रचयिता : रचनाकाल

नेमिचरित काव्य के रचयिता कवि जयमल हैं। इसकी रचना सं० १८०४ (१७४७ ई०) में की गई है।[3]

१२८. नेमिनाथ के दशभव (कवि सेवण)

इसमें नेमिनाथ जी के दशभवों का वर्णन किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इसकी रचना सेवण कवि ने की थी। इस कृति की वि० सं० १८१८ (सन् १७६१ ई०) की लिपिबद्ध प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर विजयराम पांड्या, जयपुर के शास्त्र भण्डार (वेष्ठन ३५४) तथा एक प्रति श्रीमहावीरजी के शास्त्र भण्डार के गुटका नं० १९० में उपलब्ध है।[4]

१२९. नेमिजी का चरित्र (आणंद कवि)

इसकी सं० १८५१ (१७९४ ई०) में लिखी गई प्रति पाटोदी के मन्दिर जयपुर (वेष्ठन २२५७) तथा एक श्री महावीरजी के शास्त्रभण्डार गुटका नं० १४ में है।

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ७, पृ०-२२७

२. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १४

३. वही, पृ० - १४

४. वही, पृ० - १४

रचयिता : रचनाकाल

प्रस्तुत नेमिचरित के रचयिता आणंद कवि हैं जिनका रचनाकाल संवत् १८०४ (सन् १७४७ ई०) है।[१]

१३०. नेमिजी राजुल ब्याहलो (कवि गोपीकृष्ण)

इसकी अपूर्ण प्रति पाटोदी के मन्दिर जयपुर में है।

रचयिता : रचनाकाल

यह कवि गोपीकृष्ण कृत रचना है, जो सं० १८६३ (सन् १८०६ ई०) की रचना है।[२]

१३१. नेमि ब्याहलो (कवि हीरा)

काव्य की पूर्ण प्रति, जिसकी कुल पृष्ठ संख्या ११ है, वधीचन्द जी के मन्दिर, जयपुर के शास्त्र भण्डार वेष्ठन ११५० में है।

रचयिता : रचनाकाल

इसको सं० १८४८ (सन् १७९१ ई०) में कवि हीरा ने लिखा था।[३]

१३२. नेमिनाथपुराण (भागचन्द)

इसकी पत्र संख्या १६६ है तथा गोधों के मन्दिर जयपुर के भण्डार में (वेष्ठन १५३) संग्रहीत है। खड़ी बोली हिन्दी की गद्य भाषा के विकास क्रम को जानने की दृष्टि से यह पुराण महत्त्वपूर्ण है।

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराण के रचयिता कवि भागचन्द हैं जिसका रचनाकाल संवत् १९०७ (१८५० ई०) है।[४]

१३३. नेमिनाथ रास (कवि ऋषिरामचन्द)

इसकी कुल पत्र संख्या ३ है। पूर्ण प्रति पाटोदी का मन्दिर जयपुर (वेष्ठन २१४०) में है।[५]

रचयिता : रचनाकाल

इस रास के रचयिता कवि ऋषिरामचन्द हैं। इसका रचनाकाल २०वीं शती है।[६]

१३४. नेमिस्तवन (ऋषि शिव)

इस स्तवन की कुल पत्र संख्या २ है। पूर्ण प्रति पटौदी का मन्दिर जयपुर (वेष्ठन १२०८)

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १४

२. वही, पृ० १४ ३. वही, पृ० १४ ४. वही, पृ० - १४

५. वही, पृ० - १५ ६. वही, पृ० - १५

में विद्यमान है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता ऋषि शिव हैं। रचनाकाल २० वीं शताब्दी है।[१]

१३५. नेमिस्तवन (जितसागरमणि)

इस स्तवन की कुल पृष्ठ संख्या १ है। पूर्ण प्रति पाटोदी का मन्दिर, जयपुर (वेष्ठन १२०८) में है।

रचयिता : रचनाकाल

इस स्तवन के रचयिता जितसागरमणि हैं तथा समय २० वीं शताब्दी है।[२]

१३६. नेमिगीत (कवि पासचन्द)

यह प्रति भी पाटोदी का मन्दिर, जयपुर (वेष्ठन १८४७) में है।

रचयिता : रचनाकाल

नेमिगीत के कवि "पासचन्द" हैं। इनका समय बीसवीं शती ईस्वी है।[३]

१३७. नेमिराजमती गीत (कवि हीरानन्द)

पूर्ण प्रति पाटोदी का मन्दिर, जयपुर (वेष्ठन २१७४) में है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके कवि हीरानन्द हैं। इनका समय भी ईसा की बीसवीं शताब्दी है।[४]

१३८. नेमि राजमती गीत (छीतरमल)

इसकी पत्र संख्या एक है। पाटोदी का मन्दिर जयपुर शास्त्र भण्डार (वेष्ठन २१३५) में इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत के रचयिता "छीतरमल" हैं, जिनका समय ईसा की बीसवीं शताब्दी है।[५]

१३९. राजुल सज्झाय (पं० जिनदास)

यह ३७ पदों की रचना है। दिगम्बर जैन मन्दिर विजयराम पांड्या जयपुर का शास्त्र भण्डार गुटका ४४, वेष्ठन २७२ में इसकी प्रति है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता पं०जिनदास हैं, जो बीसवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं।[६]

---

१. डा० इन्द्रराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख अनेकान्त अक्टूबर-दिसम्बर . १९८६ , पृ० - १५
२. वही, पृ० - १५
३. वही, पृ० - १५
४. वही, पृ० - १५
५. वही, पृ० - १५
६. वही, पृ० - १५

१४०. नेमीब्याह पच्चीसी (कविवेगराज)

इसकी पूर्ण प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर, वीरसली, कोटा का शास्त्र भण्डार, गुटका नं० ३, वेष्ठन ३५२ में विद्यमान है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता कवि वेगराज हैं। इनका समय भी ईस्वी सन् की बीसवीं शताब्दी है।[१]

१४१. नेमिनाथ स्तवन (पं० कुशलचन्द्र)

इसकी प्रति श्रीमहावीरजी के शास्त्र भण्डार में गुटका नं० ५६ में है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता पं० कुशलचन्द्र हैं। इनका समय ईसा की बीसवीं शती है।[२]

१४२. नेमिनाथ का ब्याहला (नाथ कवि)

इसकी एक प्रति वधीचन्द जी का मन्दिर जयपुर वेष्ठन ९७ तथा एक प्रति दिगम्बर जैन दीवान जी का मन्दिर, गुटका नं० ११ वेष्ठन ३९ में है।

रचयिता : रचनाकाल

इस ब्याहला के रचयिता बीसवीं शताब्दी के विद्वान् नाथकवि हैं।[३]

१४३. राजुल नेमि का बारहमासा (कांति विजय)

इस कृति की प्रति श्री महावीरजी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

रचयिता : रचनाकाल

इस बारहमासा के रचयिता कांति विजय हैं, जो बीसवीं शताब्दी के हैं।[४]

१४४. नेमिजी की लहर (पं० डूंगो)

इसकी प्रति श्री महावीरजी के भण्डार में[५] "नेमिनाथ फागु" नाम से है तथा बधीचन्द जी के मन्दिर, जयपुर में "नेमिजी की लहर" शीर्षक से वेष्ठन १२७८ में है। इसके रचयिता पं० डूंगो हैं।

१४५. नेमिराजुल गीत (बुगरसी बेनाड़ा)

प्रति बुधीचन्द्र का मन्दिर जयपुर वेष्ठन १२७९ में विद्यमान है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता बुगरसी बैनाड़ा तथा रचनाकाल ईसा की बीसवीं शताब्दी है।[६]

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० -१५

२. वही, पृ० -१५

३. वही, पृ० -१५

४. वही, पृ० -१५

५. वही, पृ० -१५

६. वही, पृ० -१५

१४६. नेमिनाथ की विनती (चन्द्र कवि)

हस्त लिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, श्री महावीरजी गुटका २५ में है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता चन्द्र कवि हैं। कृति की रचना बीसवीं शताब्दी में हुई है।[१]

१४७. नेमि गीत (लब्धि विजय)

गीत की प्रति ढोलियों का मन्दिर जयपुर, गुटका नं० ९७ में सुरक्षित है।

रचयिता : रचनाकाल

इस गीत के रचयिता लब्धिविजय हैं, जो बीसवीं शताब्दी के विद्वान् हैं।[२]

१४८. नेमिनाथ मंगल (लालचन्द कवि)

एक प्रति ढोलियों का मन्दिर, जयपुर, गुटका १२४, एक प्रति पाटोदी का मन्दिर, जयपुर गुटका नं० ४१ तथा एक प्रति दिगम्बर जैन अग्रवाल पंचायती मन्दिर, अलवर गुटका नं० ९ में संग्रहीत है।

रचयिता : रचनाकाल

इस कृति के रचयिता लालचन्द कवि बीसवीं शताब्दी के विख्यात विद्वान् हैं।[३]

१४९. बारहमासा राजुल (कवि हरदेदास)

इसकी प्रति शास्त्र भण्डार श्री महावीरजी गुटका नं० ४९१ में है।

रचयिता : रचनाकाल

बारहमासा के रचयिता कवि हरदेदास हैं। समय बीसवीं शताब्दी है।[४]

१५०. नेमिजी की डोरी (ब्रह्मनाथ)

इसकी पूर्ण प्रति दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर, बयाना के शास्त्र भण्डार गुटका नं० १ वेष्ठन १५० में है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता ब्रह्मनाथ हैं। इनका समय ईसा की बीसवीं शताब्दी है।[५]

• राजस्थानी

१५१. नेमीश्वर गीत (सकलकीर्ति)

यह राजस्थानी भाषा में रचित गीत रचना है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता कवि सकलकीर्ति हैं। इनका रचनाकाल वि० सं० १४४३-४९ (सन्

---

१. द्रष्टव्य - डा० इन्दुराय जैन द्वारा लिखित "नेमिशीर्षक हिन्दी साहित्य" लेख, अनेकान्त अक्तूबर-दिसम्बर १९८६, पृ० - १५,

२. वही, पृ० - १५

३. वही, पृ० - १५

४. वही, पृ० - १५

५. वही, पृ० - १५

१३८६-१४९२ ई०) तक का माना है। इनका संस्कृत अपभ्रंश तथा राजस्थानी पर पूर्ण अधिकार था। ये संस्कृत तथा प्राकृत के संरक्षक तथा प्रचार-प्रसार करने वाले भी थे।[१]

१५२. हरिवंशपुराण (ब्रह्म जिनदास)

इस ग्रन्थ का दूसरा नाम नेमिनाथ रास भी है। कवि ने अपने संस्कृत में लिखे गये पुराण के आधार पर ही राजस्थानी भाषा में इस काव्य को भी रचा है।

रचयिता : रचनाकाल

इसके रचयिता भी श्री ब्रह्म जिनदास हैं। इस काव्य रचना का समय वि० सं० १५२० (सन् १४६३ ई०) है।[२]

१५३. नेमीश्वर रास (श्री ब्रह्मजिनदास)

यह एक राजस्थानी भाषा में रचित रास रचना है।

रचयिता : रचनाकाल

इस रास के रचयिता ब्रह्म जिनदास हैं।[३]

मराठी

१५४. नेमिनाथ भवान्तर (महीचन्द्र)

इसमें नेमिनाथ के पूर्व भवों का वर्णन किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

यह कवि महीचन्द्र द्वारा रचित काव्य है, जिसका समय लगभग वि० सं० १६१८ (सन् १५६१) है।

१५५. नेमिनाथ भवान्तर (कवि सहवा)

इस कृति में भी नेमिनाथ के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है।

रचयिता : रचनाकाल

इस कृति के रचयिता कवि सहवा हैं। इन्होंने वि० सं० १६३९ (सन् १५८२ ई०) में इस काव्य की रचना की थी।[४]

कन्नड़

१५६. नेमिनाथ पुराण (कवि कर्णपार्थ)

११४० ई० के लगभग कवि कर्णपार्थ ने नेमिनाथ पुराण की रचना की है, जिसमें नेमिनाथ

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग - ३, पृ० - ३३०
२. वही, पृ० - ३४०
३. वही, पृ० - ३४०
४. वही, भाग - ४, पृ० - ३२२

की उत्पत्ति, विवाह, जीवनचरित, समुद्र, पहाड़, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा (रतिचिन्ता) युद्ध, जय-प्राप्ति इत्यादि का सविस्तार वर्णन है। विप्रलम्भ श्रृंगार के वर्णन में तो कवि ने अपूर्व क्षमता प्रकट की है।

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराण के रचयिता कवि कर्णपार्थ हैं। जिनका समय ई० सन् १३४० है।[१]

१५७. अर्द्ध नेमिपुराण (श्री नेमिचन्द्र)

संस्कृत मिश्रित कन्नड़ में संस्कृत छन्द लेकर कवि (श्री नेमिचन्द्र) ने इस पुराण की रचना की। चम्पक शार्दूल वृत्त में सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा है। अनुप्रास की छटा अधिक दिखाई देती है।

रचयिता : रचनाकाल

इस पुराण के रचयिता श्री नेमिचन्द्र हैं, जिनका १३ वीं शताब्दी के कवियों में प्रमुख स्थान है। इनके सम्मुख कन्नड़ का कोई भी कवि नहीं ठहर सकता।[२]

गुजराती

१५८. नेमिनाथ चउवई (विनयचन्द्र सूरि)

यह गुर्जर भाषा में रचित काव्यरचना है।

रचयिता : रचनाकाल

इस काव्य के रचयिता विनयचन्द्रसूरि हैं, जिसका रचनाकाल सं० १२८३ (सन् १२२६ ई०) से लेकर सं० १३४५ (सन् १२८८ ई०) तक है।[३]

१५९. नेमीश्वर राजीमती फाग (गुणकीर्ति)

यह एक गुजराती रचना है।

रचयिता : रचनाकाल

फाग के रचयिता का नाम गुणकीर्ति है। इनकी रचनाओं में सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति और ब्रह्मजिनदास का गुरु रूप में उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि गुणदास का ही मुनिदीक्षा के बाद का नाम गुणकीर्ति होगा। इनका रचनाकाल १३ वीं शताब्दी है।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन सम्प्रदाय के पूज्य तीर्थङ्कर नेमिनाथ के पावन जीवन को जनमानस में प्रसारित करने के लिए अनेक कवियों ने भारतीय भाषाओं में विविध शैली के अनेक काव्यों का निर्माण किया है। यहाँ प्रदत्त नेमि विषयक साहित्य के आकलन से भारतवर्ष का साहित्य अवश्य समृद्धतर हो सकेगा।

---

१. तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, पृ० - ३०९
२. वही, पृ० - ३०९
३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६, पृ० - १२२
४. वही, पृ० २०८-२०९

नेमि निर्वाण का कर्ता

अनेक वाग्भट

संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वाग्भट नामक कई विद्वान् हुए हैं।

१. "अष्टांग हृदय" नामक "आयुर्वेद" के रचयिता एक वाग्भट हुए हैं परन्तु कोई काव्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथा इनका समय भी अत्यन्त प्राचीन है।

२. एक वाग्भट नाम के कवि हुये हैं जिनका कोई परिचय प्राप्त नहीं होता।

३. वाग्भट नाम के एक अन्य आलंकारिक हुये हैं जिन्होंने "काव्यानुशासन" की रचना की है। जो वाग्भट द्वितीय के नाम से जाने जाते हैं।

४. "जैन सिद्धान्त भवन"[१] की लिखी हुई हस्तलिखित प्रति से प्राप्त वाग्भट का परिचय मिलता है जिन्होंने वाग्भटलंकार तथा नेमि-निर्वाण की रचना की है।

काव्यानुशासन के रचयिता वाग्भट को अभिनव वाग्भट अथवा वाग्भट द्वितीय के नाम से अभिहित किया जाता है। डा० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ने नेमि-निर्वाण के कर्त्ता वाग्भट को वाग्भट-प्रथम कहा है।[२] किन्तु आधुनिक विद्वान् सामान्यतः वाग्भटालंकार के कर्त्ता को वाग्भट-प्रथम और काव्यानुशासन के कर्त्ता को वाग्भट द्वितीय मानते हैं।[३]

यही वास्तव में ये वाग्भट प्रथम हैं क्योंकि काव्यानुशासन के प्रणेता वाग्भट द्वितीय ने स्वयं नेमि-निर्वाण के कर्त्ता, वाग्भटालंकार प्रणेता वाग्भट प्रथम का उल्लेख किया है -

"दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दश काव्यगुणाः ।

वयं तु माधुर्यौजः प्रसादलक्षणास्त्रीनेव गुणान् मन्यामहे ।"[४]

अलंकार शास्त्रकारों में वाग्भट नाम के ये दोनों आलंकारिक जैन मतानुयायी हो चुके हैं परन्तु परवर्ती किं वा समान वाग्भटालंकार प्रणेता वाग्भट का उल्लेख दोनों के परस्पर भिन्न होने से भिन्न-भिन्न अलंकार ग्रन्थों के प्रणयन करने का एक प्रामाणिक संकेत है, जिसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।

आयुर्वेद के प्रकरण ग्रन्थ "अष्टांग हृदय" के रचयिता भी वाग्भट नाम के ही आचार्य हो चुके हैं किन्तु इन्हें वाग्भटालंकार के प्रणेता "वाग्भट प्रथम" से अभिन्न नहीं माना जा सकता

१. द्रष्टव्य - जैन सिद्धान्त भवन, आरा की विक्रम सं० १७२७ की प्रति

२. तीर्थङ्कर महावीर और उसकी आचार्य परम्परा, भाग-४, पृ०- २२

३. वाग्भट विवेचन-आचार्य प्रियव्रत शर्मा, पृ०- २८२ ४. काव्यानुशासन, पृ०- ३१

क्योंकि दोनों की वंश परगपरा भिन्न-भिन्न है और दोनों का कार्यकाल भी एक नहीं है ।[१]

वाग्भट प्रथम

परिचय, कुल परम्परा

निर्णय सागर प्रेस बम्बई की काव्यमाला में प्रकाशित "नेमिनिर्वाण" काव्य में सर्गान्त पंक्तियों में इस काव्य के रचयिता का नाम वाग्भट दिया गया है ।[२] परन्तु कवि के परिचय के लिये कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है । किन्तु हस्तलिखित प्रतियों में निम्नलिखित प्रशस्ति मिलती है जिससे कवि का बहुत थोड़ा परिचय मिल जाता है -

अहिछत्रपुरोत्पन्नप्राग्वाट कुलशालिनः । छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कवि ॥[३]

प्रशस्ति पद्य से ज्ञात होता है कि वाग्भट प्रथम प्राग्वाट (पोरवाड) कुल के थे और इनके पिता का नाम "छाहड़" था । इनका जन्म "अहिच्छत्रपुर" में हुआ था । म०म० हीरा चन्द ओझा जी के अनुसार नागौर का पुराना नाम नागपुर या अहिच्छत्रपुर है ।[४] महाभारत में जिस "अहिच्छत्र" का उल्लेख मिलता है, वह तो वर्तमान रामनगर (जिला बरेली, उ०प्र०) माना जाता है ।[५] नायाधम्मकहा में अहिच्छत्र का निर्देश आया है पर यह "अहिच्छत्र" चम्पा के उत्तर पूर्व में अवस्थित था । विविध तीर्थ कल्प में अहिच्छत्र का दूसरा नाम शंखवती नगरी आया है ।[६] इस प्रकार अहिच्छत्र के विभिन्न निर्देशों के आधार पर निर्णय करना कठिन है कि वाग्भट ने किस अहिच्छत्र को सुशोभित किया था । डा० जगदीश चन्द जैन ने अहिच्छत्र की अवस्थिति रामनगर में ही मानी है, किन्तु हमें इस सम्बन्ध में ओझा जी का मत ही अधिक प्रमाणित प्रतीत होता है और कवि वाग्भट का जन्म स्थान नागौर ही जँचता है ।

सम्प्रदाय

वाग्भट प्रथम के सम्बन्ध में इतना तो निःसन्दिग्ध है कि ये जैन धर्म के अनुयायी थे। क्योंकि नेमि-निर्वाण तथा वाग्भटालंकार के निम्न आरम्भ मंगल श्लोक जैन धर्म और जैन दर्शन के प्रति वाग्भट की आस्था एवं मनसंतुष्टि दोनों का संकेत करता मालूम पड़ता है ।

श्री नाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः सुखानि प्रथयन्तु ते वः ।
समं नगन्नाकिशिरः किरीटसंघट्टविस्रस्तमणीयितं यैः ॥[७]

---

१. वाग्भटालंकार भूमिका, पृ०-१

२. इति श्री नेमि निर्वाणे वाग्भटरचिते महाकाव्ये ———— सर्गः । - नेमि निर्वाण, सर्गान्त पुष्पिका ।

३. प्रशस्ति श्लोक सं० ८७ (यह प्रशस्ति श्रवणबेलगोल के स्व०पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्री के पुस्तकालय वाली प्रशस्ति नेमिनिर्वाण काव्य की प्रति में भी प्राप्त है ।)

४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग-२, पृ०-३२९

५. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-६, पृ०-४८०

५. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान,पृ०-२८२

७. नेमि निर्वाण, १/१-२४

श्रिय दिशतु वो देवः श्री नाभेय जिनः सदा ।
मोक्षमार्ग सदा ब्रूते पदागमपदावली ।।[१]

(अर्थात् वे श्री नाभेय-जिन जिनकी सिद्धान्त परम्परा सत्पुरुषों के लिये मोक्ष मार्ग का निरूपण किया करती है, आप सबको कल्याण लक्ष्मी प्रदान करे ।)

"श्री नाभेय जिन" इस पद में श्री स्वनभियों ब्रह्माश्च, नभियो ताभ्यामुपक्षितो जिनः विष्णु श्री नाभेयजिनः अर्थात् लक्ष्मी किंवा ब्रह्मा से पुरस्कृत विष्णु भगवान् आदि अर्थ की गवेषणा जो कि वाग्भटालंकार की एक आध व्याख्या में की गई है, वाग्भट को जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म का अनुयायी नहीं सिद्ध करती । इस मंगल श्लोक में "अतिशय चतुष्टय" अर्थात् ज्ञानातिशय, पूजातिशय, अपायापगमतातिशय और वचनातिशय का स्पष्ट संकेत है । (क्योंकि जैन साहित्य की परम्परा में "देव" वह है जो केवलज्ञान श्री से देदीप्यमान है । श्री नाभेय जिन वह है जो श्री अथवा अष्ट-महाप्रतिधर्मादि लक्ष्मी से सदा संयुक्त किंवा राग द्वेषादिरिपुचक्र का विजेता है, और मोक्ष मार्ग का प्रदर्शक वह है जो "रत्नत्रय" की आराधना-साधना से सिद्ध है) । वह इसी बात का प्रमाण है कि वाग्भट की आस्था "रत्नत्रय" के प्रति रह चुकी है और वाग्भट की मनस्तुष्टि "जैनागम पदावली" पर केन्द्रित है ।[२]

वाग्भट ने न तो गुरु आदि का नाम लिखा है और न कोई अन्य ही परिचय दिया है, अपने किसी पूर्ववर्ती कवि आचार्य का भी स्मरण नहीं किया है जिससे इनके विषय में जाना जा सके । ग्रन्थ के अन्तर्वीक्षण से ज्ञात होता है कि वे वाग्भट निश्चित रूप से दिगम्बर सम्प्रदाय के थे । काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरणों में २४ तीर्थङ्करों का क्रमशः वर्णन किया है जिनमें क्रमशः मल्लिनाथ तीर्थङ्कर को इक्ष्वाकुवंशी राजासुत (श्वेताम्बर के अनुसार सुता नहीं) माना है ।[३] तथा मल्लिनाथ को कुमार रूप माना है । तथा दूसरे सर्ग में दिगम्बर मान्य सोलह स्वप्नों का वर्णन है ।[४] इससे इनका दिगम्बर सम्प्रदाय का होना सुनिश्चित है ।

वाग्भट प्रथम ने अपने वंश के सम्बन्ध में कुछ थोड़ा सा संकेत किया है :-

ब्रह्माणुशक्तिसम्पुटमौक्तिकमणेः प्रभासमूह इव ।
श्री वाग्भट इति तनय आसीत् बुधस्तस्य सोमस्य ।।[५]

वाग्भटालंकार के व्याख्याकार श्री सिंहदेव मणि ने इस उदाहरण श्लोक की अवतरणिका के रूप में निर्देश दिया है :-

"इदानीं ग्रन्थकारः इदमलंकार कर्त्तत्वख्यापनाय वाग्भटाभिधस्य महाकवेर्महामात्यस्यतन्ना

---

१. वाग्भटालंकार श्लोक संख्या - १ (प्रथम परिच्छेद)

२. वाग्भटालंकार, भूमिका, पृ०-२

३. तपः कुठारक्षतकर्मवल्लिर्मल्लिर्जिनो वः श्रियमातनोतु । कुरोःसुतस्यापि न यस्य जातं दुःशासनत्वं भुवनेश्वरस्य।। - नेमिनिर्वाण, १/१९

४. नेमिनिर्वाण, २/४६

५. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद श्लोक सं० १४७

मगाथयैकया निदर्शयति" ।

तथा एक और व्याख्याकार श्री जिनवर्धनसूरि का यह उल्लेख है :-

"तस्य सोमस्य वाहड इति नाम्ना तनय आसीत्"

जिसकी पुष्टि वाग्भट के ही तीसरे व्याख्याता श्री क्षेमहंसमणि ने इस प्रकार से की है:-

"तस्य सोमस्य वाहड इति तनय आसीत्"

यह सब यही सिद्ध करता है कि वाग्भट का प्राकृत नाम वाहड रह चुका है और वाग्भट के पिता का नाम "सोम" था ।[१]

निवास स्थान

वाग्भट का निवास स्थान अणहिल्लपट्टन (अनहिलवाड) प्रतीत होता है । वाग्भट ने अपनी नगर भूमि का इस प्रकार स्मरण किया है :-

अणहिल्लपाटकं पुरमवनिपतिः कर्णदेवनृपसूनुः ।
श्री कलशनामधेयः करी च रत्नानि जगतीह ।।[२]

अर्थात् जगतीतल के प्रत्यक्ष दृश्यमान "रत्नत्रय" में प्रथम रत्न अणहिल्लपाटन नामक नगर रत्न । द्वितीय रत्न है चालुक्य श्री जयसिंह देव नामक राजरत्न और तृतीय रत्न है श्री कलशनामक गजरत्न ।

अतः इससे अनुमान किया जा सकता है कि वाग्भट का अनहिलवाड के प्रति प्रगाढ़ स्नेह एवं हृदयासक्ति का ही परिचायक है ।

वाग्भट और चालुक्य श्री जयसिंहदेव का सम्बन्ध तो सिद्ध ही है, क्योंकि वाग्भटालंकार की कतिपय सूक्तियाँ श्री जयसिंहदेव की स्मृति और प्रशस्ति का ही अभिप्राय रखती हैं - उदाहरण के लिए यह सूक्ति-"इन्द्रेण किं यदि स कर्णनरेन्द्रसूनुरैरावतेन किमहो यदि तद्द्विपेन्द्रः। दम्भोलिनाप्यलमलं यदि तत्प्रतापः स्वर्गोप्ययं ननु मुधा यदि तत्पुरी सा ।।"[३]

यह सूक्ति श्री कर्णदेव के पुत्र चालुक्य श्री जयसिंहदेव को इन्द्र के समान धर्म बताती हुई वाग्भट के राजप्रेम की सूचना दे रही है । इसी प्रकार यह सूक्ति भी -

जगदात्मकीर्तिशुभ्रं जनयन्नद्दामद्योमदोः परिधिः ।
जगतिप्रतापपूषा जयसिंहः क्ष्माभृदधिनाथः ।।[४]

इससे चालुक्य श्री जयसिंहदेव का नाम संकीर्तन स्पष्ट है । वाग्भट और समसामयिक चालुक्य दरबार के पारस्परिक सम्बन्ध का स्पष्ट प्रभाव हैं ।

---

१. वाग्भटालंकार भूमिका, पृ०-२ २. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, श्लोक सं० १३१
३. वही, श्लोक सं० ७५ ४. वही, श्लोक सं० ४५

इसी प्रकार वाग्भटालंकार के चतुर्थ परिच्छेद में श्लोक संख्या अस्सी और चौरास्सी से यह स्पष्ट है कि कवि वाग्भट को अपने आश्रय दाता चालुक्य श्री जयसिंहदेव पर अभिमान है और चालुक्य राजा के ताम्रचूड छत्र के गौरव का ध्यान है।

स्थिति काल

वाग्भट ने अपने काव्य तथा अपने समय के सम्बन्ध में कुछ भी निर्देश नहीं दिया है अतः अन्तरंग प्रभावों के अभाव में केवल बाह्य प्रभावों का साक्ष्य ही शेष रह जाता है।

वाग्भटालंकार के रचयिता ने अपने लक्षण ग्रन्थ में नेमि निर्वाण के छठे सर्ग के "कान्तार भूमौ"[१] जुहुर्वसन्ते[२], और नेमि विशालनयनयोः[३] पद्यों की वाग्भटालंकार के पद्य ४/३५, ४/३९ एवं ४/३२ में उद्धृत किया है। नेमिनिर्वाण के वरणाः प्रसूननिकरा[४] भी वाग्भटालंकार के ४/४० वें पद्य के रूप में आया है। अतः नेमिनिर्वाण की रचना वाग्भटालंकार के पूर्व हुई है। वाग्भटालंकार के रचयिता वाग्भट का समय जयसिंहदेव का राज्यकाल माना जाता है।

प्रो० बूल्हर ने अनहिलवाड के चालुक्य राजवंश की जो वंशावली अंकित की है, उनके अनुसार जयसिंहदेव का राज्यकाल सन् १०९३-११४२ (वि०सं० ११५०-११९९) सिद्ध होता है। आचार्य हेमचन्द्र के द्‌व्याश्रय काव्य से सिद्ध होता है कि वाग्भट चालुक्य वंशीय कर्णदेव के पुत्र जयसिंह देव के अमात्य थे। अतएव नेमिनिर्वाण की रचना वि०सं० ११७१ (१११४ ई०) के पूर्व होनी चाहिए।[५]

चन्द्रप्रभचरित, धर्मशर्माभ्युदय और नेमिनिर्वाण इन तीनों काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि चन्द्रप्रभचरित का प्रभाव धर्म-शर्माभ्युदय पर है और नेमिनिर्वाण इन दोनों काव्यों से प्रभावित है। धर्मशर्माभ्युदय पर नेमिनिर्वाण का प्रभाव जरा भी प्रतीत नहीं होता है।

धर्मशर्माभ्युदय "श्री नाभिसूनोश्चिरमङ्घ्रियुग्मनखेन"[६] का नेमिनिर्वाण के "श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखः"[७] पर स्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार "चन्द्रप्रभनोभियदीयमाला नूनं"[८] से "चन्द्रप्रभाय प्रभवे त्रिसन्ध्ये तस्मै"[९] पद्य भी प्रभावित है। अतएव नेमिनिर्वाण का रचनाकाल ई०सन् १०७५-११२५ होना चाहिए।

नेमि निर्वाण पर माघ के शिशुपाल वध की स्पष्ट छाया है जो छठे सर्ग से दशवें सर्ग तक देखी जा सकती है।

काव्य की कथावस्तु गुणभद्र के उत्तर पुराण तथा जिनसेन प्रथम के हरिवंशपुराण से ग्रहीत मालूम पड़ती है। अतः इससे ये अवश्य ही इनके बाद हुये होंगे।

---

१. नेमिनिर्वाणम्, ६/४६ २. वही, ६/४७ ३. वही, ६/५१ ४. वही, ७/२६

५. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान पृ० २८३ ६. धर्मशर्माभ्युदय, १/१

७. नेमि निर्वाण १/१ ८. धर्मशर्माभ्युदय १/२ ९. नेमि निर्वाण १/१८

इसी प्रकार वाग्भट का कार्यकाल अन्य प्रमाणों से भी यही सिद्ध किया जा सकता है। प्रभावकचरित में वाग्भट के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है —

अथास्ति वाहडो नाम धनवान् धार्मिकाग्रणीः । गुरुपादान् प्रणम्याथ चक्रे विज्ञापनामसौ ।।
आदिश्यतामतिश्लाघ्यं कृत्यं यत्र धनं व्यये । प्रभुराहालये जैने द्रव्यस्य सफलो व्ययः ।।
आदेशानंतरं तेनाकार्यत श्रीजिनालयः । हेमाद्रिधवल स्तुंगो, दीप्यत्कुम्भमहामणिः ।।
श्री माता वर्धमान स्याबीभरद्बिम्बुमत्तमम् । यत्तेजसा जिताश्चन्द्र (चन्द्र) कान्तमणिप्रभाः ।।
शतैकादशके साष्टसप्ततौ विक्रमार्कतः । वत्सराणां व्यतिक्रान्ते श्रीमुनिचन्द्रसूरयः ।।
आराधनाविधिश्रेष्ठं कृत्वा प्रायोपवेशनम् । शमपीयूषकल्लोलप्लुतास्ते त्रिदिवं ययुः ।।
वत्सरे तत्र चैकेन पूर्णे श्रीदेवसूरिभिः । श्री वीरस्य प्रतिष्ठां स वाहडो कारयत्मुदा ।।

इसका यही अभिप्राय है कि वाग्भट ११२२ ई० (११७९ वि०सं०) के हैं और उनका नाम वाहड रह चुका है जिसका संस्कृत रूपान्तर वाग्भट है ।

वाग्भट एक धनी किंवा परम धार्मिक जैनोपासक थे और उन्होंने जैन मन्दिर की स्थापना में अपने धन का सद्व्यय किया था ।

प्रभावक चरित की ये पंक्तियाँ भी वाग्भट के उपर्युक्त कार्यकाल की ही पुष्टि करती हैं —

अणहिल्लपुरं प्रापक्ष्मापः प्राप्त जयोदयः । महोत्सवप्रवेशस्य गजारूढसुरेन्द्रवत् ।।
वाग्भटस्य विहारं सादृशेतद्रसायनम् । अन्येद्युः वाग्भटामात्यं धर्मात्यन्तिकवासनः ।।
अपृच्छतार्हताचारोपदेष्टारं गुरुं नृपः ।श्रीमद्वाग्भट-देवोऽपि जीर्णोद्धारमकारयत ।।
शिखीन्दुरवि वर्षे (१२१३) च ध्वजारोपं व्यधापयत ।।

अर्थात् विक्रम संवत् १२१३ (११५६ ई०) में अमात्य प्रवर वाग्भट ने जैन विहार का जीर्णोद्धार किया और एक ध्वज स्तम्भ की स्थापना की ।[1]

१. वाग्भटालंकार, भूमिका पृ० ४-५

नेमिनिर्वाण की कथावस्तु

कथावस्तु का मूल स्रोत :

काव्य शास्त्रियों की ऐसी मान्यता रही है कि महाकाव्य की कथावस्तु किसी ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित अथवा सज्जनाश्रित होना चाहिए।[1] शास्त्रकारों की इस मान्यता के अनुसार नेमि-निर्वाण के मूल स्रोत के विषय में विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्री नेमिनाथ के चरित्र के कुछ सूत्र सबसे पहले आचार्य यतिवृषभ द्वारा लिखित 'तिलोयपण्णत्ती' नामक ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि यह ग्रन्थ 'करणानुयोग' का है, इसलिए इसमें मुख्यरूप से चतुर्गति, युग-परिवर्तन आदि का ही विवेचन होता है, तथापि दिगम्बर जैन साहित्य के श्रुताङ्ग से सम्बन्ध रखने के कारण इसमें ६३ शलाकापुरुषों का भी संक्षिप्त वर्णन हुआ है। तिलोयपण्णत्ती में प्रतिपादित तीर्थङ्कर नेमिनाथ के वर्णन को वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण महाकाव्य के मूल स्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इसमें नेमिनाथ के माता-पिता, जन्मस्थान, केवलज्ञान, मोक्षप्राप्ति का दिग्दर्शन मात्र हुआ है। इसमें तीर्थङ्कर नेमिनाथ के पूर्ववर्ती भव, जन्मतिथि, तीर्थकाल, आयु, शरीर की ऊँचाई, चिह्न, वैराग्य उत्पत्ति का हेतु, दीक्षा स्थान, छद्मस्थ काल, केवलज्ञान प्राप्ति की तिथि एवं स्थान, इन्द्र द्वारा समवसरण की संरचना, समवसरण का क्षेत्रफल, केवलिकाल, गणधर, गणों में मुनि एवं आर्यिकाओं की संख्या तथा तीर्थकाल का ही निर्देश हुआ है,[2] जिनका महाकाव्य की कथावस्तु में कोई महत्त्व नहीं है। भले ही नेमिनाथ के चरित्र के बीज तिलोयपण्णत्ती में विद्यमान हों, परन्तु इसे नेमिनिर्वाण का स्रोत नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें उनके जीवन की किसी भी घटना का वर्णन नहीं किया गया है।

उत्तरपुराण में वर्णित नेमिनाथचरित :

श्री कृष्ण तथा होनहार नेमिनाथ तीर्थङ्कर के पुण्य से इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने एक सुन्दर नगरी की रचना की। जिसमें सबसे पहले उसमें विधिपूर्वक मंगलों का मांगलिक स्थान और एक हजार शिखरों से सुशोभित देदीप्यमान एक बड़ा जिनमन्दिर बनाया। फिर वप्र, कोट, परिखा, गोपुर तथा अट्टालिका आदि से सुशोभित पुण्यात्मा, जीवों से युक्त मनोहर नगरी बनवाई। समुद्र अपनी बड़ी-बड़ी तरंगरूपी भुजाओं से उस नगरी के गोपुर का आलिंगन करता था, वह नगरी अपनी दीप्ति से देवपुरी की हँसी करती थी और द्वारावती उसका नाम था। जिन्हें लक्ष्मी कटाक्ष उठाकर देख रही थी ऐसे श्रीकृष्ण ने पिता वसुदेव तथा बड़े भाई बलदेव के साथ उस नगरी में प्रवेश किया और यादवों के साथ सुख से रहने लगे। जो आगे चलकर

१. 'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रितम्।' साहित्यदर्पण, ६/३८

२. द्रष्टव्य - तिलोयपण्णत्ती, चउत्थो महाधियारो।

तीन लोक का स्वामी होने वाला है ऐसा अहमिन्द्र का जीव जब छः माह बाद जयन्त विमान से चलकर पृथ्वी पर आने के लिये उद्यत हुआ तब काश्यप गोत्री हरिवंश के शिखामणि राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी रत्नों की धारा आदि से पूजित हुई और देवियाँ उनके चरणों की सेवा करने लगीं। छह माह समाप्त होने पर रानी ने कार्तिक शुक्ल षष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में रात्रि के पिछले समय सोलह स्वप्न देखे और उनके बाद ही मुखकमल में प्रवेश करते हुए एक उत्तम हाथी को देखा।

तदनन्तर - बन्दीजनों के शब्द और प्रातः काल के समय बजने वाली भेरियों की आवाज सुनकर जागी हुई रानी शिवादेवी ने मंगलमय स्नान किया, पुण्यरूप वस्त्राभरण धारण किये और फिर बडी नम्रता से राजा के पास जाकर वह उनके अर्धासन पर बैठ गई। पश्चात् उसने अपने देखे हुए सोलह स्वप्नों का फल पूछा। सूक्ष्म बुद्धिवाले राजा समुद्रविजय ने भी सुने हुये आगम का विचार कर उन स्वप्नों का फल कहा कि तुम्हारे गर्भ में तीन लोक के स्वामी तीर्थङ्कर अवतीर्ण हुए हैं। उस समय रानी शिवादेवी स्वप्नों का फल सुनकर ऐसी सन्तुष्ट हुई मानों उसने तीर्थङ्कर को ही प्राप्त कर लिया हो। उसी समय इन्द्रों ने भी यह सब अपने-अपने चिह्नों से जान लिया। वे सब हर्ष से मिल कर आये और स्वर्गावतरण कल्याणक (गर्भ कल्याणक) का महोत्सव करने लगे। उत्सव द्वारा पुण्योपार्जन कर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये। फिर श्रावणशुक्ला षष्ठी के दिन ब्रह्मयोग के समय चित्रा नक्षत्र में तीन ज्ञान के धारक भगवान का जन्म हुआ। ऐसे सौधर्म आदि इन्द्र हर्षित होकर आये और नगरी को घेरकर खड़े हो गये। तदनन्तर जो नील कमल के समान कान्ति के धारक हैं, ईशानेन्द्र ने जिनपर छत्र लगाया है तथा नमस्कार करते हुए चमर और वैरोचन नाम के इन्द्र जिन पर चमर ढोर रहे हैं, ऐसे जिनेन्द्र बालक को सौधर्मेन्द्र ने बड़ी भक्ति से उठाया और कुबेर निर्मित तीन प्रकार की मणिमय सीढ़ियों के मार्ग से चलकर उन्हें ऐरावत हाथी के स्कन्ध पर विराजमान किया। अब इन्द्र आकाश मार्ग से चलकर सुमेरु पर पहुँचे और वहाँ उसने सुमेरु पर्वत की ईशान दिशा में पाण्डुक शिला के अग्रभाग पर जो अनादिनिधन मणिमय सिंहासन रखा है, उस पर सूर्य से अधिक तेजस्वी जिन-बालक को विराजमान कर दिया। वहीं उसने अनुक्रम से हाथोंहाथ लाकर इन्द्रों के द्वारा सौपे एवं क्षीरसागर के जल से भरे स्वर्णमय एक हजार आठ देदीप्यमान कलशों के द्वारा उनका अभिषेक किया। उन्हें यथायोग्य इच्छानुसार आभूषण पहनाये और ये समीचीन धर्मरूपी चक्र की नेमि हैं – चक्रधारा है, इसलिए उन्हें नेमिनाम से सम्बोधित किया। फिर सौधर्मेन्द्र ने मुकुटबद्ध इन्द्रों के द्वारा माननीय महाऋद्धि के धारक भगवान् को सुमेरु पर्वत पर लाकर माता-पिता को सौंपा। विक्रिया द्वारा अनेक भुजायें बनाकर रस और भाव से भरा हुआ आनन्द नामक नाटक किया और यह सब करने के बाद समस्त देवों के साथ अपने स्थान पर चला गया। भगवान नेमिनाथ की तीर्थ परम्परा के पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमि जिनेन्द्र

उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु भी उसी अन्तराल में शामिल थी, उनकी आयु एक हजार वर्ष की थी। शरीर दश धनुष ऊँचा था उनके संस्थान और संहनन उत्तम थे। तीनों लोकों के इन्द्र उनकी पूजा करते थे और मोक्ष उनके समीप था। इस प्रकार के दिव्य सुखों का अनुभव करते हुए चिरकाल तक द्वारावती में रहे। इस तरह सुखोपभोग करते हुये उनका बहुत भारी समय एक क्षण के समान बीत गया। किसी एक दिन मगध देश के रहने वाले ऐसे कितने वैश्य पुत्र जो कि जलमार्ग से व्यापार करते थे, पुण्योदय से मार्ग भूलकर द्वारावती नगरी में आ पहुँचे। वहाँ की राजलीला और विभूति देखकर आश्चर्य में पड़ गये। वहाँ जाकर उन्होंने बहुत से श्रेष्ठ रत्न खरीदे। तदनन्तर राजगृह नगर जाकर उन वैश्य पुत्रों ने अपने सेठ को आगे किया और रत्नों की भेंट देकर चक्ररत्न के धारक राजा जरासन्ध के दर्शन किये। राजा जरासन्ध ने उनका सम्मान कर उनसे पूछा कि "अहो वैश्य पुत्रों, आप लोगों ने यह रत्नों का समूह कहाँ से प्राप्त किया है? यह अपनी उठती हुई किरणों से ऐसा जान पड़ता है मानों कौतुकवश इसने नेत्र ही खोल रखे हों।" उत्तर में वैश्य पुत्र कहने लगे कि हे राजन्! सुनिये हम लोगों ने एक बड़ा आश्चर्य देखा है और ऐसा आश्चर्य जिसे पहले कभी नहीं देखा है। समुद्र के बीच में एक द्वारावती नगरी है। जो ऐसी जान पड़ती है मानो पाताल से ही निकल कर पृथ्वी पर आई हो। वहाँ चूने से पुते हुये बड़े-बड़े भवन सघनता से विद्यमान हैं। जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्र के फेन का समूह ही नगरी के आकार में परिणत हो गया हो। वह शत्रुओं के द्वारा अलंघनीय है। अतः ऐसी जान पड़ती है मानो भरत चक्रवर्ती का दूसरा पुण्य ही हो। भगवान् नेमिनाथ की उत्पत्ति का कारण होने से वह नगरी सब नगरियों से उत्तम है, कोई भी उसका विघात नहीं कर सकता है। वह याचकों से रहित है। यहाँ उसके महलों पर बहुत सी पताकायें फहराती रहती हैं जिससे ऐसा जान पड़ता है कि यह "गौरव रहित शरद ऋतु के बादलों का समूह मेरे ऊपर रहता है" इस ईर्ष्या के कारण मानों वह महलों के अग्रभाग पर फहराती हुई चंचल पताकाओंरूपी बहुत सी भुजाओं से आकाश में ऊँचाई पर स्थित शरद ऋतु के बादलों को वहाँ से हटा रही हो। वह नगरी ठीक समुद्र के जल के समान है क्योंकि जिस प्रकार समुद्र के जल में बहुत से रत्न रहते हैं उसी प्रकार उस नगरी में भी बहुत से रत्न विद्यमान हैं। जिस प्रकार समुद्र का जल कृष्ण तेज अर्थात् काले वर्ण से सुशोभित रहता है उसी प्रकार वह नगरी भी कृष्ण तेज अर्थात् वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण के प्रताप से सुशोभित है और जिस प्रकार समुद्र के जल में सदा गम्भीर शब्द होता रहता है, उसी प्रकार उस नगरी में भी सदा गम्भीर शब्द होता रहता है, वह नो योजन चौड़ी तथा बारह योजन लम्बी है, समुद्र के बीच में है तथा यादवों की नगरी कहलाती है, "हम लोगों ने ये रत्न वहीं प्राप्त किये हैं-ऐसा वैश्य पुत्रों ने कहा। जब देव से छले गये अहंकारी जरासन्ध ने वैश्य पुत्रों के उक्त वचन सुने तो वह क्रोध से अन्धा हो गया। जिसकी सेना असमय से

प्रकट हुए प्रलयकाल के लहराते समुद्र के समान चंचल है, ऐसा वह जरासन्ध यादव लोगों का शीघ्र ही नाश करने के लिए तत्काल चल पड़ा। बिना कारण ही युद्ध से प्रेम रखने वाले नारद जी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने शीघ्र ही आकर श्रीकृष्ण से जरासन्ध के कोप का समाचार कह दिया। "शत्रु चढ़कर आ रहा है" यह समाचार सुनकर श्रीकृष्ण को कुछ भी आकुलता नहीं हुई। उन्होंने नेमिकुमार के पास जाकर कहा कि आप इस नगर की रक्षा कीजिए सुना है कि मगध का राजा जरासन्ध हम लोगों को जीतना चाहता है सो मैं उसे आपके प्रभाव से घुण के द्वारा खाये हुए जीर्ण वृक्ष के समान शीघ्र ही नष्ट किये देता हूँ। श्रीकृष्ण के वीरतापूर्ण वचन सुनकर जिसका चित्त प्रसन्नता से भर गया है जो कुछ-कुछ मुस्करा रहे हैं, जिनके नेत्र मधुरता से ओत-प्रोत हैं ऐसे नेमिनाथ को अवधिज्ञान था। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विरोधियों के ऊपर हम लोगों की विजय निश्चित रहेगी। उन्होंने दाँतों की देदीप्यमान कान्ति को प्रकट करते हुए "ओम्" शब्द कह दिया अर्थात् द्वारावती का शासन स्वीकृत कर लिया। जिस प्रकार जैनवादी अन्यथानुपपत्ति रूप लक्षण से सुशोभित पक्ष आदि के द्वारा ही अपनी जय का निश्चय कर लेता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी नेमिनाथ की मुस्कान आदि से अपनी विजय का निश्चय कर लिया था।

श्रीकृष्ण और बलदेव शत्रुओं को जीतने के लिए जय विजय, सारण, अंगद, देव, उद्धव, सुमुख, पद्म, जरा, सुकृष्टि, पाँचों पांडव, सत्यक, द्रुपद, समस्त यादव, विराट, अपरिमित सेनाओं से युक्त धृष्टार्जुन, उग्रसेन, युद्ध का अभिलाषी चगर? , विदुर तथा अन्य राजाओं के साथ उद्यत होकर युद्ध के लिये तैयार हुये और वहाँ से चलकर कुरुक्षेत्र में जा पहुंचे। उधर युद्ध की इच्छा रखने वाला जरासन्ध भी अपनी गरमी (अहंकार) प्रकट करने वाले भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, रूक्म, शल्य, वृषसेन, कृप, कृपवर्मा, रुदिर, इन्द्रसेन, राजा जयद्रथ, हेमप्रभ, पृथ्वी का नाथ दुर्योधन, दुःशासन, दुर्मिषण, दुर्जय, राजा कलिंग, भगदत्त तथा अन्य अनेक राजाओं के साथ कृष्ण के सामने आ पहुँचा उस समय श्रीकृष्ण की सेना में युद्ध की भेरियाँ बज रही थी। सो जिस प्रकार कुसुम्भ रंग वस्त्र को रंग देता है, उसी प्रकार उन भेरियों के उठते हुये शब्द ने शूरवीरों के चित्त को रगंवा दिया था। उसी प्रकार उन भेरियों का शब्द सुनकर कितने ही राजा लोग देवताओं की पूजा करने लगे और कितने ही गुरुओं के पास जाकर अहिंसा आदि व्रत धारण करने लगे। युद्ध के सम्मुख हुये कितने ही राजा अपने भृत्यों से कह रहे थे कि तुम लोग कवच धारण करो, पैनी तलवार लो, धनुष चढ़ाओ और हाथी तैयार करो। घोड़ों पर जीन कसकर तैयार करो, स्त्रियाँ, अधिकारियों के लिये सौपों, रथों में घोड़े जोत दो, निरन्तर भोग उपभोग में वस्तुओं का सेवन किया जाये, बन्दी तथा मागध लोग अपने पराक्रम से कितने ही शत्रुओं पर जमी हुई ईर्ष्या से, कितने ही यश पाने की इच्छा से, कितने ही शूरवीरों की गति पाने के लोभ से, कितने ही अपने वंश के अभिमान से, कितने

ही युद्ध सम्बन्धी अन्य-अन्य कारणों से प्राणों का नाश करने के लिये तैयार हो गये थे। उस समय श्रीकृष्ण भी बड़ा गर्व कर रहे थे। सब आभूषण पहने थे और शरीर पर केशर लगाये हुये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानों सिन्दूर लगाये हुये हाथी हो। "आपकी जय हो" "आप चिरंजीवी रहें" इस प्रकार बन्दीजन उनका मंगलपाठ पढ़ रहे थे, जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चातकों की सुन्दर ध्वनि से युक्त नवीन मेघ ही हो। उन्होंने सज्जनों के द्वारा धारण की हुई पवित्र सुवर्णमय झारी के जल से आचमन किया, शुद्ध जल से शीघ्र ही पूर्ण जलांजलि दी और फिर गन्ध, पुष्प आदि द्रव्यों के द्वारा विघ्नों का नाश करने वाले स्वामी रहित (जिनका कोई स्वामी नहीं) तथा भव्य जीवों का मनोरथ पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष के समान श्री जिनेन्द्रदेव की भक्ति पूर्वक पूजा की, उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर चारों ओर गुरुजनों और सामन्तों को अथवा प्रामाणिक सामन्तों को रखकर स्वंय ही शत्रु को नष्ट करने के लिये उसके सामने चल पड़े। तदनन्तर कृष्ण की आज्ञा से अनुराग रखने वाले प्रशंसनीय परिचारकों ने यथायोग्य रीति से सेना की रचना की। जरासन्ध भी संग्रामरूपी युद्धभूमि के बीच में आ बैठा और कठोर सेनापतियों के द्वारा सेना की योजना करवाने लगा। इस प्रकार जब सेनाओं की रचना ठीक-ठीक हो गई तब युद्ध के नगाड़े बजने लगे। शूरवीर धनुषधारियों के द्वारा छोड़े हुए बाणों से आकाश भर गया और उसने सूर्य की फैलती हुई किरणों की सन्तति को रोक दिया, ढक दिया। "सूर्य अस्त हो गया है" इस भय की आशंका से मोहवश चकवा-चकवी परस्पर बिछड़ गये। अन्य पक्षी भी शब्द करते हुये घोंसले की ओर जाने लगे। इस समय युद्ध के मैदान में इतना अन्धकार हो गया था कि योद्धा परस्पर एक दूसरे को देख नहीं सकते थे। परन्तु कुछ ही समय बाद क्रुद्ध हुये मदोन्मत्त हाथियों के दांतों की टक्कर से उत्पन्न हुई अग्नि के द्वारा जब वह अन्धकार नष्ट हो जाता और सब दिशायें साफ-साफ दिखने लगती तब समस्त शस्त्र चलाने में निपुण योद्धा फिर से युद्ध करने लगते थे। विक्रम रस से भरे योद्धाओं ने क्षणभर में खून की नदियाँ बहा दी। भयंकर तलवार की धार से जिनके आगे के दो पैर कट गये हैं, ऐसे घोड़े उन तपस्वियों की गति को प्राप्त हो रहे थे, जोकि तप धारण कर उसे छोड़ देते हैं। जिनके पैर कट गये हैं ऐसे हाथी इस प्रकार पड़ गये थे मानो प्रलयकाल की महावायु से जड़ से उखाड़कर नीले रंग के बडे-बडे पहाड़ ही पड़ गये हैं। शत्रु भी जिनके साहसपूर्ण कार्यो की प्रशंसा कर रहे हैं, ऐसे पड़े हुये योद्धाओं के प्रसन्न मुख-कमल स्थल कमल की शोभा धारण कर रहे थे। योद्धाओं ने अपनी कुशलता से परस्पर एक दूसरे के शस्त्र तोड़ डाले थे परन्तु उनके टुकड़ों से ही समीप में खड़े हुये बहुत से लोग मर गये थे। कितने ही योद्धा न ईर्ष्या से, न क्रोध से, न यश से और न फल पाने की इच्छा से युद्ध करते थे किन्तु यह न्याय है ऐसा कहकर युद्ध कर रहे थे। जिनका शरीर सर्वप्रकार से शस्त्रों से छिन्न-भिन्न हो गया है, ऐसे कितने ही वीर योद्धा हाथियों के स्कन्ध से नीचे गिर गये थे, परन्तु

कानों के आभरणों में पैर फँस जाने से लटक गये थे, जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानों वे अपना चिरपरिचित स्थान छोड़ना नहीं चाहते हों और इसीलिये कानों के अग्रभाग का सहारा ले नीचे की और मुख लटक गये हों। बड़ी चपलता से चलने वाले कितने ही योद्धा अपनी रक्षा के लिये बाँये हाथ से भाला लेकर शस्त्रों वाली दाहिनी भुजा से शत्रुओं को मार रहे थे। आगम में जो मनुष्य का कवलीघात नाम का अकाल मरण बतलाया गया है उसकी अधिक से अधिक संख्या यदि हुई थी तो उस युद्ध में ही हुई थी, ऐसे युद्ध के मैदान के विषय में कहा जाता है। इस प्रकार दोनों सेनाओं में चिरकाल तक तुमुल युद्ध होता रहा जिससे यमराज भी खूब सन्तुष्ट हो गया था। तदनन्तर जिस प्रकार किसी छोटी नदी के जल को महानदी के प्रवाह का जल दबा देता है उसी प्रकार सिंह हाथियों के समूह पर टूट पड़ता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर तथा सामन्त राजाओं की सेना के समूह साथ लेकर शत्रुओं को मारने के लिये उद्यत हो गये - शत्रु पर टूट पड़े। जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही अंधकार विलीन हो जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण को देखते ही शत्रुओं की सेना विलीन हो गयी, उसमें भगदड़ मच गई। यह देख, क्रोध से भरा जरासन्ध आया और उसने रुक्ष दृष्टि से देखकर अपने पराक्रम से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करने वाला चक्ररत्न श्रीकृष्ण की ओर चलाया परन्तु वह चक्र प्रदक्षिणा देकर श्रीकृष्ण की दाहिनी भुजा पर ठहर गया। तदनन्तर वही चक्र लेकर श्रीकृष्ण ने मगधेश्वर-जरासन्ध का सिर काट डाला। उसी समय श्रीकृष्ण की सेना में जीत के नगाड़े बजने लगे और आकाश से सुगन्धित जल की बूँदो के साथ-साथ कल्पवृक्षों के फूल बरसने लगे। चक्रवर्ती श्रीकृष्ण ने दिग्विजय की भारी इच्छा से चक्ररत्न आगे कर बड़े भाई बलदेव तथा अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया। जिनका उदय बलवान है ऐसे श्रीकृष्ण ने मागध आदि प्रसिद्ध देवों को जीतकर अपना सेवक बनाया और उनके द्वारा दिये हुए श्रेष्ठ रत्न ग्रहण किये। लवण समुद्र सिन्धु नदी और पैरों के नखों की कान्ति का म्लेच्छ राजाओं से नमस्कार कराकर उनसे अपने पैरों के नखों की कान्ति का भार उठवाया। तदनन्तर विजयार्ध पर्वत, लवण समुद्र और गंगा नदी के मध्य में स्थित म्लेच्छ राजाओं को विद्याधरों के ही साथ जितेन्द्रिय श्रीकृष्ण ने शीघ्र ही वश में कर लिया। इस प्रकार आधे भारत के स्वामी होकर श्रीकृष्ण ने जिसमें बहुत ऊँची पताकायें फहरा रही हैं और जगह-जगह तोरण बाँधे गये हैं ऐसी द्वारावती नगरी में बड़े हर्ष के साथ प्रवेश किया। प्रवेश करते ही देव ओर विद्याधर राजाओं ने उन्हें तीन खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती मानकर उनका बिना कुछ कहे सुने ही अपने आप राज्याभिषेक किया।

श्रीकृष्ण की एक हजार वर्ष की आयु थी, दस धनुष की ऊँचाई थी, अतिशंय सुशोभित नीलकमल के समान उनका वर्ण था और लक्ष्मी से आलिंगित उनका शरीर था। चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष-दण्ड और नन्दक नाम का खड्ग-यें उनके सात रत्न थे। इन सभी रत्नों

की देव लोग रक्षा करते थे । रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये चार देदीप्यमान महारत्न बलदेवप्रभु के थे । रुक्मिणी, सत्यभामा, सती, जामवन्ती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गान्धारी, सप्तमी, गौरी और प्रिया पद्मावती ये आठ देवियाँ श्रीकृष्ण की पटरानी थी । इनको मिलाकर सब सोलह हजार रानियाँ थी और बलदेव के सब मिलाकर अभीष्ट सुख देने वाली आठ हजार रानियाँ थी । ये दोनों भाई इन रानियों के साथ देवों के समान सुख भोगते हुये परम प्रीति को प्राप्त हो रहे थे । इस प्रकार पूर्वजन्म में किये हुये अपने पुण्य कर्म के उदय से पुष्कल भोगों को भोगते हुये श्रीकृष्ण का समय सुख से व्यतीत हो रहा था ।

किसी एक समय शरद ऋतु में सब अन्तःपुर के साथ मनोहर नाम के सरोवर में सब लोग मनोहर जलकेलि कर रहे थे । वहाँ पर जल उछालते समय भगवान् नेमिनाथ और सत्यभामा के बीच चतुराई से भरा हुआ मनोहर वार्तालाप हुआ । सत्यभामा ने कहा कि आप मेरे साथ अपनी प्रिया के समान क्रीडा क्यों करते हैं? उसके उत्तर में नेमिराज ने कहा कि क्या तुम मेरी प्रिया (इष्ट) नहीं हो? सत्यभामा ने कहा कि यदि मैं आपकी प्रिया (स्त्री) हूँ तो फिर आपके भाई (श्रीकृष्ण) किसके पास जायेंगे? नेमिनाथ ने उत्तर दिया कि वे कामिनी के पास जायेगें? सत्यभामा ने कहा कि सुनें तो सही वह कामिनी कौन सी है, उत्तर में नेनिनाथ ने कहा कि क्या तुम नहीं जानती? अच्छा अब जान जाओगी । सत्यभामा ने कहा कि सब लोग आपको सीधा कहते हैं पर आप तो बड़े कुटिल हैं । इस प्रकार जब विनोद करते करते स्नान समाप्त किया तब नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा कि हे नीलकमल के समान नेत्रों वाली,! तू मेरा यह स्नान का वस्त्र ले । सत्यभामा ने कहा कि मैं इसका क्या करूँ? नेमिनाथ ने कहा कि इसे धो डाल । तब सत्यभामा कहने लगी कि क्या आप श्रीकृष्ण है? वह श्रीकृष्ण जिन्होंने कि नागशैय्या पर चढ़कर शारङ्ग नाम का दिव्य धनुष अनायास ही चढ़ा दिया था और दिग्दिगन्त को पूर्ण करने वाला शंखपूरा था? क्या आपमें वह साहस है यदि नहीं है तो आप मुझे वस्त्र धोने की बात क्यों कहते हो? नेमिनाथ ने कहा कि "मैं यह कार्य अच्छी तरह कर दूगाँ" इतना कह कर वे गर्व से प्रेरित हो नगर की ओर चल पड़े और वह आश्चर्यपूर्ण कार्य करने के लिये आयुधशाला में जा घुसे । वहाँ वे नागराज के महामणियों से सुशोभित नागशैय्या पर चढ़ गये । बार बार स्फालन करने से जिसकी डोरी रूपी लता बड़ा शब्द कर रही है ऐसा धनुष उन्होंने चढ़ा दिया ओर दिशाओं के अन्तराल को रोकने वाला शंख फूँक दिया । उस समय उन्होंने अपने आपको महान् उन्नत समझा सो ठीक ही है क्योंकि राग और अहंकार का लेशमात्र भी प्राणी को अवश्य ही विकृत बना देता है ।

जिस समय आयुधशाला में यह सब हुआ था उस समय श्रीकृष्ण कुसुमचित्रा नाम की सभाभूमि में विराजमान थे वे सहसा ही यह आश्चर्यपूर्ण काम सुनकर व्यग्र हो उठे उनका मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा । बड़े आश्चर्य के साथ उन्होंने किंकरों से पूछा कि "यह क्या है?"

किंकरों ने भी अच्छी तरह पता लगाकर श्रीकृष्ण से सब बात ज्यों की त्यों निवेदन कर दी। किंकरों के वचन सुनकर चक्रवर्ती कृष्ण ने बड़ी सावधानी के साथ विचार करते हुये कहा कि आश्चर्य है, बहुत समय बाद कुमार नेमिनाथ का चित्त राग से युक्त हुआ है अब यह नवयौवन से सम्पन्न हुये हैं । अतः विवाह के योग्य हैं - इनका विवाह करना चहिए सो ठीक ही है। ऐसा कौन सुकर्मा प्राणी है जिसे दुष्ट काम के द्वारा बाधा नहीं होती हो - ऐसा कहकर उन्होंने विचार किया उग्रवंशरूपी समुद्र को बढ़ाने के लिये चन्द्रमा के समान राजा उग्रसेन की जयावती रानी से उत्पन्न हुई राजीमती नाम की पुत्री है, जो सर्वाङ्ग सुन्दर है । विचार के बाद ही उन्होंने राजा उग्रसेन के घर स्वयं जाकर बड़े आदर से "आपकी पुत्री तीन लोक के नाथ भगवान नेमिकुमार की प्रिया हो" इन शब्दों में उस माननीय कन्या की याचना की । इसके उत्तर में राजा उग्रसेन ने कहा कि - हे देव! तीन खण्ड में उत्पन्न हुये रत्नों के आप ही स्वामी हैं अतः यह कार्य आपको ही करना है - आप ही इसके नाथ हैं, हम लोग कौन होते हैं? इस प्रकार उग्रसेन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण महाराज बहुत ही हर्षित हुये ।

तदनन्तर उन्होंने किसी शुभ दिन में वह विवाह का उत्सव कराना प्रारम्भ किया और सबसे उत्तम तथा मनोहर पाँच प्रकार के रत्नों का विवाह मण्डप बनवाया । उसके बीच में एक वेदिका बनवाई गई थी जो नवीन मोतियों की सुन्दर रंगोली से सुशोभित थी, मंगलमय सुगन्धित फूलों के उपहार तथा वृष्टि से मनोहर थी । उस पर सुन्दर नवीन वस्त्र ताना गया था और उसके बीच में सुवर्ण की चौकी रखी हुई थी । उसी चौकी पर नेमिकुमार ने वधु राजीमती के साथ गीले चावलों पर बैठने का नेग (दस्तूर) किया । दूसरे दिन वर के हाथ में जलधारा देने का समय था । उस दिन मायाचारियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण का अभिप्राय लोभ कषाय के तीव्र उदय से कुत्सित हो गया । उन्हें इस बात की आशंका हुई कि कहीं इन्द्रों के द्वारा पूजनीय भगवान नेमिनाथ हमारा राज्य न ले लें । उसी क्षण उन्हें विचार आया कि वे "नेमिकुमार वैराग्य का कुछ कारण पाकर भोगों से विरक्त हो जावेंगे" ऐसा विचार कर वे वैराग्य का कारण जुटाने का प्रयत्न करने लगे । उनकी समझ में एक विचार आया । उन्होंने बड़े-बड़े शिकारियों से पकड़वाकर अनेक मृगों का समूह बुलाया और उसे एक स्थान पर इकट्ठा कर उसके चारों ओर बाड़ी लगवा दी तथा वहाँ जो रक्षक नियुक्त किये गये उनसे कह दिया कि यदि भगवान् नेमिनाथ दिशाओं का अवलोकन करने के लिये आवें और इन मृगों के विषय में पूछें तो उनसे आप लोग साफ-साफ कह दें कि आप के विवाह में मारने के लिए चक्रवर्ती ने यह मृगों का समूह बुलाया है ।

तदनन्तर जो नाना प्रकार के आभूषणों से देदीप्यमान हैं, जिनके सिर के बाल सजे हुए हैं, जो लाल कमलों की माला से अलंकृत हैं, घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूलि के द्वारा जिन्होंने दिशाओं के अग्रभाग लिप्त कर दिये हैं और जो समान अवस्था वाले अतिशय प्रसन्न बड़े-बड़े

मंडलेश्वर राजाओं के पुत्रों से घिरे हुये हैं, ऐसे नैनाभिराम भगवान नेमिकुमार भी चित्रा नाम की पालकी पर आरूढ़ होकर दिशाओं का अवलोकन करने के लिये निकले । वहाँ उन्होंने घोर करुण स्वर से चिल्ला-चिल्ला कर इधर-उधर दौड़ते प्यासे दीन दृष्टि से युक्त तथा भय से व्याकुल हुये मृगों को देख दयावश वहाँ के रक्षकों से पूछा कि यह पशुओं का बहुत भारी समूह यहाँ एक जगह किसलिये रोका गया है ! उत्तर में रक्षकों ने कहा कि हे देव ! आपके विवाहोत्सव में भोजन के लिए महाराज श्रीकृष्ण ने इन्हें बुलाया है । यह सुनते ही भगवान् नेमिनाथ विचार करने लगे कि ये पशु जंगल में रहते हैं । तृण खाते हैं और कभी किसी का कुछ अपराध नहीं करते हैं फिर भी लोग इन्हें अपने भोग के लिये पीड़ा पहुँचाते हैं, ऐसे लोगों को धिक्कार है अथवा जिनके चित्त में गाढ़ मिथ्यात्व भरा हुआ है ऐसे मूर्ख तथा दयाहीन प्राणी अपने नश्वर प्राणों के द्वारा जीवित रहने के लिये क्या नहीं करते हैं, देखो ! कृष्ण ने मुझ पर अपने राज्य ग्रहण की आशंका कर ऐसा कपट किया है । ऐसा विचार कर वे विरक्त हुये और लौटकर अपने घर आ गये ।

वैराग्य के प्रकट होने से उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उन्हें समझाया, अपने पूर्व भवों का स्मरण कर वे भय से काँप उठें, उसी समय इन्द्रों ने आकर दीक्षा कल्याणक का उत्सव किया । तदनन्तर देवकुरु नामक पालकी पर सवार होकर वे देवों के साथ चल पड़े । सहस्राम वन में जाकर वेला का नियम लिया और श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन सायंकाल के समय कुमार काल के ३०० वर्ष बीत जाने पर एक हजार राजाओं के साथ-साथ संयम धारण किया उसी समय उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान हो गया और केवल ज्ञान भी निकट काल में हो जावेगा । जिस प्रकार सन्ध्या सूर्य के पीछे-पीछे अस्ताचल पर चली जाती है उसी प्रकार राजीमती भी तपश्चरण के लिये उनके पीछे-पीछे चली गयी । सो ठीक ही है क्योंकि शरीर की तो बात दूर रही वचन मात्र से भी दी हुई कुलस्त्रियों का यही न्याय है । अन्य मनुष्य तो अपने दुःख से भी विरक्त नहीं सुने जाते पर जो सज्जन पुरुष होते हैं वें दूसरो के दुःख से ही महाविभूति का परित्याग कर देते हैं । बलदेव तथा नारायण आदि मुख्य राजा और इन्द्र आदि देव सब अनेक स्तवनों के द्वारा उन भगवान की स्तुति कर अपने-अपने स्थान पर चले गये । पारणा के दिन उन भगवान ने द्वारावती नगरी में प्रवेश किया । वहाँ सुवर्ण के समान कान्ति वाले तथा श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न राजा वरदत्त ने पडगाहन? आदि नवधा भक्ति कर उन्हें मुनियों के ग्रहण करने योग्य शुद्ध प्रासुक आहार दिया तथा पंचाश्चर्य प्राप्त किये। उसके घर देवों के हाथ से छोड़ी हुई साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वर्षा हुई, फूल बरसे । मन्दता आदि तीन गुणों से युक्त वायु चलने लगी । मेघों के भीतर छिपे देवों के द्वारा ताडितदुन्दुभियों का सुन्दर शब्द होने लगा और 'आपने बहुत अच्छा दान दिया' यह घोषणा होने लगी । इस प्रकार तपस्या करते हुये जब उनकी छद्मस्थ अवस्था के ५६ दिन व्यतीत हो गये तब एक

दिन वे रैवतक (गिरणार) पर्वत पर बेला का नियम लेकर किसी बड़े भारी बाँस के वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये। निदान आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रातःकाल के समय उन्हें समस्त पदार्थों के विषय करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों ने केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव कर उनकी पूजा की।

हरिवंश पुराण में नेमिनाथचरित :

अतिमुक्तक मुनि के मुख से यह बात सुनकर कि हमारे वंश में २२ वें तीर्थङ्कर उत्पन्न होंगे, वसुदेव बहुत प्रसन्न हुये। उनकी प्रार्थना सुनकर अतिमुक्तक मुनि ने नेमिनाथ के पूर्वभवों का सविस्तार वर्णन किया।

दशार्हों में मुख्य सौर्यपुर निवासी राजा समुद्रविजय की पत्नी के गर्भ में भगवान के आने से छः माह पहले से ही लेकर जन्मपर्यन्त पन्द्रह मास तक इन्द्र की आज्ञा से देवों ने धन की वर्षा जारी रखी। वह धन की वर्षा प्रतिदिन तीन बार साढ़े तीन करोड़ की संख्या का प्रमाण लिये हुए पड़ती थी।

उसी समय पूर्वादि दिशाओं के अग्रभाग से आई हुई दिक्कुमारी देवियों ने परिचर्या द्वारा माता शिवादेवी की सेवा प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार सेवा किये जाते हुये एक दिन रात्रि में सोते समय रानी ने उत्तम सोलह प्रकार के स्वप्न देखे। प्रथम स्वप्न में निरन्तर मद जल बहता हुआ इन्द्र का ऐरावत हाथी देखा, जिसके सब ओर से निरन्तर मद रूपी झरना बह रहा था और जिसने अपनी ध्वनि से दिशाओं को व्याप्त कर रखा था। दूसरे स्वप्न में अम्बिका का महावृषभ देखा जिसके सुन्दर सींग, कान्दालें ऊँची, खुर पृथ्वी को खोद रहे थे। सास्ना लम्बी, आँखे दीर्घ, रंग सफेद, मेघ के समान गर्जना करने वाला नेत्रों का प्रिय था। तीसरे स्वप्न में पर्वतों को लाँघने वाला सिंह, चन्द्रमा की कला अथवा अंकुश के समान दहाड़ो को धारण करने वाला शरीर का अत्यन्त लम्बा, दश दिशाओं के अन्त में विश्राम करने वाला और जो घुमड़ते हुए मेघ के समान सफेद था, चौथे स्वप्न में वह लक्ष्मी देखी जो किसी हाथी के समान स्थूल 'स्तनों' से युक्त थी। शुभ हाथी घडों में रखे हुए जल से जिसका अभिषेक कर रहे थे। जो अपने हाथ में कमल लिये हुए थी और खिले हुए कमलों के आसन पर बैठी थी। पाँचवें स्वप्न में जागती हुई के समान शिवादेवी ने आकाश में लटकती हुई दो ऐसी उत्तम मालायें देखी जिन्होंने अपनी पराग से भ्रमरों के समूह को लाल कर दिया था। छठे स्वप्न में बादलों रहित आकाश के बीच में ऐसा चन्द्रमा देखा जो अपनी तीक्ष्ण किरणों से रात्रि के सघन अन्धकार को नष्ट करके उदित हुआ था। सातवें स्वप्न में ऐसा सूर्य देखा जिसका मुख सम्पूर्ण दिन दर्शनीय था। सन्ध्या की लाली रूपी सिन्दूर की पराग से पिंजर वर्ण था आठवें स्वप्न में उसने मत्स्यों का वह जोड़ा देखा, जो बिजली के समान चंचल शरीर का धारक मत्स्मी रूपी स्त्री के चंचल नेत्रों के समान, पारस्परिक स्नेह से भरा हुआ ईर्ष्या रहित

क्रीड़ा कर रहा था। नौवें स्वप्न में कमल लोचन शिवादेवी ने अत्यधिक सुगन्धित जल से भरे हुये कलश देखे जिनके मुख पर कमल रखे थे जो उत्तम स्वर्ण से निर्मित थे। उसके बाद दसवें स्वप्न में बड़ा सरोवर देखा, जो शुभ जल से भरा हुआ कमलों से सुशोभित उत्तम राजहंस के मुक्त मन को हरण करने वाला था। ग्यारहवें स्वप्न में एक ऐसा महासागर देखा जो उठती हुई ऊँची लहरों से भंगुर मूगों, मोती, मणि और पुष्पों से सुशोभित था। बारहवें स्वप्न में लक्ष्मी का आसनभूत एक ऐसा सिंहासन देखा जिसको नखों के अग्रभाग एवं दाढों से मजबूत दृष्टि से देदीप्यमान और चमकती हुई सटाओं से युक्त सिंह धारण किये हुए थे। तेरहवें स्वप्न में उसने आकाश में एक ऐसा विमान देखा जो भिन्न-भिन्न प्रकार के बेलबूटों से युक्त ध्वजाओं के अग्रभाग से चंचल और लटकती हुई मोतियों की मालाओं से उज्ज्वल था। चौदहवें स्वप्न में उसने नागेन्द्र का ऐसा विशाल देदीप्यमान भवन देखा जो पाणाओं पर स्थित मणियों के प्रकाश पृथ्वी के अन्धकार को नष्ट करने वाली कन्याओं के मधुर संगीत से व्याप्त था। पन्द्रहवें स्वप्न में शिवादेवी ने उत्तम रत्नों की एक ऐसी राशि देखी जो पद्मरागमणि तथा चमकते हीरों के सहित, उत्तम मणियों की बड़ी बड़ी शिलाओं से व्याप्त, इन्द्र धनुष से दिशाओं के अग्रभाग को रोकने वाली तथा आकाश का स्पर्श कर रही थी। सोलहवें और अन्तिम स्वप्न में शिवादेवी ने ऐसी अग्नि देखी जो शिखाओं से भयंकर, रात्रि के समय अपनी उज्ज्वल किरणों से दिशाओं के अग्रभाग को प्रकाशित करने वाली थी। इस प्रकार स्वप्नों के बाद कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन देवों के आसनों को कम्पित करते हुए भगवान् ने स्वर्ग से च्युत हो सफेद हाथियों का रूप धारणकर माता के मुख में प्रवेश किया।

राजा समुद्रविजय ने स्वप्नों का फल बताते हुये कहा कि हे सुन्दर जंघाओं वाली प्रिये! यहाँ तेरे स्वप्नों का फल क्या कहा जाय ? क्योंकि तू तीर्थङ्कर की माता है, तुम्हारे तीर्थङ्कर पुत्र उत्पन्न होगा। इस प्रकार राजा ने क्रमशः उन देखे गये स्वप्नों के फल को रानी को समझाया।

तदनन्तर इन्द्र की आज्ञा और अपनी भक्ति के भार से कुबेर ने स्वयं आकर भगवान् के माता-पिता का अच्छी तरह से अभिषेक किया तथा उत्तमोत्तम आभूषणों से उसकी पूजा की। जिस प्रकार आकाश की लक्ष्मी अपने निर्मल उदर में चन्द्रमा को धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् की माता शिवादेवी ने प्रसिद्ध दिक्कुमारियों-देवियों के द्वारा पहले से ही शुद्ध किये हुए अपने निर्मल उदर में जगत् के कल्याण के लिये सर्वप्रथम उस गर्भ को धारण किया, जो उठती हुई प्रभा से युक्त था। शिवादेवी का गूढ गर्भ वृद्धि को प्राप्त हुआ। वैशाख शुक्ल त्रयोदशी की शुभ तिथि में रात्रि के समय जब चन्द्रमा का चित्रा नक्षत्र के साथ संयोग था, समस्त शुभ ग्रहों का समूह जब यथायोग्य उत्तम स्थानों पर स्थित था, तब शिवादेवी ने समस्त जगत् को जीतने वाले अतिशय सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया, जो तीन ज्ञान रूपी उज्ज्वल नेत्रों

के धारक थे तथा एक हजार आठ लक्षणों से युक्त नीलकमल के समान सुन्दर शरीर को धारण कर रहे थे । जिन बालक ने अपनी कान्ति के द्वारा प्रसूतिका गृह के भीतर व्याप्त मणिमय दीपकों के कान्ति समूह को कईं गुणा अधिक कर दिया था । तीनों लोकों में हर्ष छा गया जन्म महोत्सव मनाने के लिये देवों की सात प्रकार की सेना सौर्यपुर आई । उस समय समस्त विद्युत कुमारियों में प्रधान रुचकप्रभा, रुचका, रुचकाभा और रुचकोज्ज्वला तथा दिक्कुमारियों में प्रधान विजय आदि चार देवियाँ विधिपूर्वक भगवान् का जातकर्म कर रही थी । भगवान के जन्मोत्सव के पूर्व ही कुबेर ने सौर्यपुर की अद्‌भुत शोभा बना रखी थी ।

तदनन्तर सज्जनों का सखा और मर्यादा को जानने वाला इन्द्र नगर में प्रवेश कर शिवादेवी के महल के समीप खड़ा हो गया और वहीं से उसने आदर से युक्त पवित्र एवं चंचलता रहित इन्द्राणी को नवजात बालक को लाने का आदेश दिया । पति की आज्ञानुसार इन्द्राणी ने प्रसूतिका गृह में प्रवेश किया । उस समय आदर से भरी इन्द्राणी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी । वहाँ उसने यत्नपूर्वक जिन माता को प्रणाम कर मायामयी निद्रा में सुला दिया तथा देवमाया से एक दूसरा बालक बनाकर उनके समीप लिटा दिया । तदनन्तर इन्द्राणी ने कोमल हाथों से जिन बालक को उठाकर अपने स्वामी इन्द्र के लिये दे दिया और देवों के राजा इन्द्र ने - सिर झुकाकर जिन बालक को प्रणाम कर दोनों हाथों मे उठा ऐरावत हाथी पर विराजमान कर सुमेरु पर्वत की ओर ले चला । इसी प्रसंग में ऐरावत हाथी का वर्णन किया गया है । बड़ा ही हर्षमय वातावरण है चारों ओर नृत्य, नाद, भैरियाँ, नगाड़े सुनाई दे रहे हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की नृत्य कलायें हो रही हैं तथा नाना प्रकार की सुगन्ध से युक्त नाना प्रकार के पटवास, धूपों के समूह, उत्तमोत्तम पुष्पों के समूह आकाश तल को व्याप्त कर रहे थे । उस समय सुन्दर वायु अपनी उत्कृष्ट सुगन्ध से युक्त सभी दिशाओं के मुख को अत्यन्त सुगन्धित कर रही थी । इस प्रकार हर्षमय वातावरण में जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक प्रारम्भ हुआ । इसके बाद इन्द्र द्वारा भगवान् का स्तवन किया गया । देवों द्वारा शंखादि वाद्यन्त्रों का वादन और भगवान् की परिचर्या का वर्णन किया गया है । कथा के मध्य में यादवों के नष्ट होने का मिथ्या समाचार, आगे क्रमशः समुद्रविजय आदि के द्वारा समुद्र की शोभा का अवलोकन है । कृष्ण ने अष्टम भक्तिकर पंचपरमेष्ठी का ध्यान किया । इन्द्र की आज्ञा से गौतम देव ने समुद्र को शीघ्र ही दूर हटा दिया और उस स्थल पर कुबेर ने द्वारिका नगरी की रचना कर दी । श्रीकृष्ण को नारायण और बलदेव को बलभद्र स्थापित कर कुबेर अपने स्थान की ओर चला गया । आगे द्वारिकावती का सुन्दर वर्णन हुआ है ।

मध्य में नारायण वर्णन, सत्यभामा गर्भ वर्णन, कृष्ण वर्णन, रुकमणी विलाप, पाँडवों की उत्पत्ति, कौरवों के साथ युद्ध, कौरव-पाण्डव वर्णन आदि हैं ।

अथानन्तर एक दिन कुबेर के द्वारा भेजे हुए वस्त्र, आभूषण, माला और विलेपन से

सुशोभित प्रसिद्ध राजाओं से घिरे एवं मदोन्मत हाथी के समान सुन्दर गति से युक्त युवा नेमिकुमार बलदेव तथा नारायण आदि यादवों से भरी हुई कुसुमविचित्रा नामक सभा में गये। राजाओं ने अपने-अपने आसन छोड़ सम्मुख जाकर उन्हें नमस्कार किया । श्रीकृष्ण ने भी आगे जाकर उनकी अगवानी की । तदनन्तर श्रीकृष्ण के साथ में उनके आसन को अलंकृत करने वाले सभी के बीच सभ्य जनों की कथारूप अमृत का पान करने वाले एवं अत्यधिक शूरवीरता और शारीरिक विभूति से युक्त अनेक राजा जिनकी उपासना कर रहे थे तथा अपनी कान्ति से जिन्होंने सबको आच्छादित कर दिया था, ऐसे नेमिकुमार कृष्ण के साथ क्षणभर क्रीड़ा करते रहे । तदनन्तर बलवानों की गणना छिड़ने पर कोई अर्जुन की, कोई युद्ध में स्थित रहने वाले युधिष्ठिर की, किसी ने पराक्रमी भीम आदि की प्रशंसा की, किसी ने कहा-बलदेव सबसे अधिक बलवान् है, किसी ने गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले श्रीकृष्ण को सबसे अधिक बलवान् कहा । इस प्रकार कृष्ण की सभा में आगत राजाओं की तरह-तरह की वाणी सुनकर लीलापूर्ण दृष्टि से भगवान् नेमिनाथ की ओर देखकर बलदेव ने कहा कि तीनों जगत् में इनके समान दूसरा बलवान् नहीं है । ये अपनी हथेली से पृथ्वी तल को उठा सकते है । समुद्र को शीघ्र ही दिशाओं में फेंक सकते हैं और गिरिराज को अनायास ही कम्पायमान कर सकते हैं । यथार्थ रूप में ये जिनेन्द्र हैं । इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है । इस प्रकार बलदेव के वचन सुन श्रीकृष्ण ने पहले तो भगवान् की ओर देखा और तदनन्तर मुस्काराते हुये कहा कि हे भगवन्! यदि आपके शरीर का ऐसा उत्कृष्ट बल है तो बाहुबल में उनकी परीक्षा क्यों न कर ली जाये । भगवान् ने कुछ खास ढंग से मुख ऊपर उठाते हुए श्री कृष्ण से कहा कि मुझे इस विषय में मल्लयुद्ध की क्या आवश्यकता है । हे अग्रजो, यदि आपको मेरी भुजाओं का बल जानना ही है तो सहसा इस आसन से मेरे इस पैर को विचलित कर दीजिए । श्रीकृष्ण उसी समय कमर कसकर भुजबल से जिनेन्द्र भगवान् को जीतने की इच्छा से उठ खड़े हुए परन्तु पैर का चलाना तो दूर रहा, नखरूपी चन्द्रमा को धारण करने वाली पैर की एक अंगुली तक को चलाने में भी समर्थ नहीं हो सके । उनका समस्त शरीर पसीन से व्याप्त हो गया और मुख से लम्बी-लम्बी साँसे निकलने लगी । अन्त में उन्होंने अहंकार छोड़कर स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि हे देव ! आपका बल लोकोत्तर एवं आश्चर्यकारी है । उसी समय इन्द्र का आसन कम्पायमान हो गया और वह तत्काल ही देवों के साथ आकर भगवान् की स्तुति, पूजा तथा नमस्कार कर अपने स्थान पर चला गया । इस प्रकार अपने बल पर शंकित श्रीकृष्ण नेमिनाथ के बल से परास्त हो अपने महल को चले गये ।

श्रीकृष्ण के मन में यह शंका घर कर गयी कि नेमिनाथ के बल का कोई पार नहीं है अतः इनके रहते हुये हमारा राज्य शासन स्थिर रहेगा या नहीं । उस समय से श्रीकृष्ण उत्तम अमूल्य गुणों से युक्त जिनेन्द्र रूपी उन्नत चन्द्रमा की बड़े आदर से सेवा-सुश्रषा करते हुये

प्रेम प्रदर्शन पूर्वक उनकी पूजा करने लगे । इसी बीच कथाक्रम के मध्य में अन्य प्रसंग आ जाते हैं । इसके बाद यादवों की क्रीड़ा का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढगं से प्रदर्शित किया गया है ।

मनुष्यों की मनोवृति को हरण करने वाली कृष्ण की स्त्रियाँ बसन्त ऋतु के उस चैत्र बैशाख मास में पति की आज्ञा पाकर वृक्षों और लताओं से रमणीय वनों में नेमिनाथ के साथ क्रीड़ा करने लगी । जल क्रीड़ा का संयोग-श्रृंगारिक वर्णन बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है । क्रमशः बसन्त वर्णन एवं ग्रीष्म वर्णन हुआ है ।

तदनन्तर परिजनों के द्वारा लाये हुये वस्त्राभूषणों से विभूषित स्त्रियों ने सन्तुष्ट होकर वस्त्रों से भगवान् का शरीर पोंछा और उन्हें वस्त्र पहनाये ।

तदनन्तर जो तत्काल गीला वस्त्र छोड़ा था उसे निचोड़ने के लिए उन्होंने विलासपूर्वक मुद्रा में कटाक्ष चलाते हुये कृष्ण की प्रेम-पात्रा एवं अनुपम सुन्दरी जाम्बवती को प्रेरित किया। भगवान् का अभिप्राय समझ शीघ्रता से युक्त नाना प्रकार के वचन बनाने में पटु जाम्बवती बनावटी क्रोध से विकारयुक्त कटाक्ष चलाने लगी । उसका ओष्ठ कम्पित होने लगा और हाव-भाव पूर्वक भौंहे चलाकर नेत्रों से भगवान् की ओर देखकर कहने लगी । जिनके शरीर और मुकुट मणियों की प्रभा करोड़ों सर्पों के मणियों के कान्तिमण्डल से दूनी हो जाती है, जो महानागशैय्या पर आरूढ़ हो जगत् में प्रचण्ड आवाज से आकाश को व्याप्त करने वाला शंख बजाते हैं, जो जल के समांन नीली आभा को धारण करने वाले हैं, समस्त राजाओं के स्वामी हैं तथा जिनकी अनेक सुन्दर स्त्रियाँ हैं वें मेरे स्वामी हैं, वे भी मुझे ऐसी आज्ञा नहीं देते फिर आप कोई विचित्र पुरुष जान पड़ते हैं जो मेरे लिये भी गीला वस्त्र निचोड़ने का आदेश दे रहे हैं ।

जाम्बवती के वचन सुन भगवान् नेमिनाथ ने हँसते हुए कहा कि तूने राजा कृष्ण के जिस पौरुष का वर्णन किया है, संसार में वह कितना कठिन है । इस प्रकार कहकर वे वेग से नगर की ओर गये और शीघ्रता से महल में घुस गये । वे लहराते हुये सर्पों की फणाओं से सुशोभित श्रीकृष्ण की विशाल नागशैय्या पर चढ़ गये । उनके सारंग धनुष को दूना कर प्रत्यंचा से युक्त कर दिया और उनके पांचजन्य शंख को जोर से फूँका । शंख के उस भयंकर शब्द से दिशाओं के मुख, समस्त आकाश, पृथ्वी आदि सभी चीजें व्याप्त हो गयी । अत्यधिक मद को धारण करने वाले हाथियों ने क्षुभित होकर जहाँ-तहाँ अपने बन्धन के खम्भे तोड़ दिये। घोड़े बन्धन तुड़ाकर हिनहिनाते हुये नगर में इधर-उधर दौड़ने लगे । महलों के शिखर और किनारे टूट-टूट कर गिरने लगे । श्रीकृष्ण ने अपनी तलवार खींच ली । समस्त सभा क्षुभित हो उठी और नगरवासी जन प्रलयकाल के आने की शंका से अत्यंत आकुलित होते हुये, भय को प्राप्त हो गये । जब कृष्ण को विदित हुआ कि यह तो हमारे ही शंख का शब्द है

तब वे शीघ्र ही आयुधशाला में गये और नेमिकुमार को देदीप्यमान नागशैय्या पर अनादरपूर्वक खड़ा देख अन्य राजाओं के साथ आश्चर्य करने लगे । ज्यों ही कृष्ण को यह सब मालूम हुआ कि कुमार ने यह कार्य जाम्बवती के कठोर वचनों से कुपित होकर किया है त्यों ही बन्धुजनों के साथ उन्होंने अत्यधिक संतोष का अनुभव किया और वह क्रोध विकृति भी संतोष का कारण बन गई । अपने स्वजनों के साथ कृष्ण ने युवा नेमिकुमार का आलिगंन कर सत्कार किया और उसके बाद अपने घर गये । घर जाने पर जब उन्हें विदित हुआ कि अपनी स्त्री के निमित्त से ही उन्हें कामोद्दीपन हुआ है तो वे बहुत हर्षित हुए ।

श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार के लिये विधिपूर्वक भोजवंशियों की कुमारी राजीमती की याचना की । उसके पाणिग्रहण संस्कार के लिये बन्धुजनों के पास खबर भेजी और स्त्रियों सहित समस्त राजाओं को बड़े सम्मान के साथ बुलाकर अपने निकट किया । इसके बाद वर्षा ऋतु में एक दिन युवा नेमिकुमार ध्वजापताकाओं से सुशोभित सूर्य के रथ के समान देदीप्यमान एवं चार घोडों से जुते रथ पर सवार हो अनेक राजकुमारों के साथ वनभूमि की ओर चल दिये । प्रसन्नता से युक्त राजीमती तथा नगर की स्त्रियों ने अपने प्यासे नेत्रों से जिनके शरीररूपी जल का पान किया था तथा जिसका दर्शन मन को हरण कर रहा था ऐसे नेमिनाथ भगवान उन राजकुमारों के साथ विशाल राजमार्ग से दर्शकों पर दया करते हुये के समान धीरे-धीरे गमन कर रहे थे। उपवन में पहुँचकर युवा नेमिकुमार शीघ्र ही वन की लक्ष्मी को देखने लगे वन के नाना वृक्षों की पंक्तियाँ अपनी शाखा रूप भुजायें फैलाकर नम्रीभूत हो उन पर फूलों की अंञ्जलियाँ बिखेरने लगी । उसी समय उन्होंने वन में एक जगह भय से जिनके मन और शरीर काँप रहे थे जो अत्यन्त विह्वल थे, पुरुष जिन्हें रोके हुये थे और जो नाना जातियों से युक्त थे ऐसे त्रणभक्षी पशुओं को देखा । यद्यपि भगवान अवधिज्ञान से उन पशुओं को एकत्रित करने का कारण जानते थे, तथापि उन्होंने शीघ्र ही रथ रोककर अपने शब्द से मेघध्वनि को जीतते हुए सारथि से पूछा-कि ये नाना जाति के पशु यहाँ किसलिये रोके गये हैं । सारथि ने नम्रीभूत हाथ जोड़कर कहा-कि हे विभो ! आपके विवाहोत्सव में जो माँसभोजी राजा आये हैं, उनके लिये नाना प्रकार का माँस तैयार करने के लिये यहाँ पशुओं को बाँधा गया है । इस प्रकार सारथि के वचन सुनकर ज्यों ही भगवान ने मृगों के समूह की ओर देखा, त्यों ही उनका हृदय प्राणी-दया से सराबोर हो गया और कुमार को वैराग्य आ गया, रस में भंग हो गया ।

इसके बाद नेमिनाथ भगवान का तपश्चर्या के लिये वन में प्रस्थान करना तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति होना आदि वर्णित है । बाद में क्रमपूर्वक भगवान के समवशरण का वर्णन है ।

वरदत्त के पूछने पर भगवान की दिव्य ध्वनि में जीवाजीवादि तत्त्वों का विस्तृत विवेचन हुआ है । अन्त में भगवान के विहार का अनुपम वर्णन किया गया है । श्रीकृष्ण ने उनसे तिरसठ शलाका पुरुषों का विवरण पूछा तब भगवान ने उन सबका विस्तार से वर्णन किया है ।

अध्याय-दो (ख)

सर्गानुसार कथानक

प्रथम सर्ग :

सर्वप्रथम चौबीस तीर्थङ्करों क्रमशः ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदंत, शीतलदेव, श्रेयांसनाथ, श्रीवासुपूज्य, निमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरतीर्थङ्कर, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, महावीर भगवान् को उनके सुलक्षणों से युक्त करते हुए नमस्कार करके सरस्वती नमन, सज्जन प्रशंसा, खल निन्दा करते हुये, मूल कथा प्रारम्भ की गई है ।

देवताओं के निवास स्थान वाला प्रसिद्ध सुराष्ट्र नामक अत्यन्त रमणीय देश धनधान्य से परिपूर्ण था, जहाँ पर कृषि उत्तम तिलों वाली, स्त्री सुन्दर केशों वाली तथा स्वभाव की मधुरता से युक्त, सर्वत्र सुन्दर तालाब, सुन्दर श्वेत अर्जुन वृक्ष, चारों दिशाओं में फैली गायों के समूह से युक्त तथा सरस्वती नदी के सामीप्य को प्राप्त तथा गोपवसतिकाओं से युक्त पृथ्वी को सब ओर से धारण करते थे ।

वहाँ पर तरह-तरह के प्रासादों वाली रमणीय द्वारावती (द्वारिका) नाम की प्रसिद्ध नगरी थी । वह नगरी इतनी सुन्दर थी कि जल का स्वामी वरुण भी उसके समान ही अपनी राजधानी बनाने की कल्पना करता था ।

जिसमें यदुवंश में वन्दनीय, तिलक के समान "समुद्रविजय" नाम का राजा शासन करता था । सत्य प्रतिज्ञा वाले उस राजा के राज्य में अन्य राजाओं की तीन प्रकार की गतियाँ होती थी उसके चरणों की सेवा, युद्ध में मृत्यु अथवा गहन वन में निवास । इस प्रकार वह राजा अत्यन्त दानशील, शत्रुओं को उखाड फेंकने वाला तथा न्यायप्रिय था ।

राज्य की सुव्यवस्था के लिये महाराज समुद्रविजय ने अपने अनुज "वासुदेव" के पुत्र "श्री कृष्ण" को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया । जो कृष्ण बचपन में ही अनेकों विचित्रताओं से युक्त था । पूतना का रक्त पीना, चाणूरमल्ल को दलित करना, गोवर्धन पर्वत उठाना, केशि नामक राक्षस को मारना तथा जो अपनी माता यशोदा के आनन्द को बढ़ाने वाला था । इस प्रकार महाराज समुद्रविजय सब प्रकार के सुखों से युक्त होते हुये भी पुत्र के अभाव में अत्यधिक चिन्तित रहते थे, जिससे पुत्र प्राप्ति के हेतु उन्होंने अनेक व्रतों का सम्पादन किया।

द्वितीय सर्ग :

इसके बाद एक बार राजा समुद्रविजय के सभामण्डप में अनेक दिशाओं से आये हुये राजाओं के द्वारा पूजा किये जाते हुए उस राजा ने आकाश मार्ग से पृथ्वी पर उतरती हुई देवांगनाओं को अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक देखा । बादलरहित आकाश में क्या यह बिजलियाँ हैं या प्रकट कान्ति वाले तारे हैं । इस प्रकार वे समूह बनाकर मनुष्यों के द्वारा बड़े ही आश्चर्य से देखी गयी ।

अनेकों रमणीयताओं से युक्त, ऐश्वर्यशालिनी तथा अनेकों आश्चर्यों को उत्पन्न करती हुई वे अप्सरायें राजा की सभा में उतरी तथा राजा के समीप पहुँच कर उज्ज्वल दाँतों की कान्ति रूपी वस्त्र से ढके हुये अपने क्षत अधरों से तथा दाहिने हाथ उठाये हुये "जय" शब्द किया ।

अनुपम रूप-सम्पदा वाली उन अप्सराओं को राजा के सेवकों द्वारा उत्तम आसन प्रदान किये गये तथा इसके बाद राजा ने गंभीर स्वर में उन अप्सराओं से उनके पृथ्वीतल पर आने के विषय में पूछा ।

राजा के इस प्रकार पूछे जाने पर अप्सराओं में प्रमुख लक्ष्मी ने कहा कि हे राजन् ! नमि जिनेन्द्र तीर्थंकर से ५ लाख ६ माह बीत गये हैं । अतः मुनियों ने कहा है कि दूसरे जिनेन्द्र उत्पन्न होंगे ।

अतः मंगलों को धारण करने वाले आपके पवित्र वंश में संसार के तीनों गुणों वाले धर्म मंगल को धारण करने वाले प्रभु नेमि पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे ।

तदनन्तर इन्द्र ने याद दिलाने के लिये भेजी गयी हमें महारानी शिवादेवी की सेवा करने के लिये आज्ञा दी है । ऐसा राजा से निवेदन किया । महारानी शिवादेवी के गर्भ में तीर्थङ्कर का जीव आने वाला है । अतः वे तीर्थङ्कर की माता की सभी प्रकार से सेवा करेंगी । देवांगनायें महारानी की प्रसन्नता के लिये संगीत एवं अभिनय प्रस्तुत करने लगी तथा नमस्कारपूर्वक अत्यन्त प्रसन्न महारानी शिवादेवी की सेवा करने लगी ।

तीनों लोकों की युवतियों में अनुपम गुणों से युक्त उस शिवादेवी की, सुन्दर रीति से देवागंनाओं के द्वारा आदर पूर्वक सेवा की गई ।

इसके बाद एक दिन देवागंनाओं के द्वारा जैन धर्म की अद्भुत कथा कहे जाने पर सुखपूर्वक सोती हुई उस पतिव्रता महारानी ने रात्रि के अन्तिम समय में इन सोलह सुन्दर आश्चर्यजनक स्वप्नों को देखा । जो क्रमशः इस प्रकार हैं - मद जल युक्त इन्द्र का ऐरावत हाथी, वृषभराज, पर्वतों को लाँघनेवाला विचित्र सिंह कान्तिमान सुन्दर आभूषणों वाली लक्ष्मी, फूलों की दिव्य दो मालायें, बादलोंरहित आकाश में सुन्दर चन्द्रमा जो अन्धकार को नष्ट कर रहा था । पराग पर भौरे से युक्त नवीन पुष्प, दर्शनीय सूर्यमण्डल को आकाश में,

मत्स्ययुगल, सोने के कलश-युगल, नील कमलों से शोभित जलाशय, ऊँची-ऊँची तरगों वाला महासागर जो मूँगे, मोती, मणियों, से सजा हुआ था। मूंगे से युक्त नीलवर्ण की मणि वाला लक्ष्मी का सिंहासन, विचित्र विमान जो बेलबूटों, ध्वजाओं, एवं लटकती हुई चंचल मणियों से उज्ज्वल था तथा नागराज का ऐसा भवन देखा जो चारों ओर मणियों के प्रकाश से अन्धकार को नष्ट कर रहा था, उत्तम रत्नों की ऐसी राशि देखी जो पद्म रागमणि तथा चमकते हुए हीरों वाली, मणियों से व्याप्त इन्द्रधनुष से आकाश को स्पर्श करने वाली थी, अन्तिम स्वप्न में शिखाओं से भयंकर, उज्ज्वल किरणों से दिशाओं को चमकाने वाली, धूमरहित जलती हुई विशुद्ध अग्नि को देखा।

तृतीय सर्ग :

खिलते हुए नेत्ररूपी कमलों की मुस्कराहट वाली स्वप्नों के अतिशय दर्शन से आश्चर्यचकित उस महारानी के समक्ष सार्थक वचनों से किसी सुन्दरी देवागंना ने प्रभात की सूचना देते हुए इस प्रकार कहा हे देवी ! विशेष राग पाने के कारण तारागण रूपी पुष्पमाला के मन्द हो जाने से यह रात्रि आकाश शय्या को छोड़ रही है। चन्द्रमा चन्द्रबिम्ब रूपी बहती हुई प्रभात कालीन वायु से आहत होकर अस्त हो रहा है। चकोर की वाणी से मिश्रित अमृत नष्ट हो गया है तथा कैरव पुष्पों का जीवन नष्ट हो गया है। उड़ते हुए भ्रमर तोरण के समान प्रतीत हो रहे हैं। इस समय संसार में कौन धृष्ट चंचलता को प्राप्त नहीं कर लेता। सूर्य के हरित् वर्ण के घोड़े क्रोध के कारण अत्यन्त लाल कपोल पंक्ति की लीला को धारण कर रहे हैं। हे देवी! तुम्हारे जगाने के लिए इन देवांगनाओं के द्वारा चारों ओर गाये जाते हुए गीतों को सुनकर मदमस्त से होकर ये दीपक इस समय बारम्बार अपने सिरों को धुन रहे हैं और निश्चय ही ये भौंरे अपनी आवाज के बहाने किसी कुमुदनियों के प्रति अपराधी हुए किसी वशीकरण मन्त्र का उच्चारण कर रहे हैं। अब यह नवीन सूर्य किरणों से संसार को कुम-कुम द्वारा लीप (सजा) रहा है और अन्धकार रूपी कीचड़ में फँसी हुई पृथ्वी का पर्वत रूपी उन्नत श्रृंगों से उद्धार करते हुए सूर्यदेव ने हजारों किरणों को फैलाकर अपना सार्थक नाम प्राप्त किया है।

उन्नत स्तनों वाली गोप बालिकाएं जिनकी चंचल वेणी हिल रही है, दधिमन्थन द्वारा गम्भीर शब्द करती हुई गोरस (मक्खन) तैयार कर रही हैं और अरुण-काल सर्पमणि के समान लग रहा है। इस प्रकार प्रातःकालीन सुन्दर चित्रण को गाते हुए वे देवांगनायें कहने लगीं कि वे श्री जिनदेव तुम्हारा प्रातःकाल मंगलमय करें, जो अत्यन्त दीर्घतर तपस्या के द्वारा सिद्धि को प्राप्त की तरह हैं, जिनका स्मरण करके कलुषित दोष-विष से रहित हो जाते हैं। जिनके निर्मल शरद्कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर तीनों छत्र तीनों लोकों के स्वामित्व को प्रकट करते हैं। जो शोभायमान निर्मल तथा तेजस्वी आकृति वाले हैं। इस प्रकार भगवान के गुणों को

गाती हुई देवाङ्गनायें कहने लगी कि हे महारानी स्थिर पद से विजय प्राप्त करो, इस प्रकार कहे जाने पर रानी श्रृंगार मण्डप में गई और वहाँ तुरन्त शोभायमान निर्मल वस्त्रों को धारण करके प्रकाशमान मुखरूपी चन्द्रमा से जगायी गई कमलिनी रूपी सुनयनी शरद् ऋतु की तरह और शोभायमान हुई ।

महारानी शिवादेवी शय्या त्याग दन्तकान्ति के बहाने हर्ष प्रकट करती हुई श्रृंगार की लता के समान राजा के समीप आकर हर्ष प्रकट करती हुई उन अद्भुत स्वप्नों के फल पूछने लगी । इस प्रकार महाराज ने उन स्वप्नों को सुनकर कहा - हे देवी ! तुम्हें जगन्मान्य पुत्र प्राप्त होगा तथा सम्पूर्ण स्वप्नों का क्रमशः फल कहकर सुनाया ।

चतुर्थ सर्ग :

तीर्थङ्कर के गर्भ में आने से राजा के चित्त की शोभा बढ़ गई और शिवादेवी का सौन्दर्य और अधिक वृद्धि को प्राप्त हो गया । रत्नों के समूह से जड़ित निर्मल वस्त्र की पताका वत शुभ गर्भ से उस रानी ने राजा के उन्नत वंश को सुशोभित किया । विनीत देवताओं के सिर से गिरे हुये पारिजात पुष्पों की माला के पराग को पाकर शिवादेवी के चरण अत्यधिक उज्ज्वल हो गये । क्रमशः गर्भ लक्षण प्रकट करने के कारण महारानी ने सरकण्डे के समान पीले शरीर को धारण किया । दोनों स्तन अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त कर गर्भ से भारी शरीर वाली उस महारानी ने स्वयं भी खेद प्रकट किया । राजा के मन को आनन्दित करने वाली हथिनी की तरह गर्भ के भार से अत्यन्त मन्द-मन्द गति को धारण किया । इसके बाद श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन रानी ने पुत्र को जन्म दिया । समीप में मौजूद उस पुत्र के उत्पन्न होने से वह सुन्दरी शीघ्र ही उसी तरह सुशोभित हुई जैसे काजल के समान काले धब्बे से चन्द्रमा की कला शोभायमान होती है । देवताओं के देदीप्यमान महोत्सव वाले भगवान के उस जन्मदिन पर परागशून्यता को प्राप्त वायु भी मन्दता को प्राप्त हो गई । सिंह के बच्चों ने बिजली की गर्जना को धारण किया । सभी ऋतुयें एक ही समय में फूलों के भार वाले वृक्षों के ऊपर आरूढ़ हो गई । इस प्रकार मंगलमय कल्पवासियों के यहाँ घण्टा ध्वनि, ज्योतिषियों के यहाँ सिंहनाद, भवनवासियों के यहाँ शंख ध्वनि और व्यन्तरों के यहाँ दुन्दुभि ध्वनि होने से तीर्थङ्कर के जन्म की सूचना प्राप्त हुई । मंगलमय उसके जन्म से भवन में सात दीपक जलाये गये । इस प्रकार भगवान के जन्म होते ही चतुर्णिकाय के देव द्वारावती में पहुँच गये । इसके बाद जिनेन्द्र भगवान के चरण-युगल के दर्शन के लिये उत्कण्ठित देवताओं के समूह अपने प्रसिद्ध तीव्रवाहनों के द्वारा इन्द्रादि सहित तुरन्त ही उस नगरी में उपस्थित हो गये ।

पंचम सर्ग :

इसके बाद इन्द्राणी पवित्र प्रसूति गृह में प्रवेश कर माता शिवादेवी के पास दूसरे मायामयी बालक को सुलाकर त्रिलोकीनाथ भगवान को नमस्कार कर दोनों हाथों से ग्रहण कर

ले आयी और इंद्र को सौंप दिया । इन्द्र की लाल हथेली पर काजलवत्, अशोक की लता पर पल्लव की तरह, वह बालक अत्यधिक सुशोभित हुआ । दिन-रात स्तुतियों से युक्त इन्द्र उसे लेकर ऐरावत हाथी पर सवार हो सुमेरु पर्वत की चोटी पर अभिषेक करने के लिये ले गये । तदन्तर इन प्रभु के आगे अप्सरायें नाच उठी तथा इन्द्र के आगे देव दुन्दुभिवाद्य बजा रहे थे । जिससे वह वाद्य-ध्वनि पर्वत से प्रतिध्वनित होने के कारण सुमेरु का अट्टहास प्रतीत हो रही थी । पुष्पराग से पीत हुई नदियाँ दावानल की गर्मी से छिपे हुये स्वर्ग-प्रवाह के समान मालूम पड़ रही थी । आपके जन्म से यह पृथ्वी सनाथ हुई निरन्तर उत्सवों को करती हुई, तुम ही वास्तव में कल्याण की निधि, तुम ही शिव हो, तुम ही लक्ष्मीपति हो, इस प्रकार की स्तुतियों को गाते हुए सभी देवगणों ने अनेक प्रकार से पाण्डुक शिला तल पर भगवान का (जन्म) अभिषेक किया । इन्द्र ने कहा धर्म रथ को धारण कर यह नेमि पृथ्वी के विघ्न अरिष्ट को नष्ट करेंगे, अतः "अरिष्टनेमि" यह नाम रखा । देव जन्माभिषेकोत्सव सम्पन्न कर अमरपुरी को चले गये ।

षष्ठ सर्ग :

इसके बाद बालक नेमि नवीन उदित हुये चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगा । महान् ऐश्वर्यशाली उस बालक को पाकर राजा समुद्रविजय अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए । वह बालक नवीन-नवीन प्राप्त विशिष्ट कान्ति से लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने लगा । उसके मुखरूपी चन्द्रमा पर भोलापन, तथा कमल के समान सुन्दर पैरों में लालिमा, वाणी में तोतलापन तथा अधरों पर मुस्कराहट शोभायमान होने लगी । उस बालक का अंग प्रत्यंग अत्यन्त शोभायमान था । कुमार अरिष्टनेमि जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञान के धारक थे ।

धीरे-धीरे अरिष्टनेमि ने युवावस्था में प्रवेश किया । उसका शरीर विशेष कान्ति से, वाणी अलंकृतियों से तथा गति मनोहारिता से युक्त हो गई । युवावस्था के आ जाने पर यद्यपि इन्द्रीय विकार का उत्पन्न होना स्वाभाविक है किन्तु वह बालक विषयवासना से हीन तथा गंभीरता से युक्त बना रहा । अरिष्टनेमि के सौन्दर्य को देखने के लिये ही मानों बसन्त ऋतु आ गई । मलयाचल की हवाऐं पथिकों के मनरूपी कानन के लिये अग्नि के समान काम को उत्पन्न करने लगी । भ्रमर फूलों के रसों का आस्वादन करने के लिए घूमने लगे । तिलकवृक्ष खिले हुये फूलों के बहाने रोमांचित होने लगे । कोयलों की आवाज से अपने प्रियतमों के आगमन की सूचना पाकर रमणियाँ बलि प्रदान करने लगी । इस आनन्दमय समय में सभी वधुएँ बारम्बार झूले की क्रीडा का आनन्द लेने लगी । मधुर ध्वनि वाली कोयलों की आवाज कानों में पड़ने पर ऐसा कोई पथिक नहीं था जिसने कामदेव से प्रेरित होकर अपनी प्रियतमा को याद न किया हो । बसन्त ऋतु के इस सुहावने समय में यदुवंशी लोग रैवतक पर्वत पर

शोभा देखने के लिए चले गये । इसके बाद सारथी ने अरिष्टनेमि से रैवतक पर्वत पर चढ़ने का निवेदन किया ।

सप्तम सर्ग :

रैवतक पर्वत पर पदोन्मत्त मधुकरों से युक्त हस्ति-युगल क्रीड़ा कर रहे थे । चम्पा और सहकार की छटा इस पर्वत भूमि को स्वर्णमय बना रही थी । हे पराक्रमी राजन् ! कल्पतरु से भरे पूरे इस पर्वत की उस मनोरम भूमि को देखिये जो बाण-वृक्षों से भरी पड़ी है । यह एकान्त किन्तु चित्ताकर्षक स्थान नित्यप्रति देवताओं के साथ स्वर्ग लोक से आने वाली सुरांगनाओं की संभोगाभिलाषा को उकसा देता है ।

अहा ! कितनी मनोहारी यह जलराशि है । इसके किनारे पर सीधे सीधे धूप (काष्ठ विशेष) के वृक्ष खड़े हुए हैं । यहाँ हरिण वायु के समान तीव्र वेग से दौड़ते हैं और लक्ष्मी भी कमलों में स्थान पाकर हर्षोल्लास से भर जाती है ।

पुष्पराशि मण्डित बाणों के वृक्ष भ्रमरों की मलिन पंक्ति को धारण किये हुए हैं तथा सरोवरों के निकट मयूरों का कलाप सदैव मधुर ध्वनि उत्पन्न करता रहता है ।

कुरबक, अशोक, तिलक आदि वृक्ष अपनी शोभा से नन्दन वन को भी तिरस्कृत कर रहे थे । सम-विषम और निम्न-उन्नत भूमि में प्रवाहित करने वाला नदियों का प्रवाह वायु के कारण सर्प की उपमा धारण करता है । सारथि कहता है कि हे रक्षक ! कदली वन की वह भूमि अत्यन्त रमणीय है, क्योंकि उसमें कमलों का समूह है । सुन्दर कुरवक वृक्षों का कुंज है । मनोहारिणी सुन्दरियाँ हैं, बक पंक्ति से रहित निर्मल एवं रमणीय जलराशि है और मनोहर शब्द करने वाला हरिण-यूथ भी है ।

हे देव ! जिस प्रकार आप अपने गुणों से अद्भुत प्रताप वाले इस वंश को भूषित करते हैं, उसी तरह सत्य वैभव वाला यह पर्वत देवों को भी आश्रय देने के कारण पृथ्वी को सुशोभित करता है । सारथि के वचनों से पर्वतराज की शोभा देखने वाले नेमिनाथ ने सघन छाया में निर्मित पट-मन्दिर में निवास किया ।

अष्टम सर्ग :

इसके बाद विभिन्न प्रकार के वृक्षों से युक्त उस पर्वत पर क्रीड़ा करने के लिये माधव (श्रीकृष्ण) पहुँचे । यदुवंशी नारियों ने अपने प्रियों के साथ विभिन्न प्रकार की विलास-क्रियायें सम्पन्न की । वन विहार के अनन्तर यादवों ने जल विहार किया । स्नान करने से स्त्रियों के नखक्षत स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे । जिससे वे मूर्तिधारी कामदेव की वर्ण पंक्ति के समान प्रतीत होते थे । रमणियों के केश से गिरे हुये भ्रमर से युक्त केतकी पुष्प तैरती हुई नौकाओं के समान प्रतीत होते थे ।

इस प्रकार यादवों ने अपनी सुन्दरियों के साथ विभिन्न प्रकार से जलक्रीड़ा सम्पन्न की।

नवम सर्ग :

नवम सर्ग में सायंकाल चन्द्रोदय का वर्णन है। अस्ताचल ने सूर्य को अतिथि समझकर उसका स्वागत किया। निर्मल जल में प्रतिबिम्बित सूर्य का बिम्ब, रत्न धारण किये हुये अर्धपात्र के समान प्रतीत हो रहा था। सायंकाल के समय सूर्य रूपी दीपक के प्रकाश को पवन द्वारा बुझाये जाने पर मनुष्यों के रूप को चुराने वाले अन्धकार रूपी चोर ने संसारमन्दिर में प्रवेश किया। रात्रि के घने अन्धकार को छिन्न करने के लिए औषधिपति चन्द्रमा का उदय हुआ। कैरव ने विकसित हो कमल की शोभा प्राप्त की। चन्द्रोदय के होते ही समुद्र हर्षित होकर उछलने लगा।

अमृतोपम अधर, रम्यशब्द, पेलव शरीर, सुन्दर आकृति, सुगन्धित श्वास एवं लज्जित नेत्र वाली नायिकाएँ, नायकों के लिए इन्द्रियों के तृप्त्यर्थ सुखनिधि थी। इस प्रकार रात्रि के समय में (चन्द्रोदय हो जाने पर) युवक और युवतियाँ नाना प्रकार के संयोग सुखों का अनुभव करने लगे।

दशम सर्ग :

इसके बाद कामदेव के द्वारा काम से जलते हुए मन वाले नव युवक और नवयुवतियाँ मधुपान में आसक्त हो गये थे। मधु का मादक नशा आनन्द विभोर कर रहा था। मधु पीने से प्रफुल्लित स्त्रियों के मुख, चन्द्र बिम्ब सदृश प्रतीत हो रहे थे। इस प्रकार का यह मधु मृगनयनियों के गान को नष्ट करने वाला था। यादव लोग मधुपान से उन्मत्त हो नाना प्रकार की सुरत क्रीड़ाओं में आसक्त हो गये थे।

इस प्रकार वसन्त के समय में प्रेरित वे सब यदुवंशी जल में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं से, मधुपान से तथा सुरत क्रीडाओं से संसार के सभी सुखों का सेवन कर रहे थे।

एकादश सर्ग :

उग्रसेन महाराज की पुत्री (राजीमती) वसन्त में (चैत्र में) जलक्रीड़ा के लिए अपनी माताओं के साथ आयी और वहाँ उसने नेत्रों को आनन्दित करने वाले नेमिनाथ को (अरिष्टनेमि) को देखा और देखते ही काम बाणों से बिद्ध हो गई। उसके शरीरदाह को शान्त करने के लिए शीतल जल, चन्दनादि पदार्थों का सेवन कराया गया। पर इन पदार्थों से उसका सन्ताप और अधिक बढ़ गया। सखियाँ राजीमती को सब प्रकार से शान्त करने का प्रयास करने लगी, पर नेमि के स्मरण मात्र से उसकी आँखों से अश्रुवर्षा हो रही थी। इधर यादवेश समुद्रविजय ने नेमि के लिए विवाहार्थ राजीमती की भावना व्यक्त करने के लिए श्रीकृष्ण को भेज दिया। श्रीकृष्ण की याचना को उग्रसेन ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की और अरिष्टनेमि के विवाह का शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया। समुद्रविजय ने अपने पुत्र के अनुरूप वधू को तथा उग्रसेन ने भी पुत्री के अनुरूप नेमि को प्राप्त कर दोनों के विवाहोत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ करा दी।

द्वादश सर्ग :

उग्रसेन की पुरी के प्रति विवाह के प्रस्थान के लिए नेमिनाथ ने विधिपूर्वक नेपथ्य (सजने का कार्य) विधि को स्वीकार किया । नेमि की वर यात्रा सजने लगी । कुशल श्रृंगार-वेत्ताओं ने उसका श्रृंगार किया, शुभ्रवस्त्र धारण किये हुये नेमि का शरीर अंजनगिरि पर विश्राम करने के लिए आये हुये शरत्कालीन मेघ के समान प्रतीत होता था । महान वैभव और सम्पत्ति से युक्त नेमि सहस्रनेत्रों की प्राप्ति के लिये इन्द्र के समान प्रतीत होते थे ।

स्वर्णनिर्मित तोरण युक्त राजमार्ग से नेमि शनैः शनैः जा रहे थे । उधर राजीमती का भी सुन्दर श्रृंगार किया गया था । वर के सौन्दर्य का अवलोकन करने के लिये नारियाँ गवाक्षों में स्थित हो गई थी । सभी लोग राजीमती के भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे । अरिष्टनेमि सम्बन्धियों के साथ दरवाजे पर लाये गये । दूर्वा, अक्षत, मलयज, कुमकुम और दधि से पूर्ण स्वर्ण पात्र को लिये हुये उग्रसेन कन्या राजीमती स्वागतार्थ प्रस्तुत हुई ।

त्रयोदश सर्ग :

रथ से उतरने के लिए प्रस्तुत अरिष्टनेमि ने विवाह यज्ञ में बंधे हुये पशुओं के करुण क्रन्दन को सुना । दुःखी ध्वनि को सुनकर उस वीर का हृदय पीड़ित हुआ । नेमि ने सारथि से पूछा कि यह एक साथ बंधे हुये पशुओं की ध्वनि क्यों सुनाई पड़ रही है? सारथि ने उत्तर दिया कि आपके इस विवाह में सम्मिलित होने वाले अतिथियों को इन पशुओं का माँस खिलाया जायेगा । सारथि के इस उत्तर को सुनकर नेमि को अपार वेदना हुई और उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया । वे रथ से उतर पड़े और समस्त वैवाहिक चिह्नों को शरीर से उतार दिया । उग्रसेन आदि को जब यह समाचार मिला तो सभी अरिष्ट नेमि को समझाने लगे । नेमि ने उत्तर दिया - मैं विवाह नहीं करूँगा, परमार्थ सिद्धि के लिये तथा जगत् से हिंसा को दूर करने के लिये तप करूँगा ।

इस सन्दर्भ में उन्होंने अपने शिकारी जीवन से लेकर जयन्त विमान में उत्पन्न होने तक की पूर्व भवावलि भी सुनायी । नेमि समस्त परिजन और पुरीजनों को समझाकर आसुँओं से युक्त नयनवाले माता-पिता से आज्ञा लेकर एवं पुत्री के दुःख से उद्विग्न श्वसुर को भी बारम्बार सम्बोधित करके मुक्ति-लक्ष्मी के धारण करने के लिए रैवतक पर्वत के वन में चले गये ।

चतुर्दश सर्ग :

इसके बाद उन नेमिप्रभु ने इन्द्र के अनुयायी दिक्पतियों को लौटाकर रैवतक पर्वत के ऊपर मुक्ति-मार्ग के मणि-सोपान की तरह आरोहण किया । रमणीयता के कारण वह पर्वत केवल देवताओं के सेवन को प्राप्त नहीं हुआ, अपितु नेमि प्रभु के चरणों से पवित्र होकर यह तीर्थ के रूप में सेव्यता को प्राप्त हुआ । नेमि प्रभु के आरोहण करते ही अनुकूल हवा चलने लगी । उन्होंने स्वयं ही वहाँ संयम को धारण कर लिया, क्योंकि ज्ञानी लोगों की आत्मा ही

गुरु होती है। उन्होंने घोर तपश्चरण प्रारम्भ कर दिया। तपस्या के साथ ही उस बुद्धिमान् की परमज्योति (ज्ञान) भी बढ़ने लगी। कामदेव आदि शत्रु शरीर के साथ कृशता को प्राप्त हो गये। उनके प्रभाव से पर्वत पर हिंसक पशुओं ने भी हिंसा को त्याग दिया। उन्हें न तो सूर्य का सन्ताप और न चन्द्रमा की शीतलता का अनुभव हुआ, क्योंकि वे दिन रात इन्द्रियों की वृत्ति को रोक कर स्थित रहे। धीरे-धीरे वर्षा ऋतु ने प्रवेश किया। आकाश में सूर्य के सन्ताप को दूर करने के लिये ही मानो मेघों का समूह व्याप्त हो गया किन्तु वे खुले वातावरण में ज्यों के त्यों तपस्या करते रहे। हाथी, शेर आदि से व्याप्त जंगल में उस मुनि की रक्षा के लिये उद्यत होकर मरुत्पति ने धनुष को धारण कर लिया। नवीन-नवीन मेघों के समूह ने वर्षा के द्वारा मानो इसलिए छत्रों को धारण कर लिया जिससे मुनि खेद को प्राप्त न हों। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दिन रात वर्षा होने पर भी उस मुनि का पवित्र मानस रूपी भूषण वाला हंस थोड़ा भी क्षुभित नहीं हुआ। चारों तरफ नदियों के कलुषित हो जाने पर भी वन में कोई अन्तर नहीं आया। कलश के समान विस्तीर्ण मेघों के द्वारा इन्द्र ने तरुण युवक के समान उस महामुनि का अभिषेक कर दिया। इसी प्रकार ग्रीष्म और शरद् ऋतु के खुले वातावरण में भी वे निरन्तर कायोत्सर्ग पूर्वक तपस्या करते रहे। इसके बाद उन्होंने शुक्ल ध्यान द्वारा कर्म-कलंक नष्टकर केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

पंचदश सर्ग :

इसके बाद अनुरक्त मुक्ति रूपी बधू के द्वारा मुक्त कटाक्षों के समान पुष्प वृष्टि होने लगी। उनके आश्चर्यजनक प्रभाव से २०० योजन तक प्राणियों को अकाल ने बाधा नहीं पहुँचाई। अशोक वृक्ष में सुन्दर-सुन्दर पल्लव आ गये। उनका भामण्डल सुसज्जित होने लगा। भामण्डल के भय से ही मानों छाया ने उसके अन्दर ही प्रवेश कर लिया जिससे सभी के चित्त शान्त हो गये। सभी दिशाओं में उनके नेत्र निर्निमेष शोभायमान होने लगे। उनके नाखून और बालों में वृद्धि नहीं हुई। छोटे-छोटे प्राणियों के प्राणों के नाश के डर से ही मानों वे पृथ्वी तल को छोड़कर ऊपर विचरण करने लगे। भूत भविष्यत् और वर्तमान की सभी वस्तुओं के ज्ञान के कारण उनके समीप तीन छत्र सुशोभित होने लगे। आकाश में दुन्दुभि बजने लगी। अपने समय के बिना भी वृक्षों में फल फूल आ गये। इन्द्र की आज्ञा को पाकर कुबेर ने उनके लिये रत्नमयी सभा का निर्माण करा दिया। उस सभा में नेमि प्रभु रत्न सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इसके बाद देवों ने आकर विभिन्न प्रकार से तीर्थङ्कर नेमिप्रभु की स्तुति की। इसके बाद उन्होंने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का उपदेश दिया। "जीव" चेतना लक्षण वाला होता है और यह शरीर प्रमाण है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय भेद से यह पाँच प्रकार का है। पृथ्वी-कायिक आदि एकेन्द्रिय, संखादि द्वीन्द्रिय, चींटी आदि त्रीन्द्रिय, भ्रमर आदि चार इन्द्रिय और मनुष्यादि पंचेन्द्रिय हैं।

गति की अपेक्षा जीव चार प्रकार के होते हैं - नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा पुद्गल ये अजीव हैं। धर्म, गति का कारण और अधर्म स्थिति का कारण है।

काल और आकाश अनश्वर हैं और ये जगत् में व्याप्त हैं। काय, वचन और मन का योग "आस्रव" कहलाता है। यही सम्पूर्ण संसार रूपी नाटक का सूत्रधार है। अपने शुभाशुभ कर्मों का बन्ध जाना "बन्ध" कहा गया है। उत्पन्न हुए अनाबद्ध कर्मों की संवृत्ति (रूकना) "संवर" कहलाता है। फलभोग से कर्मों का क्षय होना "निर्जरा" कही गई है। निर्जरा से आत्मा निर्मलता को प्राप्त होती है। अनेक जन्म - जन्मान्तर से बद्ध सभी कर्मों का विप्रमोक्ष (छुटकारा) "मोक्ष" कहा गया है। इस प्रकार तीर्थङ्कर केवली नेमिप्रभु ने सप्त तत्त्वों का उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सूर्य की तरह समस्त देशों का अज्ञानान्धकार दूर करने के लिये विहार किया। जहाँ-जहाँ उन्होंने विहार किया, वहाँ अकाल की स्थिति नहीं रही। सभी ऋतुऐं एक साथ उनकी सेवा करने लगी। अन्त में सभी दिशाओं में धर्म का प्रभाव कर सभी कर्मों को नष्ट करके उन्होंने मुक्ति-वधू के साथ अनश्वर सुखों का सेवन किया।

परिवर्तन एवं परिवर्द्धन

वास्तव में महाकाव्य ऐतिहासिक या सज्जनाश्रित कथानक को ही गुंफित करता है, अतः महाकाव्य की कथावस्तु तो प्रायः बनी बनाई मिल जाती है किन्तु कवि अपनी मौलिक नव-नवोन्मेषशालिनी बुद्धि से महाकाव्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रसिद्ध कथानक में कुछ आवश्यक परिवर्तन या परिवर्द्धन करके उसे एक नया रूप दे देता है। कवि के इस परिवर्तन या परिवर्द्धन से मूल कथानक के ऐतिहासिक या प्रसिद्ध कथानक में कोई विसंगति भी उत्पन्न नहीं होती है और कवि भी अपने लक्ष्य में सफल हो जाता है।

महाकवि वाग्भट ने नेमिनिर्वाण महाकाव्य में इस तरह के परिवर्तन और परिवर्द्धन किये हैं जिससे कि कथानक के मूल गठन में कहीं-कहीं शिथिलता भी आ गई है। इस काव्य में मुख्य घटनाओं को प्रायः यत्र-तत्र स्मृति मात्र करके पूर्णतया छोड़ ही दिया है। यद्यपि अलंकृत काव्य शैली का अनुकरण करने से कवि ने जीवन-व्यापी कथावस्तु में से मर्मस्पर्शी कुछ अंशों को ही विस्तार देने का प्रयास किया है तो भी कथावस्तु को कवि सुडौल नहीं बना सका, हाँ वर्णन चमत्कारों की योजना में कथानक गठन में पूर्ण सहायता प्रदान की है। नेमिनिर्वाण का कथानक कवि ने जिनसेन प्रथम के हरिवंश पुराण तथा गुणभद्र के उत्तर पुराण से ग्रहण किया है। कवि ने इन दोनों के अतिरिक्त तिलोयपण्णत्ति जैसे आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन भी किया है। वास्तविक रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि नेमिनिर्वाण में वर्णित जीवनवृत्त पूर्णरूप से हरिवंशपुराण के समान है। नेमिनाथ की जन्मतिथि का मेल केवल उत्तर पुराण से ही ठीक मिल पाता है, हरिवंशपुराण से नहीं। कवि ने यह बात यथावत् स्वीकारी है। किन्तु काव्य प्रणयन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किये हैं। अब यहाँ उन्हीं मूल कथानक के आधार पर नेमिनिर्वाण में किये गये प्रमुख परिवर्तन और परिर्धनों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है —

१. हरिवंशपुराण में नेमिनाथ भगवान् की जन्मतिथि वैशाख शुक्ला त्रयोदशी निर्दिष्ट की गई है,[१] जबकि नेमिनिर्वाण महाकाव्य में यह तिथि श्रावण शुक्ला षष्ठी उल्लिखित है।[२]

२. यद्यपि नेमिनिर्वाणकार महाकवि वाग्भट ने अपनी कथावस्तु का ग्रहण जिनसेनकृत हरिवंशपुराण

---

१. ततः कृतसुसंगमे निशि निशाकरे चित्रया, प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुभे
असूत तनयं शिवा शिवदशुद्धवैशाखत्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिणं हारिणम् ।हरिवंशपुराण, ३८/९

२. शुक्लपक्षभवषष्ठवासरे साथ मासि नभसि प्रसर्पति ।
नन्दनं सकललोकनन्दनं सत्क्रियेव सुषुवे समीहितम् ।। नेमिनिर्वाण, ४/१३

से किया है, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण से नहीं । तथापि नेमिनिर्वाण में कुछ घटनाओं पर उत्तरपुराण का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । नेमिनिर्वाण में उल्लिखित नेमिनाथ भगवान् के जन्म की तिथि श्रावणशुक्ला षष्ठी उत्तरपुराण के आधार पर वर्णित की गई है ।[१]

३. हरिवंशपुराण में नेमिनाथ के पूर्वभवों का विस्तृत वर्णन आया है, किन्तु वाग्भट ने नेमिनिर्वाण में पूर्वभवावलि का वर्णन प्रासंगिक कथाओं के नियोजन के रूप में केवल त्रयोदश सर्ग में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है । फलतः कथावस्तु के पल्लवन के लिए अपेक्षित प्रासंगिक कथायें इस काव्य में नहीं आ पाई हैं ।

४. हरिवंश में राजीमती के दर्शन एवं पशुओं के करुण क्रन्दन की दो मर्मस्पर्शी घटनायें आई हैं । महाकवि वाग्भट ने महाकाव्य के अनुकूल इन दोनों घटनाओं को पर्याप्त सरस और मार्मिक बनाकर विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत किया है ।

५. हरिवंशपुराण में वसन्त, रैवतक, जलक्रीडा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सुरतक्रीडा, मदिरापान प्रभृति का वर्णन या तो हुआ ही नहीं है अथवा संक्षेप में वर्णित हुआ है । महाकवि वाग्भट ने नेमिनिर्वाण में प्रसंगानुकूल इनका विस्तृत वर्णन किया है ।

इस प्रकार दोनों कथावस्तुओं के अन्तर को देखने से पता चलता है कि महाकवि वाग्भट ने मूल कथावस्तु जिनसेन हरिवंशपुराण से ली है तथा अपनी कथावस्तु में कोई विशेष परिवर्तन-परिवर्द्धन नहीं किया है । केवल नाममात्र का परिवर्तन-परिवर्द्धन हुआ है, कोई मौलिक नहीं । कथावस्तु के गठन में न्यूनता है । नेमिनाथ के जन्म, तप, ज्ञान एवं निर्वाण का वर्णन सीधे एवं सरल रूप में करने से गाम्भीर्य की कमी खटकती है । कथानक के गठन की दृष्टि से कुछ कमी होने पर भी कथावस्तु के मार्मिक घटनाक्रम को विस्तार देने का प्रयास किया गया है । फलतः शैथिल्य होने पर भी महाकाव्य की कथावस्तु में छिन्नता नहीं मानी जा सकती है ।

---

१. स पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे षष्ठी दिने । उत्तरपुराण; ७१/४९

नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प

रस

"रस्यते इति रसः" जो आस्वादित होता है वह रस है । रस शब्द का प्रयोग लोक में विभिन्न रूपों में मिलता है, जैसे पदार्थों में अम्ल, तिक्त, कषाय आदि षड्रस तथा आयुर्वेद रस, साहित्य में भक्ति रस आदि । वेदकाल में भी सोमरस तथा मधु के लिए भी रस का प्रयोग किया है । रामायण में रस का प्रयोग जीव रस के लिये हुआ है ।

साहित्य में शब्द और अर्थ काव्य का शरीर होता है और रस "आत्मा" कहलाती है। अतः काव्य रूपी शरीर में रस रूपी आत्मा एक अनिवार्य तत्त्व है ।

रस की परिभाषा :

रस की स्पष्ट परिभाषा करते हुये मम्मट ने लिखा है :-

विभावानुभावस्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः ।।[१]

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रस कहलाता है ।

इसी प्रकार विश्वनाथ ने भी कहा है :-

विभावानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादि स्थायिभावः सचेतसाम् ।।[२]

अर्थात् आलम्बन विभाव से उद्बुद्ध व्यभिचारियों से परिपुष्ट तथा अनुभावों से व्यक्त सहृदय का स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होता है । यहाँ प्रश्न उठता है कि वह रस जिसमें अभिव्यक्त है । उस रस का भोक्ता कौन है?

आचार्य भरत ने - "विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" कहा है । निष्पत्ति से क्या अभिप्राय है और किसमें होती है? इसका विवेचन नहीं किया है । परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने अनुसार इस सूत्र की व्याख्या की है ।

इसमें चार आचार्यों की व्याख्यायें उल्लेखनीय हैं :-

(१) भट्टलोल्लट : इन्होंने निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति स्वीकार किया है । अतः इनका मत "उत्पत्तिवाद" नाम से जाना जाता है । यह रस मुख्य रूप से रामादि अनुकार्य में तथा गौण रूप से नट में प्रतीत होता है । इनके मत में स्थायी भाव के साथ विभावादि का

---

१. काव्य प्रकाश, ४/२८ २. साहित्य दर्पण, ३/१

उत्पाद्य-उत्पादक, अनुभावों का गम्य-गमक भाव तथा व्यभिचारी भावों का पोष्य-पोषक भाव सम्बन्ध है ।

(२) **शंकुक :** शंकुक के मत में रस अनुमेय है, विभाव, अनुभाव आदि अनुमापक और इनमें अनुमाप्य-अनुमापक सम्बन्ध है । रत्यादि स्थायी भाव रामादि में विद्यमान रहता है, विभावादि से अनुमित होकर वह रस कहलाता है । अतः वह मुख्य रूप से राम आदि अनुकार्य में होता है, सहृदय उसका अनुमान नट में कर लेता है ।

शंकुक का यह मत भट्टलोल्लट पर आधारित है । अन्तर मात्र इतना है कि वहाँ सहृदय नट पर रामादि का आरोप करता है और यहाँ अनुमान ।

इस प्रकार दोनों के मतों में न्यूनता यह है कि ये रस की स्थिति अनुकार्य में मानते हैं तो सामाजिकों को इसमें क्या लाभ? अनुमिति परोक्ष वस्तु की होती है, किन्तु रस तो प्रत्यक्ष है ।

(३) **भट्टनायक :** भट्टनायक का मत भुक्तिवाद के नाम से विख्यात है । उनके मत में रस की उत्पत्ति न अनुकार्य राम में होती है न अनुकर्ता नट में, क्योंकि ये दोनों तटस्थ (उदासीन) हैं । वास्तविक रस की उत्पत्ति सामाजिक में होती है । भट्टनायक ने अपने मत की स्थापना के लिये अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व और भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापारों की कल्पना की है ।

अभिधा में अर्थमात्र का बोध होता है । भावकत्व व्यापार अभिधाजन्य अर्थ को परिष्कृत कर सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है । यही व्यापार व्यक्ति विशेष का सम्बन्ध हटाकर उसका साधारणीकरण कर देता है । तदन्तर भोजकत्व व्यापार साधारणीकृत विभाव आदि का रस के रूप में भोग करवाता है, किन्तु इन भावकत्व और भोजकत्व व्यापारों की कल्पना अनुभवसिद्ध नहीं है ।

(४) **अभिनवगुप्त :** इनका मत अभिव्यक्तिवाद के नाम से जाना जाता है । इनके मत में सामाजिक गत स्थायी भाव ही रसानुभूति का निमित्त होता है । यहाँ निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति है । इसमें रस अभिव्यक्ति का क्रम इस प्रकार है - सर्वप्रथम काव्य के पदों से उन-उन अर्थों की प्रतीति होती है तदनन्तर उपस्थित विभावादि के द्वारा वाक्यार्थ का बोध होता है । तत्पश्चात् अभिनयादि से रत्यादि वासना से युक्त सहृदय सामाजिक का उन-उन विभावादियों के साथ साधारणीकरण होता है और इस साधारणीकरण व्यापार के द्वारा विभावादिकों से युक्त रत्यादि से अवछिन्न अज्ञानावरण के हट जाने के कारण अखण्ड चिदानन्द स्वरूप रस की प्रतीति सामाजिक को होती है । इस प्रकार अभिनव गुप्त ने रस की अवस्थिति सामाजिकों में मानी है, जो निश्चय ही उपादेय है ।

रस अलौकिक वस्तु है, सत्त्वगुण का उद्रेक होने पर यह अखण्ड रूप में स्वयं प्रकाश, आनन्दमय और चैतन्य रूप में भासित होता है । इस समय अन्य किसी का ज्ञान नहीं होता

तथा इसका स्वाद ब्रह्मास्वाद का सहोदर है ।[१]

इस प्रकार यह सुनिश्चित कहा जा सकता है कि "रस एक अलौकिक वस्तु है । जो सहृदयव्यक्तियों के हृदय में उत्पन्न होने वाला तत्त्व है ।"

शान्त रस : मान्यता और स्थान :

शब्द और अर्थ काव्य की काया है और रस काव्य की आत्मा । लोक में रति आदि स्थायीभावों के जो कारण कार्य और सहकारी-कारण होते हैं, वे यदि नाट्य या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव कहे जाते हैं और विभाव आदि से अभिव्यक्त स्थायीभाव ही रस कहलाता है ।[२] रसाभिव्यक्ति की इस प्रक्रिया को अजितसेन ने बड़े ही सुन्दर उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है :-

"नवनीतं यथाज्यत्वं प्राप्नोति परिपाकतः ।
स्थायिभावो विभावाद्यैः प्राप्नोति रसतां तथा ।।"[३]

अर्थात् - जिस प्रकार परिपाक हो जाने से नवनीत ही घृत रूप में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार स्थायिभावविभावादि के द्वारा रस स्वरूपता को प्राप्त हो जाता है ।

वस्तुतः काव्य के पढने या सुनने से जो आनन्द की प्राप्ति होती है, वह रस के द्वारा ही होती है । इन रसों की संख्या सामान्यतः नौ मानी है । १. श्रृंगार, २. हास्य, ३. करुण, ४. रौद्र, ५. वीर, ६. भयानक, ७. वीभत्स, ८. अद्भुत, और ९. शान्त ।

श्रृंगार आदि आठ रसों की मान्यता निर्विवाद है । किन्तु शान्त रस के सम्बन्ध में आलंकारिकों में मतभेद दिखाई पड़ता है । अलंकारशास्त्री भरतमुनि को ही रस-सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक स्वीकार करते हैं । किन्तु यह मान्यता सर्वसम्मत और निर्विवाद नहीं मानी जा सकती, क्योंकि आचार्य राजशेखर ने भरतमुनि का रूपकप्रणेता के रूप में और नन्दिकेश्वर नामक किसी विशिष्ट आचार्य का रस-सम्प्रदाय के प्रणेता के रूप में उल्लेख किया है ।[४]

शान्त रस का प्रतिपादन भरतमुनि ने किया है या नहीं, यह विवादास्पद है । क्योंकि नाट्यशास्त्र के गायकवाड़ ओरएण्टल सीरीज बड़ौदा वाले संस्करण को छोड़कर प्रायः अन्यत्र रस-विवेचन वाला अंश नहीं मिलता और नाट्यशास्त्र के प्रसिद्ध व्याख्याकार अभिनवगुप्त ने

---

१. साहित्य दर्पण, ३/२-३

२. कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च ।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ।।
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।। - काव्यप्रकाश, ४/२७-२८

३. अलंकारचिन्तामणि, ५/८४

४. रूपकनिरूपणीयं भरतः रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः । - काव्यमीमांसा, अ० १

भी उक्त अंश को प्रक्षिप्त मानते हुए ही उस पर टीका लिखी है ।[१] आचार्य उद्भट (८ वीं शताबदी ई०) ने शान्त रस को स्पष्ट रूप से रस स्वीकार करते हुए नाट्य में नौ रसों की मान्यता को प्रतिपादित किया है ।[२] इस आधार पर यही माना जाता है कि सर्वप्रथम उद्भट ने ही शान्त रस की मान्यता को स्थिर किया है, परन्तु अलंकार शास्त्र के विशेष अन्वेषण से पता चलता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में जैनाचार्य आर्यरक्षित ने अपने प्राकृत ग्रंथ "अनुयोगद्वारसूत्र" में प्रसंगतः एक से दस संख्या तक के नामों का निर्देश करते हुए नव संख्यक रसों का उल्लेख किया है[३] तथा प्रशान्त (शान्त) रस का भी विवेचन किया है ।[४] अतः उद्भट् के पूर्व भी प्रशान्त (शान्त) रस की मान्यता थी, इस विषय में शंका का कोई स्थान नहीं है ।

कविवर बनारसीदास (१७ वीं शती) ने नवरसों को भवरूप और भावरूप अर्थात् लौकिक और पारमार्थिक दो तरह का मानते हुए दोनों ही तरह के स्थायीभावों का भी वर्णन किया है । उन्होंने शान्त का भवरूप (लौकिक) स्थायीभाव ("माया में अरुचि" और भाव रूप (पारमार्थिक) स्थायीभाव "ध्रुव वैराग्य" माना है ।[५]) कविवर बनारसीदास की यह मान्यता साहित्य-जगत् के लिए नई देन होने से अतीव महत्त्वपूर्ण है ।

आचार्य मम्मट ने शान्त रस का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

---

१. अभिनवभारती, षष्ठ अध्याय

२. श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ।। - काव्यालंकारसारसंग्रह (बम्बई १९१५), पृ० ११

३. अनुयोद्वारसूत्र प्रथम भाग, पृ० ८२८ (ज्ञातव्य है कि आर्यरक्षित ने भयानक रस के स्थान पर व्रीडनक नामक रस माना है)

४. "निद्दोसमणसमाहणसंभवों जो पसंभावेणं ।
अविकारलक्खणो सो रसो पसंतोत्ति णायव्वो ।।
पसंतो रसो जहा सम्भावणिव्विगारं उवसंतपसंत सोमदिट्ठीअं ।
ही जह मुणिणो सोसइ मुहकमलं पीवरसिरीयं ।।" - वही, द्वितीयभाग, पृ० ८

५. "सोभामैं सिंगार बसै वीर पुरुषारथमैं, कोमल हिएमैं करुना बखानिये ।
आनंदमैं हास्य रूंडमुंडमैं विराजै रूद्र, वीभच्छ तहाँ जहाँ गिलानि मन आनिये ।
चिंतामैं भयानक अथवाहतामैं अद्भुत, माया की अरूचि तामैं सान्त रस मानिये ।
एई नव भव रूप एई भाव रूप इनको विलेछिन सुद्रष्टि जागैं जानिये ।।
गुण विचार सिंगार वीर उद्यम उदार रुख ।
करुण समरस रीति, हास्य हिरदै उछाह सुख ।।
अष्टकरम दलमलन रुद्र बरतै तिहि थानक ।
तन विलेछ बीभच्छ दुदमुख दसा भयानक ।।
अद्भुत अनन्त बल चितवन सांत सहज वैराग ध्रुव ।
नवरस विलास परगास तव जब सुबोध घट प्रकट हुव ।।
- समयसार नाटक सर्वविशुद्धिद्वार १३५, १३६, पृ० ३०७-३०८

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा,
मणौ वा लोष्ठे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
तृण वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः ।
क्वचित् पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ।।[१]

सांप अथवा मुक्ताहार में, फूलों की सेज अथवा पत्थर की शिला में, मणि अथवा ढेले में, बलवान् शत्रु अथवा मित्र में, तिनके में अथवा स्त्रियों के समूह में समान दृष्टि रखने वाले मेरे दिन "शिव शिव शिव" ऐसा प्रलाप करते हुए बीतते हैं।

श्रृंगारादि नव रसों में कौन प्रधान है, इस सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद है। भोजराज ने श्रृंगारप्रकाश में श्रृंगार को, भव-भूति ने उत्तररामचरित में करुण को तथा कुछ लोगों ने चमत्कृति के आधिक्य के कारण अद्भुत रस को प्रकृति रस एवं अन्य रसों को विकृति माना है। आचार्य अभिनवगुप्त शान्त रस को प्रकृति रस मानते हैं। (तत्र सर्वरसानां शान्तप्राय एवास्वादः - अभिनवभारती)। नाट्यशास्त्र के कुछ संस्करणों में उपलब्ध निम्नांकित पंक्तियाँ शान्त के रसराजत्व की ओर स्पष्ट संकेत करती है :-

"भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तुप्रकृतिर्मतः ।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनस्तत्रैव लीयते ।।
स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भावः प्रवर्तते ।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते ।।"[२]

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में चतुर्थ पुरुषार्थ ही मानव जीवन का साध्य है। धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों की पराकाष्ठा विषयभोगों के प्रति विरक्ति उत्पन्न करती है। तब मनुष्य विषयभोगों को विनाशीक और अनात्मनीन समझने लगता है। अतः शान्त रस ही मुख्य रस है और उसका रसराजत्व सिद्ध है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शान्त रस की मान्यता निर्विवाद है ईसा की प्रथम शताब्दी में शान्तरस की प्रतिष्ठा थी। शान्तरस का स्थायीभाव नित्य वैराग्य या शम है। नव रसों में इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

नेमिनिर्वाण में अंगी रस शान्त है और अंग रूप में अन्य रसों का भी समावेश हुआहै।

शान्त रस (अंगीरस):

धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, ये चारों पुरुषार्थ ही मानव के साध्य हैं। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की पराकाष्ठा विषय भोगों के प्रति विरक्ति उत्पन्न करती है और मनुष्य इन्हें विनाशीक समझने लगता है तथा मोक्षगामी होने की इच्छा करने लगता है।

१.काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, उदाहरण, ४४ २. नाट्यशास्त्र (गा० ओ० सी०, बड़ौदा संस्करण), ६.३३५-३३६

जैन काव्यों की यही विशेषता रही है कि उनमें अंगीरस प्रायः शान्त ही रहा है, क्योंकि चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष ही उनका साध्य है। भव्य पुरुष किसी निमित्त को पाकर ही वैराग्य को प्राप्त हो जाता है और तपश्चरण आदि से (मोक्ष) उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं।

'नेमि निर्वाण' महाकाव्य में शान्त रस का अनेक स्थानों में प्रयोग हुआ है। कवि ने तीर्थङ्कर नेमिनाथ की विरक्ति कि सन्दर्भ में इस रस की योजना की है। नेमिनाथ के विवाह के समय, पशुओं के चीत्कार ने उनके हृदय को द्रवित कर दिया, वे विवाह के वस्त्राभूषण को छोड़ तपश्चरण के लिये वन को चले जाते हैं। इस सन्दर्भ को कवि ने बहुत ही मार्मिक बनाया है। नेमिनाथ सोचते हैं कि :-

परिग्रहं नाहमिमं करिष्ये सत्यं यतिष्ये परमार्थसिद्धयै ।
विभोग-लीला मृगतृष्णिकासु प्रवर्तते कः खलु सद्विवेकः ।।
विभोगसारङ्गहृतो हि जन्तु परां भुवं कामपि गाहमानः ।
हिंसानृतस्तेयमहावनान्तर्बम्भ्राम्यते रेचितसाधुमार्गः ।।[१]

मैं विवाह नहीं करूगाँ परमार्थ सिद्धि के लिये प्रयत्न करूगाँ। कौन सद्विवेकी भोग रूपी मृगतृष्णा में प्रवेश करेगा। भोगरूपी सारंग पक्षी से हृतप्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह को करता हुआ अपने साधु कर्म को छोड़ देता है।

आत्मा प्रकृत्या परमोत्तमोऽयं हिंसां भजन्कोपनिषादकान्ताम् ।
धिक्कारभाग्नो लभते कदाचिदसंशयं दिव्यपुरप्रवेशम् ।।
दानं तपो वा वृषवृक्षमूलं श्रद्धानतो ये न विवर्ध्य दूरम ।
खनन्ति मूढाः स्वयमेव हिंसाकुशीलतास्वीकरणेन सद्यः ।।[२]

यह आत्मा प्रकृति से उत्तम है, पर क्रोधोत्पादक हिंसा का सेवन करता हुआ धिक्कार का भागी बनता है और स्वर्ग (निर्वाण) आदि को प्राप्त नहीं करता।

जो दान और तपरूपी धर्म-वृक्ष पर श्रद्धा न करते हुये दूर तक नहीं बढ़ते हैं, वें मूर्ख हैं और हिंसा, कुशीलादि का सेवन कर धर्म-वृक्ष की जड़ को खोद डालते हैं। जो व्यक्ति द्रव्य या भाव हिंसा करता है उसे दुर्गति में जाना पड़ता है। अतएव विवेकी को जागरूक बनकर धर्म का सेवन करना चाहिए।

उपर्युक्त उदाहरणों में भगवान् नेमिनाथ आलम्बन विभाव हैं। यहाँ पर पशुओं का करुण क्रन्दन उद्दीपन विभाव है। एकाग्र मन से परमार्थ-सिद्धि करना अनुभाव तथा विवाह न करना संचारी भाव है। इन विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों से शम स्थायीभाव की अभिव्यक्ति होती है। अतः यहाँ पर शान्त रस है।

१. नेमिनिर्वाण, १३/८,९ २. वही, १३/१०,११

अंग रस :

"नेमिनिर्वाण" काव्य में अंगीरस शान्त रस के अतिरिक्त श्रृंगार, वीर, रौद्र, करुण, अद्भुत आदि रसों का भी अंग रूप में प्रयोग हुआ है। महाकवि वाग्भट ने जहाँ एक ओर शान्त एवं कोमल श्रृंगार आदि रसों की समायोजना की है वहीं वीर, रौद्र आदि रसों का भी सफल चित्रण किया है।

श्रृंगार रस :

श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है, नायक या नायिका आलम्बन विभाव, एकान्त, चन्द्रमा, भ्रमर, उपवन आदि उद्दीपन विभाव, कटाक्ष, स्मित, आदि अनुभाव और हर्षादि संचारी भाव हैं। इसके संभोग और विप्रलम्भ दो भेद हैं। नेमिनिर्वाण में श्रृंगार रस के दोनों ही पक्षों (संभोग, विप्रलम्भ) का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

संयोग (संभोग) श्रृंगार :

कवि ने प्रेमियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम को आस्वादन योग्य बनाकर श्रृंगार रस का नियोजन किया है। "रात्रि में सुख विहार के समय यादवों द्वारा सम्पन्न की गई विलास क्रीड़ाओं के अवसर पर संभोग श्रृंगार की सुन्दर योजना की है। प्रकृति के रम्य वातावरण में यदुवंशी नायिकायें, नायकों के लिये सुख निधि के समान थी। प्रेमी-प्रेमिकाओं की विविध क्रीडायें संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत ही समाहित हैं यथा :-

अमृतोपमाधरदलाः कलस्वराः सुकुमारविग्रहभृतः सुदर्शनाः ।
अथ धूपनात्सुरभयो नतभ्रुवः सकलेन्द्रियार्थनिधयोऽभवन्नृणाम् ।।
तुहिनांशुना मदनबालबन्धुना हृतमत्सरान्धतमसाःसुमध्यमाः ।
व्यसृजन्निजेशमनसां प्रसादनप्रतिपत्तिपात्रमथ दूतिकाजनम् ।।[1]

अमृतोपम, अधर, रम्य शब्द, कोमल शरीर, सुन्दर आकार, सुगन्धित श्वास, एवं लज्जित नेत्र वाली नायिकायें नायकों के लिये इन्द्रियों के सुखार्थ निधि के समान थी। काम के बन्धु चन्द्रमा ने मत्सर रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली सुन्दर कटि वाली नायिकाओं को मनाने के लिये तत्कार्य में दक्ष दूतिकाओं को नियुक्त किया है और भी :-

नलिनीदलानि न न हारयष्टयस्तुहिनांशवो न न जलार्द्रमंशुकम् ।
त्वदृते तदङ्गपरितापशान्तये विपदोऽथवा स्वजनसंगभेषजाः ।।
अनुरागमायतदृशः कृशेतरं त्वयि न प्रियंवदतया वदामि तम् ।
लिखितत्वदाकृतिरनेकशस्तया रतिवासभित्तिरपि तेऽभिधास्यति ।।[2]

"हे प्रियतमे! तुम्हें छोड़कर कमल दल, हारयष्टि, चन्द्रकिरण जलार्द्र वस्त्र अथवा उत्तम

---

१. नेमिनिर्वाण, ९/४६,४७ २. वही, ९/४९,५०

औषधियों का लेपन शरीर ताप शान्ति के लिये क्षम नहीं है। शरीर ताप को शान्त करने के लिये तुम्हारा अंग स्पर्श ही एक-मात्र उपादेय है। हे दीर्घनयने! तुम्हारे प्रति जो प्रेम है उसे मैं चाटुकारिता से तुमसे नहीं कह रहा हूँ किन्तु रति भवन की भित्ति पर तुम्हारी जो आकृति अंकित है वह कह देगी कि मेरे कथन में कितना तथ्यांश है।

आगे नायिका का कृत्रिम कोप देखिये कितना सजीव है–

"अवलोक्य कापि पतिमागतं पुरः सहसैव दुर्वहनितम्बमण्डला।
विनयान्वितापि न शशाक सत्वरं परिहर्तुमासनमधीरलोचना॥[1]
दृढमासजेरुरसि वक्रमर्पयेर्मणितं च पूर्वगुणितं प्रकाशयेः
प्रियसगंमेष्विति सखीभिरीरिता कृतकं प्रकोपमकरोन्नवा वधूः॥[2]

दुर्वह नितम्ब वाली नायिका, विनयान्वित होने पर भी नायक को पास में आया हुआ जानकर भी अपना आसन न छोड़ सकी। शयन कक्ष में पति के आने पर उसके मुख से अनायास ही दूसरी नायिका का नाम सुन लेने से शरीर दाह के साथ कमलिनियों से निर्मित शय्या को नायिका ने छोड़ दिया। "प्रिय संग न होने से उसके हृदय पर दृढतापूर्वक अपने मुख कमल को रख देना, पहले सोची हुई बातों को कह डालना इस प्रकार सखियों द्वारा कहे जाने पर नव वधुओं ने कृत्रिम क्रोध प्रकट किया।

इस प्रकार कवि ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही सांगोपांग चित्रण किया है।

विप्रलंभ (वियोग) श्रृंगार :-

वियोग श्रृंगार का चित्रण बड़ा ही रोचक बन पड़ा है। उग्रसेन की पुत्री राजीमती नेमि को रैवतक पर्वत पर (चैत्रमास में) क्रीड़ा करते हुये देखती है और उसके लावण्यपूर्ण शरीर को देखते ही अपने तन-बदन की सुध भूल जाती है और कामदेव के आधीन हो जाती है, जिसके कारण शरीर में दाह उत्पन्न हो जाता है। कवि ने राजीमती के विरह का बड़ा ही मनोरम चित्रण किया है। यथा :-

शीतैः शीतैश्चन्दनाद्यैरूपायैर्दिग्धोद्दाहं गाहमाना सुगात्री।
सा निश्वासोत्कम्पिमुक्ताकलापा निद्रामुद्रां नोपलेभे निशायाम्॥
शून्यस्वान्ता सा वयस्यासु कान्ताः कुर्वाणासु प्रेमपूर्वाःप्रवृत्तीः।
मूर्ध्नः कम्पेनोत्तरं तारनेत्रा चक्रे यद्वा चारुणा हुंकृतेन॥
नक्तं-नक्तं चन्द्रसंदर्शनेन प्राणेषूर्ध्वप्रस्थितेषु प्रकामम्।
वेगादागादक्षिणी मीलयन्ती मूर्च्छा तस्याः पक्ष्मलाक्ष्याः सखीव॥[3]

शीतल-शीतल चन्दन आदि उपायों के द्वारा और अधिक संताप को प्राप्त होती हुई

---

१. नेमिनिर्वाण, ९/५२   २. नेमिनिर्वाण, ९/५४   १. नेमिनिर्वाण, ११/३-५

लम्बी-लम्बी सांसों से कम्पित होते हुये मुक्ताहार वाली उस सुन्दरी ने रात्रि में निद्रा को प्राप्त नहीं किया। सखियों के कमनीय एवं प्रेमपूर्वक व्यवहार करने पर शून्य हृदय वाली एवं चंचल नेत्रों वाली उसने सिर के कम्पन्न (हिलाने) से अथवा सुन्दर हुँकार से उत्तर प्रदान किया। प्रत्येक रात्रि में चन्द्रमा के दर्शन से प्राणों के ऊपर चले जाने पर आँखों को बन्द करती हुई मर्च्छा उस सुनयना की सखी की तरह वेगपूर्वक आ गई।

चान्द्रं बिम्बं वृत्तवह्नयाश्मकल्पं व्यालीवासीद्भीषणा पुष्पमाला।
चित्याकल्पं पुष्पतल्पं च तस्यास्तस्मिन्नेवाबद्धसंबद्धबुद्धेः ।।
इन्दोर्दीप्त्या दत्तदाहातिरेका यद्यच्छुभ्रं तत्र तत्रापरक्ता ।
सा कर्पूरं दन्तजं कर्णपूरं हारं हासं चेति सर्वं व्यहासीत् ।।[१]

उस नेमि के प्रति संलग्न चित्त वाली उसको चन्द्रमा का बिम्ब गोलाकार अग्नि के प्रस्तर खण्ड की तरह, पुष्पमाला नागिनों की तरह भयंकर और फूलों की सेज चिता के समान प्रतीत होने लगी। चन्द्रमा की कान्ति से अतिशय दाह को प्राप्त होकर वह जो-जो शुभ्र पदार्थ थे, उनसे विरक्त हो गई। उसने कपूर, हाथी दान्त से बने कर्णभूषण, हार और हास्य सभी को त्याग दिया।

रौद्र रसः

रौद्र का स्थायीभाव क्रोध है। शत्रु आलम्बन ओर शत्रु की चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। ओठ चबाना, शस्त्र घुमाना आदि अनुभाव तथा अमर्ष आदि संचारी भाव हैं।

राजा समुद्रविजय के पराक्रम के कारण शत्रु राजा क्रोध से उद्दीप्त हो जाते हैं। उनकी भौहें चढ़ जाती हैं वें आँखे तरेरने लगते हैं। गर्जन, तर्जन करते हैं पर उनका वश नहीं चलता, वे समुद्रविजय के पराक्रम के समक्ष झुक जाते हैं। कवि ने विरोधी राजाओं के रौद्र रूप के साथ समुद्रविजय की वीरता का भी चित्रण किया है। यथा :-

यदर्धचन्द्रापचितोत्तमाङ्गैरुद्दण्डदोस्ताण्डवमादधानैः।
विद्वेषिभिर्दत्तशिवाप्रमोदैः कैः कैर्न दध्रे युधि रुद्रभावः ।।[२]

राजा समुद्रविजय के बाणों से जिनका मस्तक कट गया है, जो रक्षा के लिये अपनी उद्दण्ड भुजाओं को फड़फड़ा रहे हैं तथा भक्ष्य सामग्री प्राप्त होने पर जिन्होंने (शिवा) श्रृगालियों के लिये हर्ष प्रदान किया है, ऐसे कौन-कौन शत्रुओं ने युद्ध में रूद्रभाव को नहीं धारण किया अर्थात् सभी ने किया था।

श्लेष के अनुसार इस पद्य में दूसरा भी अर्थ है - जिनके मस्तक अर्ध चन्द्र से पूजित हैं जो अपनी भुजाओं से उदण्ड ताण्डव नृत्य करते हैं तथा जिन्होंने पति होने के कारण शिवा-पार्वती को हर्ष प्रदान किया है - ऐसे कौन-कौन से शत्रुओं ने युद्ध में रूद्र भाव-महादेवपने

---

१. नेमिनिर्वाण, ११/८, ९ २. वही, १/६१

को धारण नहीं किया था । अर्थात् सभी ने किया था ।

वीर रसः

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । विजय आलम्बन और उसकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं, भुजाओं का फड़कना, आँखों का लाल होना आदि अनुभाव तथा गर्व स्मृति आदि संचारी भाव हैं ।

नेमिनिर्वाण के प्रथम सर्ग में वीरता का समावेश है । उत्साह का संचार रहने से समुद्रविजय के चरित्र में वीरता व्याप्त है । राजा की वीरता के समक्ष शत्रु नरेशों की तीन स्थितियाँ होती थी । चरण सेवा, रण में मृत्यु और वनवास । कवि ने समुद्रविजय की प्रशंसा करते हुये कहा है कि :-

यस्मिन्भुवो भर्तरि सत्यसन्धे त्रयी गतिर्भूमिभृतां बभूव ।
तत्पादसेवा मरणं रणे वा क्वचिन्निवासो विपुले वने वा ।।[१]

सत्य प्रतिज्ञा वाले जिस राजा के पृथ्वी का स्वामी रहने पर राजाओं की तीन गतियाँ हुई - उसके चरणों की सेवा, युद्ध में मृत्यु अथवा गहन वन में निवास ।

यस्मिञ्जगज्जेतरि याचकेभ्यो ग्रामाननन्तान्वितरत्यजस्रम् ।
स्पर्धानुबन्धादिव भूरिदेशत्यागं वितेने यदरातिवर्गः ।।[२]

संसार को जीतने वाले जिस (समुद्रविजय) के रहने पर याचकों के लिये गाँवों को निरन्तर प्रदान किया गया और शत्रुओं के समूह ने मानों स्पर्धा के कारण ही देश-त्याग को प्राप्त किया ।

श्रोतुं यशः कान्तमशक्नुवन्तस्तद्वैरिणो ये युधि मृत्युमीयुः ।
तैः कष्टमश्रावि वधः स्व एव दिव्याङ्गनाभिर्दिवि गीयमानः ।।[३]

उसके (समुद्रविजय के) सुन्दर यश को सुनने में असमर्थ होते हुये उसके जो शत्रु युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हो गये उन्होंने स्वर्ग में देवांगनाओं के द्वारा गाये जाते हुये अपने वध को बड़े कष्ट के साथ सुना ।

करुण रसः

करुण रस का स्थायी भाव शोक है विनष्ट बन्धु आदि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव, दाह कर्मादि, हिंसादि उद्दीपन विभाव, निन्दा रोदन आदि अनुभाव तथा निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं ।

नेमिनिर्वाण में करुण रस को उत्पन्न करने में त्रयोदश सर्ग की एक मुख्य घटना है जिसमें नेमि के विवाह के समय पशुओं के वध के लिये बांधने के कारण उनका चीत्कार शब्द सुनकर नेमि का करुणभाव होना तथा हिंसा आदि को त्याग, ग्लानि, निर्वेद, चिन्ता आदि भावों का प्रकटीकरण है ।

१.नेमिनिर्वाण, १/६२ २. नेमिनिर्वाण, १/६५ १.वही, १/६७

अथो रथाद्यावदियेष नेमिस्तत्रोत्तरीतुं तरुणार्कतेजसा ।
शुश्राव तावत्स विवाहयज्ञे बद्धस्य शब्दं पशुसंचयस्य ।।
श्रुत्वा तमार्तध्वनिमेकवीरः स्फारं दिगन्तेषु स दत्तदृष्टिः ।
ददर्श वाटं निकटे निषण्णः खिन्नाखिलश्वापदवर्गगर्भम् ।।
तं वीक्ष्यपप्रच्छ कृती कुमारः स्वसारथिं मन्मथसारमूर्तिः ।
किमर्थमेते युगपन्निबद्धाः पाशैः प्रभूताः पशवो रटन्तः ।।
श्रीमन्विवाहे भवतः समन्तादभ्यागतस्य स्वजनस्य भुक्त्यै ।
करिष्यते पाकविधेर्विशेष एषां वसाभिः स तमित्युवाच ।।
श्रुत्वा वचस्तस्य स वश्यवृत्तिः स्फुरत्कृपान्तः करणः कुमारः ।
निवारयामास विवाहकर्माण्यधर्मभीरुः स्मृतपूर्वजन्मा ।।[१]

तरुणसूर्य के तेज के साथ कुमार नेमि ने रथ से जैसे ही उतरना चाहा वैसे ही उसने विवाह मण्डप में बन्धे हुये पशुओं के समूह की आवाज को सुना। अतिशय वीर नेमि ने उस आर्तध्वनि को सुनकर दिशाओं में दृष्टि डालकर समीप में ही व्याकुल पशुओं के समूह को देखा। कामदेव के समान आकृति वाले विद्वान् कुमार ने उस पशु-समूह को देखकर अपने सारथी से पूछा कि पाशों से बन्धे हुये रुदन करते हुये ये पशु एक साथ क्यों बाँधे गये हैं? सारथी ने उनसे कहा श्रीमान् जी ! आपके विवाह में चारों तरफ से आये हुये आत्मीय जनों के भोजन के लिये इनकी वसा से विशेष तरह का भोजन बनाया जायगा। उसके वचनों को सुनकर जितेन्द्रिय कृपालु अन्तःकरण वाले एवं अधर्म भीरु उस कुमार ने पूर्वजन्मों का स्मरण करके विवाह कार्य को रोक दिया।

अद्भुत रस :

"अद्भुत" वह रस है जिसे विस्मय के स्थायी भाव का अभिव्यंजन कहा करते हैं। इसका आलम्बन अलौकिक वस्तु है। अलौकिक वस्तु के गुणों का संकीर्तन इसका उद्दीपन है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्‌गदस्वर, संभ्रम, नेत्र-विकास, आदि-आदि इसके अनुभाव हैं। इसमें वितर्क, आवेग, संभ्रम, हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव परिपोषण का काम करते हैं।

नेमिनिर्वाण में आकाश से उतरती हुई देवांगनाओं के वर्णन में अद्भुत रस का समावेश हुआ है।

निरम्बुदे नभसि नु विद्युतः क्वचिन्नु तारकाः प्रकटितकान्तयो दिवा ।
सविस्मयैरिति नितरां जनैर्मुहुर्विलोकिताः पथि पथि बद्धमण्डलैः ।।[२]

बादलरहित आकाश में क्या यह बिजलियाँ हैं अथवा प्रकट-कान्ति वाले तारे हैं। इस प्रकार आश्चर्य युक्त समूह बनाकर लोगों के द्वारा प्रत्येक मार्ग में निरन्तर देवांगनायें देखी गई।

---

१. नेमिनिर्वाण, १३/१-५   २. नेमिनिर्वाण, २/२

नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प

नेमिनिर्वाण का महाकाव्यत्व

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न भेदक तत्त्वों के आधार पर काव्य का विभाजन किया है। आचार्य भामह ने काव्य के भेदों का निरूपण चार मान्यताओं के आधार पर पृथक्-पृथक् चार प्रकार से प्रस्तुत किया है[1] :-

१. छन्द के सद्भाव या अभाव के आधार पर - (क) गद्य, (ख) पद्य
२. भाषा के आधार पर - (क) संस्कृत, (ख) प्राकृत, (ग) अपभ्रंश
३. विषय के आधार पर - (क) ख्यातवृत्त, (ख) कल्पित, (ग) कलाश्रित, (घ) शास्त्राश्रित
४. स्वरूप के आधार पर - (क) सर्गबन्ध, (ख) अभिनेयार्थ, (ग) आख्यायिका, (घ) कथा, (ढ) अनिबद्ध

उपर्युक्त वर्गीकरण स्वरूप के आधार किया गया है। भामह का वर्गीकरण ही प्रायः पश्चात्वर्ती समस्त काव्यशास्त्रियों का आधार बना और वे इसी में कुछ परिवर्तन या परिवर्द्धन के साथ अपना वर्गीकरण प्रस्तुत करते रहे। भामह के इस वर्गीकरण में एक यही दोष है कि उन्होंने खण्डकाव्य को कोई स्थान नहीं दिया है। आचार्य दण्डी कथा और आख्यायिका को अलग-अलग दो भेद न मान कर एक ही के दो नाम मानते हैं।[2] यहाँ केवल महाकाव्य पर विचार करना अभीष्ट है। अतः वर्गीकरण के विषय में अधिक विचार न करके महाकाव्य के बारे में विचार करना ही समीचीन होगा। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए लिखा है :-

"सर्गबद्ध महाकाव्य कहलाता है। वह महान चरित्रों से संबद्ध आकार में बड़ा, ग्राम्य शब्दों से रहित, अर्थ-सौष्ठव से सम्पन्न, अलंकारों से युक्त, सतपुरुषाश्रित, मन्त्रणादूतप्रेषण, अभिमान, युद्ध नायक के अभ्युदय एवं पंच सन्धियों से समन्वित, अनतिव्याख्येय तथा ऋद्धिपूर्ण होता है। चतुर्वर्ग का निरूपण करने पर भी उसमें प्रधानता अर्थ निरूपण की होती है। उसमें लौकिक आचार तथा सभी रस विद्यमान रहते हैं। वंश, बल, ज्ञान आदि गुणों द्वारा नायक का पहले वर्णन करके दूसरे के उत्कर्ष करने की इच्छा से उसका वध वर्णित नहीं करना चाहिए। यदि काव्य में उसकी व्यापकता अपेक्षित न हो अथवा उसे अभ्युदयगामी न बनाना हो तो आरम्भ में उसका ग्रहण और प्रशंसा करना व्यर्थ है।"[3]

भामह द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य का यह लक्षण न केवल प्राचीन है, अपितु संक्षिप्त

---

१. शब्दार्थौ साहितौ काव्य गद्यं पद्यं च तद्द्विधा । संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंशं इति त्रिधा ।।
वृत्तं देवादिचरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च । कलाशास्त्राश्रयंचेति चतुर्धाभिद्यते पुनः ।।
सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे । अनिबद्धंच काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते ।। - काव्यालंकार, १/१६-१८

२. तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्दयांकिता । - काव्यादर्श, १/२८ ३. काव्यालंकार, १/१९-२३

और विद्वानों द्वारा सम्मानित भी है । यद्यपि पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों में कोई न कोई नई बात जरूर जोड़ी है, परन्तु भामह के लक्षणों में कोई भी आवश्यक तत्त्व छूट नहीं पाया है ।

आचार्य दण्डी ने अपने महाकाव्य के लक्षण में भामह के उक्त निकायों का समावेश करते हुये आरंभ में मंगलाचरण (आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक) के होने का तथा आख्यान के ऐतिहासिक अथवा सज्जनाश्रित होने का उल्लेख किया है । उन्होंने महाकाव्य के लक्षण में प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन का निर्देश करते हुए अंगीरस के रूप में श्रृंगार अथवा वीर को ही मान्यता दी है । दण्डी का कथन है कि महाकाव्य में प्रतिनायक के भी उच्च वंश, शौर्य, विद्या आदि की प्रशंसा करनी चाहिए। क्योंकि इससे उसके विजय प्राप्त करने वाले नायक का उत्कर्ष बढ़ता है ।[१]

आचार्य रूद्रट ने अपने महाकाव्य के लक्षण को पर्याप्त विस्तार के साथ दिया है । अपने लक्षण में उन्होंने भारतीय संस्कृति के भण्डार रामायण और महाभारत को भी महाकाव्य की कोटि में लाने का संस्तुत्य प्रयास किया है । उनकी एक और अपनी विशेषता यह है कि उन्होंने मूल कथानक के मध्य में अन्य अवान्तर कथानकों के समावेश का भी निर्देश किया है । शेष बातों में रूद्रट ने भामह और दण्डी का ही अनुसरण किया है ।[२]

आचार्य हेमचन्द्र ने भी महाकाव्य के लक्षण में अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का ही अनुसरण किया है । परन्तु यह उनकी अपनी विशेषता है कि उन्होंने बहुत ही कम शब्दों में सूत्रात्मक शैली में महाकाव्य के समस्त तत्त्वों का समावेश कर दिया है ।[३]

आचार्य हेमचन्द्र ने शब्द वैचित्र्य को महाकाव्य का आवश्यक तत्त्व मानते हुये उसके अन्तर्गत दुष्कर चित्रालंकार एवं अन्य शब्दावलियों के ग्रहण के साथ ही काव्य के अन्त में स्वाभिप्राय, स्वनाम, इष्ट नाम अथवा मंगल के अंकित होने का समावेश किया है ।[४] इस प्रकार इनके महाकाव्य के लक्षण में नये तत्वों का समावेश हुआ है ।

अन्य आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों में कोई नवीन उद्घाटना दृष्टिगोचर नहीं होती है । अतएव केवल आचार्य विश्वनाथ के महाकाव्य के लक्षण का ही उल्लेख करना समीचीन होगा । क्योंकि विश्वनाथ का लक्षण सर्वांग एवं विद्वानों द्वारा मान्य है ।

जिसमें सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है । इसका धीरोदात्त नायक के

---

१. काव्यादर्श, १/१४-२२
२. द्र० काव्यालंकार, १६/२-१९
३. छन्दोविशेषरचितं प्रायः संस्कृतादिभाषानिबद्धैर्भिन्नान्त्यवृत्तैर्यथासंख्यं सर्गादिभिर्निर्मितं सुश्लिष्टमुखप्रतिमुखगर्भनिर्वहणसन्धिसुन्दरं शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम् ।। - काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ३९५
४. शब्दवैचित्र्यं यथा - असंक्षिप्तग्रन्थत्वम् अविषमबन्धत्वम्, अनतिविस्तीर्णपरस्परनिबद्धसर्गादित्वम्, आशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशोपक्रमत्वम्, वक्तव्यार्थतत्प्रतिज्ञानतत्प्रयोजनोपन्यासकविप्रशंसासुजनदुर्जनस्वरूपवदादिवाक्यत्वम्, दुष्करचित्रादिसर्गत्वम्, स्वाभिप्रायस्वनामेष्टनाममंगलांकितसमाप्तित्वम् । - काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ४०१

गुणों से सम्पन्न देवता अथवा सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय नायक होता है। कहीं-कहीं एक ही कुल में उत्पन्न अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं। श्रृंगार, वीर अथवा शान्त में से कोई एक रस अंगी (प्रधान) होता है तथा अन्य सभी रस गौणरूप में रहते हैं। इसमें नाटक की पाँचों सन्धियाँ रहती हैं। इसका कथानक ऐतिहासिक, अथवा सज्जनाश्रित होता है। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में से कोई एक इनका फल होता है। आरम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद अथवा कथावस्तु का निर्देश होता है। कहीं-कहीं दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा की जाती है। इसमें न तो बहुत ही छोटे और न बहुत ही बड़े कम से कम आठ सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होता है किन्तु सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन कर दिया जाता है। किसी सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में भावी कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, षड्ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासंभव सांगोपांग वर्णन होता है। महाकाव्य का नाम कवि के नाम से, वर्ण्य चरित के नाम से अथवा चरित-नायक के नाम से होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर भी नाम हो सकता है। वर्णनीय कथानक के अनुसार सर्ग का नाम भी रखा जाता है।[१]

उक्त लक्षण में यह बात अवश्य खटकती है कि विश्वनाथ के मतानुसार महाकाव्य का नायक कोई देव या सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिये। यदि इस बात को मान लिया जाये तो संस्कृत के शंकरदिग्विजय, दयानन्ददिग्विजय आदि काव्य महाकाव्य की श्रेणी में नहीं आ पायेंगे। आचार्य भामह ने महापुराण के चरित्र को ही महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्त्व माना है। अतएव विश्वनाथ के 'सद्वंशः क्षत्रियो वापि' को महान् चरित्र का ही उपलक्षण मानना चाहिए।

किसी भी महाकाव्य में उपर्युक्त सभी लक्षणों का समावेश अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि आचार्यों ने तो किसी एक महाकाव्य को अपना आदर्श मानकर लक्षण का निर्माण किया है।

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः । सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदत्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा । श्रृंगारवीरशान्तानामेकोऽगी रस इष्यते ।।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः । इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् । आदौ नमस्त्रियाशीर्वादवस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् । एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गाष्टाधिका इह । नाना-वृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन् दृश्यते ।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् । संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः । संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्राभ्युदादयः । वर्णनीया यथायोगं सांगोपांग अमी इह ।।
कवेर्वृतस्य वा नाम्ना नामकस्येतरस्य वा । - साहित्यदर्पण. ६/३१५-३२४

अतएव उक्त लक्षणों के आधार पर महाकाव्य के कुछ सामान्य स्वरूपाधायक तत्त्वों का निर्देश कर देना उचित होगा ।

(१) महाकाव्य का कथानक सर्गबद्ध हो, जिसमें कम से कम आठ सर्ग हों । कथानक को ऐतिहासिक या सज्जनाश्रित होना चाहिए तथा उसमें नाटक की पाँचों सन्धियाँ विद्यमान हों ।

(२) महाकाव्य के प्रारम्भ में त्रिविध मंगलाचरणों - नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देश में से कोई एक मंगलाचरण हो । मंगलाचरण के बाद कथानक के प्रारम्भ में पहले यदि दुर्जन-निन्दा और सज्जन प्रशंसा हो तो अच्छा है ।

(३) श्रृंगार, वीर अथवा शान्त में से कोई एक रस अंगी हो, शेष रसों का प्रयोग अंग रूप में हुआ हो ।

(४) देवता, सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय अथवा कोई महान् चरित्र ही महाकाव्य का नायक हो सकता है । कहीं-कहीं एक वंश के अनेक राजा भी नायक हो सकते हैं ।

(५) महाकाव्य का नामकरण कवि, वर्णनीय कथावस्तु अथवा नायक के नाम पर होना चाहिए ।

(६) प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग परन्तु सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन हो । किसी सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है ।

(७) किसी एक सर्ग में विभिन्न चित्रालंकारों और अन्य शब्दालंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया गया हो, तो अच्छा है ।

(८) महाकाव्य में प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत नगर, वन, प्रातःकाल, चन्द्रोदय, सूर्योदय, युद्ध तथा षड्ऋतु का यथासंभव सांगोपांग वर्णन किया गया हो ।

(९) काव्य का अन्य स्वाभिप्रायांकित, स्वनामांकित, इष्टनामांकित अथवा मंगलांकित होना चाहिये ।

(१०) चतुर्वर्ग - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक महाकाव्य का फल होता है ।

अब यहाँ पर उक्त तत्त्वों के आधार पर 'नेमिनिर्वाण' के महाकाव्यत्व की समीक्षा प्रस्तुत है ।

'नेमिनिर्वाण' की कथावस्तु १५ सर्गों में विभक्त है । इसका कथानक ऐतिहासिक है। यह गुणभद्र के उत्तरपुराण तथा जिनसेन के हरिवंशपुराण से लिया गया है । इसमें नाटक की पाँचों सन्धियाँ मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण का यथा-स्थान प्रयोग हुआ है । काव्य का प्रारम्भ मंगल शब्द "श्री" शब्द के साथ हुआ है तथा २४ तीर्थङ्करों की क्रमशः वन्दना की गई है । अतएव यहाँ नमस्कारात्मक मंगलाचरण है । साथ ही कवि ने तीर्थङ्कर नेमिनाथ की स्तुति करते हुए कथानक का भी निर्देश कर दिया है, अतः वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण भी माना जा सकता है । महाकाव्य की परम्परा के अनुसार 'नेमिनिर्वाण' में दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा भी की गई है ।

'नेमिनिर्वाण' में यथावसर सभी रसों का विन्यास हुआ है, परन्तु अंगीरस शान्त है अंगरूप में उभयविध श्रृंगार, वीर, भयानक, करुण, रौद्र, अद्भुत आदि रसों का प्रयोग हुआ है। नेमिनिर्वाण महाकाव्य के नायक धीरोदत्त क्षत्रिय कुल में उत्पन्न जैन धर्म के बाईसवें तीर्थङ्कर (यदुवंशी) नेमि हैं।

'नेमिनिर्वाण' का नामकरण चरित नायक 'नेमि' के नाम पर किया गया है। उसके प्रत्येक सर्ग का प्रारम्भ एक छन्द से हुआ है तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी किया गया है। 'नेमिनिर्वाण' में आर्या, सोमराजी, शशिवदना, अनुष्टुप्, विद्युन्माला, प्रमाणिका, हंसरुत, माद्यद्भृंग, मणिरंग, बन्धूक, रूक्मवती, मत्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, भ्रमरविलसिता, स्त्री, रथोद्धता, शालिनी, अच्युत, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, कुसुमविचित्रा, स्रग्विणी, मौक्तिकदाम, तामरस, प्रमिताक्षरा, भुजंगप्रयात, प्रियंवदा, तोटक, रुचिरा, नन्दिनी, चन्द्रिका, मजुंभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलका अशोकमालिनी, प्रहरणकलिका, मालिनी, शशिकलिका, शरमाला, हरिणी, पृथ्वी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा, चण्डवृष्टि, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा इन ५० छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा अनुप्रास, यमक तथा श्लेष आदि शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है।

'नेमिनिर्वाण' में प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत कवि ने वन, नगर, नदी, चन्द्रोदय, सूर्योदय, प्रातः, मध्याह्न, सायं, रात्रि, ऋतु आदि का वर्णन बड़ा ही मनोहर किया है।

इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों का वर्णन हुआ है। किन्तु काव्य का प्रधान रस शान्त होने से मुख्य फल मोक्ष (निर्वाण) रूप चतुर्थ पुरुषार्थ है।

'नेमिनिर्वाण' में जातीय गुणों, सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों और परम्परागत अनुभवों का पुंजीभूत रसात्मक रूप पाया जाता है इसमें युद्ध और भंयकर यात्रा जैसे साहसिक कार्य भले ही न हो पर जीवन के विविध क्षेत्र और विभिन्न मानसिक दशाओं का चित्रण किया गया है। घटना प्रवाह के क्षीण होने पर भी अलंकृत वर्णनों की प्रधानता है। कवि ने जीवन के विभिन्न व्यापारों और परिस्थितियों के चित्रण में पुत्र चिन्ता, प्रेम, विवाह, कुमारोदय, मधुपान, गोष्ठी, वन विहार, जलक्रीड़ा, आदि का निरूपण किया है। कवि ने युग जीवन का चित्रण वस्तु व्यापारों और परिस्थितियों के द्वारा प्रस्तुत किया है।

महाकाव्य के समस्त शास्त्रीय लक्षणों के साथ अलौकिक और अति प्राकृतिक तत्त्व भी निहित हैं। मानव मात्र के हृदय में प्रतिष्ठित धार्मिक वृत्तियों पौराणिक और अन्धविश्वासों का भी कवि ने इस काव्य में ग्रन्थन किया है।

उक्त सभी विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'नेमिनिर्वाण' में महाकाव्य के सभी लक्षण भली भाँति घटित हुये हैं। अतएव 'नेमिनिर्वाण' शास्त्रीय दृष्टि से एक सफल महाकाव्य है। महाकवि वाग्भट ने 'नेमिनिर्वाण' में महाकाव्य का कोई भी आवश्यक वर्ण्य विषय नहीं छोड़ा है।

नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प

छन्द-योजना

व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार 'छन्दयति चदि असून्' अर्थात् जो प्रसन्न करे उसी को छन्द कहते हैं। बहुत से कोषकारों ने छन्द को पद्य का पर्याय माना है। साहित्यदर्पणकार ने भी 'छन्दोबद्धं पदं पद्यम्' अर्थात् विशिष्ट छन्द में बन्धे हुये पद को पद्य कहा है। ये छन्द लघु, गुरु, स्वर या मात्रा की नियमित वर्ण योजना से बनते हैं।

कवि अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये गद्य की अपेक्षा पद्य का आश्रय अधिक लेता है, क्योंकि अपने अभिप्राय को चमत्कृति एवं प्रभावपूर्ण ढंग से उपस्थित करने के लिये पद्य का माध्यम अधिक सुकर है। पद्यों की सहायता से ही अधिकांश प्राचीन भारतीय साहित्य शिष्य-परम्परा के माध्यम से जीवित बचा रहा है। संस्कृत भाषा में तो पद्यों (छन्दों) का अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत की यह अपनी विशेषता है कि इसमें गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति जैसे नीरस विषय भी छन्दोमय होकर मनोरम, मृदुल एवं आकर्षक लगने लगते हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भावानुरूप छन्दों के निवेश को उचित बतलाते हुये कहा है कि :-

वृत्तरत्नावली कामादस्थाने विनिवेशिता। कथयत्यज्ञतामेव मेखलेव गले कृता ॥[१]

अर्थात् अनुचित स्थान पर किया गया छन्दों का प्रयोग गले में धारण की गई मेखला की तरह कवि की अज्ञता का ही बोध करता है। अतः स्पष्ट है कि छन्दों का प्रयोग भी वर्णन के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

काव्य में छन्द योजना ऐसी होती है कि जो रस और भाव के अनुकूल होती है। संसार में कथायें तीन रूपों में मिलती हैं :- (१) पद्य, (२) गद्य, और (३) गीत। वेद को भी छान्दस् कहा है, किन्तु वेद की भाषा भी तीनों रूपों में मिलती है। वैदिक साहित्य में केवल सात ही छन्दों का प्रयोग हुआ है :- (१) गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप (४) वृहती (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप् और (७) जगती।

कात्यायन ने आगे चलकर इनके भी बहुत से भेद कर डाले हैं। इन्हीं सात प्रकार के वैदिक छन्दों के आधार पर पीछे के कवियों ने जो बहुत से छन्द बना लिये हैं, उन्हें लौकिक छन्द कहते हैं। इसीलिये छन्दों के दो भेद हुये हैं - वैदिक और लौकिक।

छन्दों को देखने से प्रतीत होता है कि स्मृति में स्थिर रखने के लिए तथा पढ़ने में प्रवाह, सुगमता, मधुरता और गति प्राप्त करने के लिये छन्दों की सृष्टि की गई है। इसीलिये छन्द

---

१. सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास, १३

उस शब्द योजना को कहते हैं, जो किसी विशेष नियम से अक्षर या मात्राओं के बन्धन में बन्धी हुई चलती हो ।

लौकिक छन्दःशास्त्र पर अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, किन्तु उनमें से महर्षि पिंगल का बनाया हुआ ग्रन्थ ही सबसे प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है । पिंगलाचार्य ने अपने महाग्रन्थ में एक करोड़ सड़सठ लाख सतहत्तर सहस्र दो सौ सोलह प्रकार के वर्णन पदों का उल्लेख किया है, जिनमें से लगभग पचास छन्द ही लौकिक संस्कृत काव्यों में प्रयुक्त हुये हैं ।

छन्द दो प्रकार के होते हैं :- (१) मात्रिक और (२) वर्णिक । मात्रिक छन्द उसे कहते हैं, जिसके प्रत्येक चरण की नाप मात्राओं की गिनती से, तथा वर्णिक छन्द वह है, जिसके प्रत्येक चरण की नाप वर्णों या अक्षरों की गिनती से की जाये ।

जिन छन्दों के चारों चरणों के वर्ण या उनकी मात्रायें समान हों, उन्हें समवृत्त कहते हैं । जिनके पहले-तीसरे और दूसरे-चौथे वर्णों की मात्रायें या वर्ण समान हों, उन्हें अर्द्धसम कहते हैं । जिन छन्दों के चारों चरणों की मात्राओं या वर्णों की संख्या भिन्न-भिन्न हो उन्हें विषमवृत्त कहते हैं ।

छन्दों की योजना अथवा गीतों की योजना रस और भाव के अनुसार होनी चाहिये । महाकवि क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक ग्रन्थ में छन्द-योजना के सम्बन्ध में एक विशेष पद्धति की स्थापना करते हुए कहा है

"सर्ग के प्रारम्भ में कथा के विस्तार में और शान्तिपूर्ण उपदेश में सज्जन लोग अनुष्टुप् का प्रयोग करते हैं । उपजाति छन्द में श्रृंगार तथा उसके आलम्बन नायक, नायिका के रूप का वर्णन और वसन्त ऋतु तथा उसके अंगों का वर्णन किया जाता है । विभाव अर्थात् चन्द्रोदयादि उद्दीपन में रथोद्धता छन्द का और षाड्गुण्य-नीति का वर्णन वंशस्थ में शोभा देता है । वीर और रौद्र के मेल के लिये वसन्ततिलका और सर्ग के अन्त में मालिनी का प्रयोग किया जाना चाहिये । परिच्छेद या विषय विभाजन के लिये शिखरिणी का प्रयोग किया जाय तथा उदाहरण, रूचि और औचित्य का विचार करने के लिए हरिणी का प्रयोग हो । राजाओं के द्वारा क्रोध तथा धिक्कार और वर्षा, प्रवास तथा दुःख में मन्दाक्रान्ता छन्द, राजाओं का शौर्य वर्णन करने में शार्दूल विक्रीडित, आंधी के वर्णन में स्रग्धरा एवं दोधक तथा मुक्तक सूक्तियों के लिये तोटक और नर्कुट छन्द होना चाहिये ।

इस छन्द योजना के अनुसार महाकवि वाग्भट ने नेमिनिर्वाण में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है । विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने में महाकाव्यकार अतिकुशल हैं । वस्तुतः कवि ने सभी छन्दों का प्रयोग इस काव्य में किया है और कुछ ऐसे छन्द भी प्रयोग किये हैं, जिनका पता 'वृत्तरत्नाकर' के प्रणेता केदारभट्ट को भी नहीं था । कुछ छन्द ऐसे भी हैं, जिनका प्रयोग कालिदास भारवि, माघ तथा पश्चात्वर्ती वीरनन्दि और अर्हद्दास आदि के महाकाव्यों में भी नहीं मिलता ।

महाकवि वाग्भट की छन्द योजना अति विस्मयकारी है। नेमिनिर्वाण के सातवें सर्ग में छन्दप्रयोग करने में कवि ने विशेषता प्रकट की है। पद्य में जिस छन्द का प्रयोग किया है, छन्द नाम भी उसी में प्रस्तुत किया है और कवि ने सर्ग में वर्णित ५५ पद्यों में ४३ छन्दों का प्रयोग करके एक विशेष छन्द कला प्रस्तुत की है।

नेमिनिर्वाण में प्रयोग किये गये छन्द इस प्रकार हैं - आर्या, सोमराजी, शशिवदना, अनुष्टुप्, विद्युन्माला, प्रमाणिका, हंसरुत, माद्यद्भृङ्ग, मणिरंग, बन्धूक, रुक्मवती, मत्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, भ्रमरविलसिता, स्त्री, रथोद्धता, शालिनी, अच्युत, वशंस्थ, द्रुतविलम्बित, कुसुमविचित्रा, स्रग्विणी, मौक्तिकदाम, तामरस, प्रमिताक्षरा, भुजङ्गप्रयात, प्रियंवदा, तोटक, रुचिरा, नन्दिनी, चन्द्रिका, मंजुभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलका, अशोक-मालिनी, प्रहरणकलिका, मालिनी, शशिकलिका, शरमाला, हरिणी, पृथ्वी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, चण्डवृष्टि, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा।

उक्त छन्दों का पृथक्-पृथक् विवरण एक-एक उदाहरण के साथ यहाँ प्रस्तुत है। इनमें वर्णिक छन्दों का क्रम सम, अर्धसम और विषम में विभक्त कर वर्णगणना के आधार पर किया गया है।

(१) आर्या : यह मात्रिक छन्द है जिसके पहले और तीसरे पाद में बारह मात्रायें हो, दूसरे में अठारह और चौथे में पन्द्रह मात्रायें हो वह आर्याछन्द है।

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या ।।[१]

यथा -

मुनिगण सेव्या गुरुणा युक्तार्या जयति सामुत्र ।
चरणगतमखिलमेव स्फुरतितरा लक्षणं यस्याः ।।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल :-

सप्तम सर्ग : १

(२) शशिवदना: यह छः वर्णों का वृत्त है। इसके प्रत्येक पाद में एक नगण और एक यगण होता है।[३] यथा -

वनमिह दृष्ट्वा कुसुमसमृद्धम्। चरति नगं किं 'शशिवदनान्यम्' ।।[४]

(३) सोमराजी: यह छन्द, छन्दः शास्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। यह छः वर्णों का छन्द है जिसमें क्रमशः दो मगण होते हैं।[५] यथा -

शिवाश्लिष्टकायः परित्यक्तमायः । अयं 'सोमराजी' क्षपायां नरेशः ।।[६]

---

१. श्रुतबोध, ४
२. नेमिनिर्वाण, ७/२
३. शशिवदना न्यौ, वृ० र०, ३/८०
४. नेमिनिर्वाण, ७/३
५. द्विया सोमराजी/संस्कृत हिंदी कोष (आप्टे) परिशिष्ट, पृ० ११८७
६. नेमिनिर्वाण ७/४४

(४) **अनुष्टुप:** इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। चारों चरणों में छठा अक्षर गुरु होता है तथा पाँचवा लघु होता है। दूसरे और चौथे चरण में सातवां अक्षर ह्रस्व तथा प्रथम और तृतीय चरण में सातवां अक्षर दीर्घ होता है। उसे श्लोक या अनुष्टुप् छन्द कहते हैं।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।[१]

यथा -

अथ क्रीडागिरौ तत्र विचित्रतरुसंततौ। चेलुर्वनविहाराय माधवाः सावरोधनाः ।।[२]

नेमिनिर्वाण में अनुष्टुप् प्रयोग के अन्य स्थल -

चतुर्थ सर्ग - ६१, षष्ठ सर्ग - ४८, अष्टम सर्ग - २ से ७९ तक,
एकादश सर्ग - ५७, द्वादश सर्ग - १ से ६९ तक, पंचदश सर्ग - १ से ८४ तक

नेमिनिर्माण काव्य में अनुष्टुप् छन्द का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

(५) **विद्युन्माला:** यह आठ-आठ वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः मगण, मगण तथा दो गुरु होते हैं।[३] यथा -

'विद्युन्माला' दण्डोद्दामश्रीकाः कामं मेघा नाम।
कृष्णच्छत्रच्छायां तुङ्गा बिभ्रत्यस्मिन्नेते नागाः ।।[४]

(६) **प्रमाणिका :** यह आठ वर्णों का वृत्त है। जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, रगण, लघु और गुरु होते हैं। उसे प्रमाणिका कहते हैं।[५] यथा -

इहावहन्न का तटी जलेरुहां रजो गिरौ।
विभो सदा सुराचलप्रमाणिका सुवर्णगौः ।।[६]

(७) **हंसरूत :** इस वृत्त में आठ-आठ वर्ण होते हैं। इसमें क्रमशः मगण, नगण तथा दो गुरु होते हैं।[७] यथा -

कासारेष्विह हि निम्नक्षीरापूररुचिरेषु।
गौराङ्गी हृदि रतेच्छां दत्ते हंसरुतमीश ।।[८]

(८) **माद्यद्भृंग :** यह छन्द, छन्दः शास्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। वाग्भट ने श्लोक में इसे माद्यद्भृंग नाम से उल्लिखित किया है यह नो वर्णों का वृत्त है जिसके प्रत्येक पाद में क्रमशः एक भगण, दो मगण हो वह माद्यद्भृंग कहलाता है। यथा -

प्राप्य वसन्तं हर्षादम्भः पूर्णनदीके 'माद्यद्भृङ्गम्'।
अत्र गिरीन्द्रे श्रीमन्नागं क्रीडति नित्यं दिव्यं युग्मम् ।।[९]

---

१. श्रुतबोध, १० २. नेमिनिर्वाण, ८/१ ३. मो मो गो गो विद्युन्माला। वृ० र०, ३.९२
४. नेमिनिर्वाण, ७/५ ५. प्रमाणिका जरौ लगौ। वृ० र०, ३/९८ ६. नेमिनिर्वाण, ७/७
७. म्नौ गौ हंसरुतमेतत्। वृ० र०, ३/९४ ८. नेमिनिर्वाण, ७/९ ९. नेमिनिर्वाण, ७/८

(९) मणिरंग : यह दश-दश वर्णो का वृत्त है। इस छन्द में क्रमशः रगण, सगण, सगण, गुरु होता है। इसे मणिराग भी कहा जाता है।[१] यथा -

अङ्गहारविधौ सुरवध्वा प्रस्तुते सविधस्थिततारम् ।
विभ्रतस्तपनामृतभासौ कोऽस्य नैव तटो मणिरुङ्गः[२] ।।

(१०) बन्धूक : यह छन्द, छन्दः- शास्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। वाग्भट ने श्लोक में इसे बन्धूक नाम से उल्लिखित किया है। यह १० वर्णों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में दो भगण, एक मगण और अन्त में एक गुरु होता है। यथा -

अत्र महीभृति भूभृन्नाभौ गौत्रविभूषण पुष्प्यत्युच्चैः ।
काननराजिमुखेषु व्यक्तामोष्ठदलाकृतिकां बन्धूकम् ।।[३]

(११) रुक्मवती : इस वृत्त में क्रमशः भगण, मगण, सगण तथा गुरु होता है। यह दश-दश वर्णों का वृत्त है।[४] यथा -

चम्पकचूतैर्भूतलभागप्रापितपादैरत्र समस्ता ।
केन न जज्ञे सिंहनिनादक्ष्माभृति भूमी 'रुक्मवतीयम्' ।।[५]

(१२) मत्ता : यह दश-दश वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः मगण, भगण, सगण तथा गुरु होता है।[६] यथा -

का न श्रीमन्नभिनवकामव्यालश्रेणी कलयति कुम्भौ ।
अस्मिन्मत्ता वरमणिजालौ वन्या लक्ष्मीरिव कुचतुङ्गौ ।।[७]

(१३) इन्द्रवज्रा : यह वर्णिक छन्द है। वर्णों की संख्या के अनुसार इन्द्रवज्रा में ग्यारह वर्ण होते हैं, जिसमें तगण, तगण, जगण, एवं दो गुरु होते हैं।[८] यथा -

पद्मासनस्थः स्फुटपद्मनेत्रः पद्मारुणश्रीधृति पद्मलक्ष्मा ।
पद्मप्रभो नः प्रभवेऽस्तु नित्यं पद्माप्रदानोद्यतपाणिपद्मः ।।[९]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग -	८, १२, १८, २२, २९, ३४, ३९, ४८, ६३, ६४, ६५, ६७, ७९, ८०
षष्ठ सर्ग -	४६
सप्तम सर्ग -	१७
एकादश सर्ग -	५६
त्रयोदश सर्ग -	११, २३, ४४, ४७, ५०, ५२, ५४, ६३, ७०, ७२, ७५, ८२, ८३

---

१. रश्च सौ सगुरुर्मणिरागः । वृत्तरत्नाकर, ३/१०९ २. नेमिनिर्वाण, ७/१३ ३. वही, ७/४
४. भ्मौ सगयुक्तौ रुक्मवतीयम् ।। वृ० र०, ३/१०५ ५. नेमिनिर्वाण, ७/१०
६. ज्ञेयामत्ता म-भ-स-ग युक्ता ।। वृ० र०, ३/१०६ ७. नेमिनिर्वाण, ७/११
८. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौसजगौ गः, वृ० र०, ३/११४ ९. नेमिनिर्वाण, १/६

(१४) उपेन्द्रवज्रा : इस छन्द में ग्यारह वर्ण होते हैं और क्रमशः जगण, तगण, जगण, और दो गुरु होते हैं।[१] काव्यात्मक वर्णनों के लिए यह उपयोगी वृत्त है। यथा -

एकः प्रकृत्या जगतोऽनुकूलः प्रकाशमन्यः प्रतिकूल एव ।
अतः सतोऽनाप्यसतोऽनुवृत्तौ विशेषशाली भवति प्रंयत्नः ।।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ५६
नवम सर्ग - ५६
त्रयोदशसर्ग - १९, २९, ५५, ५८

(१५) उपजाति : यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रित रूप है। इसमें एक, दो या तीन चरण इन्द्रवज्रा या उपेन्द्रवज्रा के होते हैं। इस प्रकार उपजाति अनेक प्रकार की हो जाती है।[३]

१. उपजाति बुद्धि : इस छन्द में चारों पादों में क्रमशः इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होते हैं।[४] यथा -

श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखा : सुखानि प्रथयन्तु ते वः ।
समं नमन्नाकिशिरः किरीटसंघट्टविस्रस्तमणीयितं यैः ।।[५]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ९, २८, ५०, ७७
त्रयोदशसर्ग - ५१, ७४, ७७

२. उपजातिशाला : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होते हैं।[६] यथा -

निःशेषविद्येश्वरमाश्रयामि तं बुद्धिहेतोरजितं जिनेन्द्रम् ।
अवादि सर्वानुपघातवृत्त्या येनागमः संगमितस्थितार्थः ।।[७]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - १६, १७, २३, ३१, ३६, ४७
त्रयोदश सर्ग - २, ३, २४, ३१, ४५, ५२, ६४, ६५, ६६, ७१, ७३

---

१. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ - वृ० र० ३/११५
२. नेमिनिर्वाण, १/२६
३. 'एतयोः परयोश्च संकर उपजाति' एतयोः - इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयो ...
४. द्र० - वृत्तरत्नाकर, उपजाति पर पंचिका, पृ० १६३, छन्दोनुशासन, २/१५६
५. नेमिनिर्वाण, १/१
६. द्र० - वृत्तरत्नाकर, उपजाति पर पंचिका, पृ० १६१
७. नेमिनिर्वाण, १/२

३. उपजातिवाणी : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होते हैं।[१] यथा -

आदित्यचक्रेण कृतैककालप्रदक्षिणप्रक्रमणेन भक्त्या।
लुप्तेव नालोक्यत यस्य कायच्छाया स वः पातु जिनस्तृतीयः ।।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ४, २४, ४१, ६९

त्रयोदश सर्ग - १७, ३२, ४३, ६२, ८०

४. उपजाति आर्द्रा : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[३] यथा -

अपारसंसारसमुद्रनावं देयाद्दयालुः सुमतिर्मतिं नः।
नित्यप्रियायोगकृते यदन्ते तपस्यतीवाविरतं रथाङ्गः ।।[४]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ३०, ३८, ६०, ७४

त्रयोदश सर्ग - ३०, ६९

५. उपजाति रामा : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[५] यथा -

स्वस्ति क्रियात्स्वस्तिकलाञ्छनो नः स्तम्भायमानोरुभुजः सुपार्श्वः।
विडम्बयामास विलासवेश्मश्रियं सदा यःकरुणातरुण्याः ।।[६]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - २५, ३२, ४३, ४९

त्रयोदश सर्ग - ४, ५, ६, १४, २२, ३७, ४९

६. उपजाति माया : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[७] यथा -

मूर्ध्नामुहुश्चुम्बितभूतलेन तं शीतलं देवमहं नमामि।
यस्मिन्मनोवर्तिनि सर्वतोऽसौ निवर्तते दुर्गतिदुःख तापः ।।[८]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - १३, १५, ५२, ५५, ५६

त्रयोदश सर्ग - ७, १०, १३, १५, १६, २५, ५६

---

१. द्रष्टव्य - वृत्त रत्नाकर, उपजाति पर पंचिका, पृ० १६०
२. नेमिनिर्वाण, १/३
३. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६३
४. नेमिनिर्वाण, १/५
५. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६४
६. नेमिनिर्वाण, १/७
७. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६१
८. नेमिनिर्वाण, १/१०

७. उपजाति कीर्ति : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा इन्द्रवज्रा होते हैं ।[१] यथा -

सुवर्णवर्णद्युतिरस्तु भूत्यै श्रेयान्विभुर्वो विनताप्रसूतः ।
उच्चैस्तरां यः सुगतिं ददानो विष्णोः सदानन्दयति स्म चेतः । ।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - २१, ३५, ३७, ४४, ५४, ६१, ७०, ७२, ७६

त्रयोदश सर्ग - १, ४०, ४८, ८१

८. उपजाति भद्रा : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं ।[३] यथा -

ज्योतिर्गणैः संततसेव्यमानमनन्तमाकाशमिव स्तवीमि ।
सूर्यायते यत्र विभावितानं निशाकरत्यानन मण्डलं च । ।[४]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथग सर्ग - ४०, ५१, ६२, ७८

त्रयोदश सर्ग - २६, ६१

९. उपजाति हंसी : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रपज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होता है ।[५] यथा -

तपः कुठारक्षतकर्मवल्लिर्मल्लिर्जिनो वः श्रियमातनोतु ।
कुरोः सुतस्यापि न यस्य जातं दुःशासनत्वं भुवनेश्वरस्य । ।[६]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ३३, ७१, ७३

त्रयोदश सर्ग - २०, २१, ३३, ३४, ३८, ६८, ७८

१०. उपजाति माला : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होते हैं ।[७] यथा -

व्रते मतिं श्रीमुनिसुव्रताख्यस्त्रिकालविद्वो विदधातु तुष्टः ।
अन्तर्निरुध्यान्न पयः प्रचारं येनात्मदुर्गादरिचक्रमस्तम् । ।[८]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ४२, ४५, ५७

त्रयोदश सर्ग - ९, १२, २८, ३६, ३९, ४१, ४२, ४६, ७६

---

१. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६० २. नेमिनिर्वाण, १/११ ३. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६३
४. नेमिनिर्वाण, १/१४ ५. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६३ ६. नेमिनिर्वाण, १/१९
७. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६२ ८. नेमिनिर्वाण, १/२०

११. उपजाति ऋद्धि : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[1] यथा -

गुणप्रतीतिः सुजनाज्जनस्य दोषेष्ववज्ञा खलजिल्पतेषु।
अतो ध्रुवं नेह मम प्रबन्धे प्रभूतदोषेऽप्ययशोवकाशः।।[2]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ५३

त्रयोदश सर्ग - ८, ५७, ६७

१२. उपजाति प्रेमा : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[3] यथा -

उदन्वता नित्यविलोलवीची करोपदिष्टाभिनयक्रियेव।
प्रासादचूलानिहितैश्चलद्भिर्ननर्त या केतुभुजैरजस्रम्।।[4]

प्रयोग के अन्य स्थल -

त्रयोदश सर्ग - ५९, ६०, ७९

१३. उपजाति जाया : इस छन्द में क्रमशः उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा होते हैं।[5] यथा -

भविष्यतस्तीर्थङ्करस्य नेमेर्निमित्तमत्यन्तमनोहरश्रीः।
कृतिः सुराणां ससुरेश्वराणां या प्राप सौरीति ततः प्रसिद्धिम्।।[6]

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ७५, ८१

त्रयोदश सर्ग - १८

१४. उपजाति बाला : इस छन्द में क्रमशः इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा होते हैं।[7] यथा -

सद्रत्नरत्नाकरचारुकाञ्चीं महीमिवान्यां यदुवंशवन्द्यः।
अपालयत्तां विजयाभिधानं नृपः समुद्रोपपदं दधानः।।[8]

प्रयोग के अन्य स्थल -

त्रयोदश सर्ग - २७, ३५

---

१. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६२ २. नेमिनिर्वाण, १/२७ ३. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६१
४. नेमिनिर्वाण, १/४६ ५. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६१ ६. नेमिनिर्वाण, १/५८
७. वृत्तरत्नाकर पंचिका, पृ० १६२ ८. नेमिनिर्वाण, १/५९

(१६) भ्रमर विलसिता: यह ग्यारह वर्णों का छन्द है, जिसमें क्रमशः मगण, भगण, नगण तथा लघु गुरु होते हैं ।[१] यथा -

गौरा नित्यभ्रमरविलसिता, नव्याब्दानां ततिरतिसरसा ।
एषा क्षिप्ता खलु नगगुरुणा, शङ्के दृष्टिस्त्वयि सविकसना । ।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल - सप्तम सर्ग - ५०

(१७) स्त्री: यह ग्यारह वर्णों का वृत्त है, इसमें क्रमशः भगण, तगण, नगण, तथा २ गुरु होते हैं । पांचवे तथा छठे वर्णों पर यति होती है ।[३] यथा -

भव्यजनानां विरचितयत्न प्रांशुतटोर्वीस्थलकमलेषु ।
गौरवसीम्नि क्रियत इहोर्ध्वैःप्रत्यवबोधो दिनकर पादैः । ।[४]

(१८) रथोद्धता: यह ग्यारह वर्णों का छन्द है । क्रमशः रगण, नगण, रगण, तथा एक लघु एवं एक गुरु होता है ।[५] यथा -

मौक्तिकेन शुचिकान्तिशोभिना गर्भवासनिभृतेन तेन सा ।
सिन्धुशुक्तिरिव शोभनीयतां नीयते स्म वसुधेशचेतसः । ।[६]

प्रयोग के अन्य स्थल -
चतुर्थ सर्ग - २ से ६० तक
सप्तम सर्ग - १४

(१९) शालिनी: शालिनी छन्द के प्रत्येक पाद में ग्यारह वर्ण होते हैं । ये क्रमशः मगण, दो तगण तथा दो गुरु के रूप में होते हैं । चार और सात पर यति होती है ।[७] यथा-

पृथ्वीनाथस्योग्रसेनस्य पुत्री पात्रं कान्तेः सार्धमन्तःपुरेण ।
तत्रायाता क्रीडितुं मासि चैत्रे नेत्रानन्दं नेमिनाथं ददर्श । ।[८]

प्रयोग के अन्य स्थल -
- सप्तम सर्ग - २९
एकादश सर्ग - १ से ५३ तक

(२०) अच्युत: यह छन्दःशास्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है । वाग्भट ने श्लोक में इसे अच्युत नाम से उल्लिखित किया है । इस वृत्त में ११ वर्ण होते हैं, जो क्रमशः रगण तथा सगण तथा अन्त में लघु गुरु होते है । यथा -

अच्युतं विलसन्मणिचक्रकः काननावलिभासुरविग्रहः ।
रोचिषा हरितेन महानसौ लोकनाथ विडम्बयते नगः । ।[९]

---

१. म्भौन्लौगः स्याद् भ्रमरविलसिता । वृत्तरत्नाकर, ३/१२२
२. नेमिनिर्वाण, ७/४९
३. पंचरसैः स्त्री भवनगगैः स्यात् । । वृ० र० ३/१२३
४. नेमिनिर्वाण, ७/३२
५. रोन्नराविह रथोद्धता लगौ, वृ० र० ३/१२४
६. नेमिनिर्वाण, ४/१
७. शालियव्रता म्तौतगौ गो न्धि लौकेः । वृ० र०, ३/१२०
८. नेमिनिर्वाण, ११/१
९. नेमिनिर्वाण, ७/४१

(२१) वंशस्थः यह बारह वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं।[1] यथा -

प्रविश्य शच्या शुचि सूतिकागृहं समर्प्य मायामयमन्यमीदृशम्।
प्रभुः कराभ्यां जगृहेऽथ मातृतः कृतप्रणामाय वराय चार्पितः।।[2]

प्रयोग के अन्य स्थल -
पंचम सर्ग - २ से ७१ तक
षष्ठ सर्ग - ४७
सप्तम सर्ग - २३

(२२) द्रुतविलम्बितः यह बारह वर्णों का वृत्त हैं। इसमें क्रमशः नगण, भगण, भगण तथा रगण ये चार गण होते हैं।[3] यथा -

अथ मृगांङ्क इवाभिनवोदितः प्रतिदिनं पृथितावयवोन्नतिः।
स पितुरम्बुनिधेरिव संमदं प्रथयति स्म यतिस्मरणोचितः।।[4]

प्रयोग के अन्य स्थल -
षष्ठ सर्ग - २ से ४५ तक, ४९
सप्तम सर्ग - ४७

(२३) कुसुमविचित्राः यह बारह वर्णों का वृत्त हैं। इसमें क्रमशः नगण, यगण, नगण तथा यगण होते हैं।[5] यथा -

इह परिविद्धा सुमदनबाणैः कुसुमविचित्रा तरुवरवीथी।
नवमधुमत्तं मधुपनिकायं न खलु विभर्ति प्रियमिव नेयम्।।[6]

(२४) स्त्रग्विणी : यह बारह वर्णों का वृत्त है। इसमें चार रगण होते हैं।[7] यथा-

अत्र नित्यस्फुटत्पुष्पलीलातरौ किन्नरद्वन्द्वसंगीतरम्येगिरौ।
काननान्यागता का न दिव्या वधूः स्त्रग्विणी जायते जातचेतोभवा।।[8]

(२५) मौक्तिकदाम : यह छन्द छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। वाग्भट ने श्लोक में इसे 'मोक्तिकदाम' नाम से उल्लिखित किया है। इसमें बारह वर्ण होते हैं तथा क्रमशः (चार भगण) भगण, भगण, भगण, भगण होते हैं। यथा-

भस्मरजः परिकल्पितभक्तिकभद्रगजेन्द्र इवायमसंनिभ।
भाति पुमानिव निर्मलमौक्तिमदाम दधत्सरिदावलिभिर्ननु।।[9]

---

१. जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ, वृ० र०, ३/१३२
२. नेमिनिर्वाण, ५/१
३. द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ, वृ० र०, ३/४९
४. नेमिनिर्वाण, ६/१
५. नयसहितौ न्यौ कुसुमविचित्रा। वृ० र०, ३/१३८
६. नेमिनिर्वाण, ७/२७
७. रैश्चतुर्भिर्युता स्त्रग्विणी सम्मता।। वृ० र०, ३/१४१
८. नेमिनिर्वाण, ७/३९
९. नेमिनिर्वाण, ७/३०

(२६) तामरस : यह बारह वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः नगण, जगण, जगण और यगण होते हैं।[१] यथा -

नवमधुपद्वयविभ्रमसज्जं यदुवर सौरभराजि तवेदम् ।
प्रतिनदि तामरसं मुखरागं कलयति चारुदलाधरलेखम् ।।[२]

(२७) प्रमिताक्षरा : यह बारह वर्णों का छन्द है। इस छन्द में क्रमशः सगण, जगण, सगण तथा सगण होते हैं।[३] यथा -

अथ मन्मथज्वलनवृद्धिविधाविव सर्पिरर्पितमनः प्रमदम् ।
विशदं सुगन्धि सरसं शिशिरं मधु पातुमारभत कामिजनः ।।[४]

प्रयोग के अन्य स्थल -

सप्तम सर्ग - २४, २५, २६

दशम सर्ग - २ से ४४ तक

(२८) भुजंग प्रयात : इस छन्द के प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते हैं। क्रमशः चार यगण हो जाने पर बारह अक्षर हो जाते हैं।[५] यथा -

इहोच्चावचग्राववैषम्यनेयप्रचाराः प्रभो बिभ्रतः स्वादु तोयम् ।
धुनीनां भुजङ्गप्रयातं प्रवाहा दधत्याशु भङ्गं व्रजन्तः सुवायौ ।।[६]

(२९) प्रियंवदा : इस छन्द में क्रमशः नगण, भगण, जगण, रगण होते हैं।[७] यथा-

नरवरेह रतिगेहसंनिभं जलदजालकनिभाश्मसुन्दरम् ।
इदमुपेत्य तटमुर्वशी कथां वितनुते सह सुरैः प्रियंवदाम् ।।[८]

(३०) तोटक : इस छन्द में चार सगण होते हैं।[९] यथा -

समकाञ्चनलोष्टमनुन्मनसं सकलेन्द्रियनिग्रहबद्धरसम् ।
जिन तोटकमागमनस्य भवे शिरसैष बिभर्ति तपस्विगणम् ।।[१०]

(३१) रुचिरा : यह तेरह-तेरह वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः जगण, भगण, सगण, जगण और गुरु होते हैं। इसके चौथे तथा नवें वर्ण के बाद यति होती है।[११] यथा -

अथैकदा सदसि दिगन्तरागतैरुपासितः क्षितिपतिभिर्महीपतिः ।
नभस्तलादवनितलानुसारिणीः सुराङ्गनाः सः किल ददर्श विस्मितः ।।[१२]

---

१. इतिवद् तामरसं नजजाद् यः । वृ० र० ३/१५३
२. नेमिनिर्वाण, ७/३१
३. प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता । वृ० र०, ३/१४५
४. नेमिनिर्वाण, १०/१
५. भुजंगप्रयातं भवेद् यैश्चतुर्भिः । वृ० र०, ३/१४०
६. नेमिनिर्वाण, ७/१९
७. भुविभवेन्नभजरैः प्रियम्वदा । वृ० र०, ३/१४२
८. नेमिनिर्वाण, ७/२८
९. इहतोटकमम्बुधि सैः प्रमितम् । । वृ० र०, ३/१३४
१०. नेमिनिर्वाण, ७/३३
११. चतुर्ग्रहैरह रुचिरा जभस्जगाः । वृ० र०, ३/१५६
१२. नेमिनिर्वाण, २/१

प्रयोग के अन्य स्थल -

द्वितीय सर्ग - २ से ५९ तक, सप्तम सर्ग - २१

(३२) नन्दिनी : नन्दिनी तेरह वर्णों का छन्द है, जिसमें क्रमशः सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु होता है। इसे ही सुनन्दिनी भी कहा जाता है।[१] यथा -

अतिथीभवन्तमथ तं वसुक्षये शिरसा बभार रविमस्तभूधरः ।
उपकारिणां स्वयमहो महस्विनामुपकर्तुमन्तरमतीव दुर्लभम् ।।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल -

सप्तम सर्ग - ३७

नवम सर्ग - २ से ५५ तक

(३३) चन्द्रिका : यह तेरह वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः नगण, नगण, तगण रगण तथा गुरु होते हैं। इसमें सातवें तथा छठे वर्णों पर यति होती है।[३] यथा-

नलिननयननिर्गामिनिर्झरोधप्रतिमरुचिभिरह्नां क्षयेषु नूनम् ।
व्रजति बहुलतामीश चन्द्रिकात्र प्रतिमितमणिसानूत्थरश्मिपूगैः ।।[४]

(३४) मंजुभाषिणी : छन्द की सार्थकता नाम से प्रतीत होती है। इसमें सुन्दर शब्दों व मनोहर भावों का प्रयोग होता है। इस छन्द में क्रमशः सगण, जगण, सगण, जगण तथा दो गुरु होते हैं।[५] यथा -

जनस्य चेतो भवविकारमुद्धतं समर्पयन्ती मधुकेलिनादजम् ।
गजेन्द्रगामिन्निह हि मञ्जुभाषिणी पिकी सदानित्यसहकारकोरके ।।[६]

(३५) मत्तमयूर : इस छन्द में क्रमशः मगण, तगण, यगण, सगण तथा गुरु होता है। इसके चौथे, नवें वर्णों पर यति होती है।[७] यथा -

मार्तण्डारिस्या (श्या) मलसत्काम्बुदजातौ शैलाधीशे निर्मलनानागुणकाय ।
सद्यः पुष्पामोद्गुणानन्दित भृङ्गं किं किं नास्मिन्मत्तमूयरं वनमीश ।।[८]

(३६) वसन्ततिलका : इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण तथा दो जगण और दो गुरु होते हैं।[९] काश्यप मुनि ने इसे 'सिंहोन्नता' कहा है। सैतव मुनि ने 'उद्धार्षिणी' तथा पिंगल ने मधुमाधवी कहा है। यथा -

अभ्युल्लसन्नयनवारिरुहस्मितायाः, स्वप्नान्तरातिशयदर्शनविस्मितायाः ।
तस्याः पुरः परिणतार्थपदैर्वचोभिः, श्यामा विराममिति काचिदुवाच देवी ।।[१०]

---

१. सजसा जगौ यदि तदा सुनन्दिनी । वृ० र० ३/१५८ की पादटिप्पणी
२. नेमिनिर्वाण, ९/१
३. ननतरगुरुभिश्चन्द्रिकाश्वर्तुभिः ।। वृ० र०, ३/१५९
४. नेमिनिर्वाण, ७/३४
५. सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी ।। वृ० र०, ३/१५८
६. नेमिनिर्वाण, ७/३५
७. वेदैरन्ध्रैर्म्तौ य स गा मत्तमयूरम् ।। वृ० र०, ३/१५७
८. नेमिनिर्वाण, ७/३६
९. उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः । वृ० र०, ३/१६४
१०. नेमिनिर्वाण, ३/१

प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ८२ तृतीय सर्ग - २ से ४३ तक

षष्ठ सर्ग - ५०, ५१ सप्तम सर्ग - ५१, ५२, ५३, ५४, ५५

दशम सर्ग - ४५ एकादश सर्ग - ५४, ५५

द्वादश सर्ग - ७० चतुर्दश सर्ग - ४७

पंचदश सर्ग - ८५

(३७) अशोकमालिनी : यह छन्द छन्दःशास्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। वाग्भट ने श्लोक में इसे अशोकमालिनी नाम से उल्लिखित किया हैं यह चौदह वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः जगण, रगण, जगण, रगण, तथा लघु और गुरु होते हैं। यथा -

जलोरसिस्थपद्म पत्रकञ्चुकं वपू, रसाकुलं वहत्यसौस्फुरत्सितद्विजम्।

अशोकमालिनी नदी यथा वधूर्वरा, लसद्गुणौघलोहितांशुकावृतान्वगम्।।[२]

(३८) प्रहरणकलिका : जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः दो नगण, एक भगण, एक नगण, एक लघु और एक गुरु होता है। उसे प्रहरणकलिका कहते हैं।[३] यथा-

अनुकृतविषमप्रहरणकलिका, क्षितिरुहनिवहैः परिलसदवनौ।

भनिकरसदृशद्युतिरनुविपिनं, लसति सुविशदा बहुरिह हि नगे।।[४]

(३९) मालिनी : जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमशः दो नगण, एक मगण तथा दो यगण हों तो वह 'मालिनी' छन्द होता है। इसमें आठ और सात पर यति होती है।[५] यथा-

द्विरदकरजलार्द्रद्वारमाचारनम्र, क्षितिपलुलितहारस्वस्तिकैः स्वस्तियुक्तम्।

तरलतनयशून्यप्राङ्गणं वीक्षमाणो, भवनमवनिनाथ : काननं सोऽथ मेने।।[६]

प्रयोग के अन्य स्थल -

चतुर्थ सर्ग - ६२ सप्तम सर्ग - १२

पंचम सर्ग - ७२ अष्ठम सर्ग - ८०

(४०) शशिकलिका : इसका नाम शशिकला भी मिलता है। यह १५ वर्णों का वृत्त है। जिसमें क्रमशः चार नगण और एक सगण होते हैं।[७] यथा -

इह वसति विपुलगुणमणिरवनौ, विजलजलपटलधरधवलतनौ।

सततसरिदनुकृतसुविकटजटे, धरणिभृति गिरिश इव शशिकलिका।।[८]

(४१) शरमाला : यह छन्द छन्दः शस्त्रीय प्रचलित ग्रन्थों में अनुपलब्ध है। वाग्भट ने श्लोक में इसे शरमाला नाम से उल्लिखित किया है। यह १६ वर्णों का वृत्त है, जिसमें

---

१. नेमिनिर्वाण, ३/१

२. नेमिनिर्वाण, ७/३८

३. ननभनलगिति प्रहरणकलिका। वृ० र०, ३/१६३

४. नेमिनिर्वाण, ७/४८

५. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। वृ० र०, ३/१७१

६. नेमिनिर्वाण, १/८३

७. द्विकतहयलघुरथगति शशिकला।। वृ० र०, ३/१६८

८. नेमिनिर्वाण, ७/४२

क्रमशः चार भगण, एक सगण तथा एक गुरु होता है । यथा -

भूतनिकायशुभप्रद मेरुगिरिसनाभौ, काननराजिभिरत्र हि मन्मथशरमाला ।
शश्वदुदीरितकोरकवीथिभिरुरुदेव, प्रेमणि संभ्रियतेऽलिसुपिच्छनिकरकाया ।।[१]

(४२) **हरिणी :** इस छन्द में छः, चार और सात पर यति होती है । क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु तथा गुरु होते है ।[२] यथा -

इति हृदि यदा स्वप्नश्रेणीमचिन्तितदर्शनां, कलयति किल क्षोणीभर्तुः प्रिया प्रियसंयमा ।
रजनिविरतिव्याख्यादक्षस्तदा कृतगीतिभिः, सुरयुवतिभिर्भूयो भूयोऽप्यताड्यत दुन्दुभिः ।।[३]

प्रयोग के अन्य स्थल - सप्तम सर्ग - १५, १६

(४३) **पृथ्वी :** जिसके प्रत्येक पाद में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण एवं लघु गुरु हो, वह पृथ्वी कहा जाता है ।[४] यथा -

स्वकान्तिजलमण्डलप्रथितबुद्बुदभ्रान्तिभिः, सितैरसितरश्मिभिर्बहलशैवलोल्लासिभिः ।
नभस्तलनिपातिभिर्वसुभिराबभासे भृशं, सरोवरमिवायतं नृपतिनाथहर्म्याजिरम् ।।[५]

प्रयोग के अन्य स्थल -

सप्तम सर्ग - १८ एकादश सर्ग - ५८ चतुर्दश सर्ग - ४८

(४४) **शिखरिणी :** यह सत्रह वर्णों का छन्द होता है । इसमें क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा लघु गुरु होते हैं ।[६] यथा -

यदूनामुत्तंस त्रिदशपरिचर्योक्तमहिम, न्सदैवास्मिन्दावज्वलनमतिदूरत्रसदिभम ।
लसद्विद्युद्दामा प्रशमयति संतापितनुगं, पयोधारासारैर्नवजलदमाला शिखरिणी ।।[७]

प्रयोग के अन्य स्थल - त्रयोदश सर्ग - ८४

(४५) **मन्दाक्रान्ता :** इस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, मगण, नगण, तगण, तगण तथा दो गुरु होते हैं । इस प्रकार सत्रह वर्ण होते हैं । चार, छः और सात पर यति होती है ।[८] यथा-

मोहोन्मुक्तप्रतिभचमरी पुच्छसंमार्जितोर्वी, भव्याभासे सुमहति गिरावत्र चित्रार्थसानौ ।
द्वौ चन्द्रार्कावपि रमयते पुष्पवर्षेण मन्दा, क्रान्तावातैः क्षितिरूहततिः क्रान्तपर्यन्तशृङ्गैः ।।[९]

(४६) **शार्दूलविक्रीडित :** इस छन्द में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, एवं गुरु होते हैं । बारह और सात पर यति होती है ।[१०] यथा -

कामं संघटितेष्टकान्तविभवे राजत्तुलाकोटिके, प्रोतुङ्गस्तनयुग्महेमकलशे तत्कायदेवालये ।
तं देवं विहितावतारमचिरादागत्य सेन्द्राः सुराः सर्वे नेमुरनर्तिषुर्जगुरगुर्वैतालिकत्वं पुरः ।।[११]

---

१. नेमिनिर्वाण, ७/४०
२. रसयुगहयैर्न्सौ म्रौस्लौगो यदा हरिणी तदा । वृ० र०, ३/१८१
३. नेमिनिर्वाण, २/६०
४. जसौजसयलावसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।। वृ० र०, ३/१७९
५. नेमिनिर्वाण, ३/४७
६. रसैरुद्रैश्छिन्नायमनसभला गः शिखरिणी ।। वृ० र०, ३/१७८
७. नेमिनिर्वाण, ७/६
८. मन्दाक्रान्ताजलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरु चेत् । वृ० र०, ३/१८२
९. नेमिनिर्वाण, ७/२२
१०. सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् । वृ० र०, ३/१०१
११. नेमिनिर्वाण, ३/४६

प्रयोग के अन्य स्थल -

सप्तम सर्ग - ४५ नवम सर्ग - ५७ दशम सर्ग - ४६

(४७) स्रग्धरा : स्रग्धरा २१ वर्णों का वृत्त है। इसमें क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण तथा तीन यगण होते हैं। सात-सात वर्णों पर यति होती है।[१] यथा -

आगत्यागत्य पुष्पस्तबकशतपतद्भृङ्गभारावनम्रं,
भर्तः कान्तारमेतद्बकुलविटपिनां प्रेरिता मन्मथेन ।
दिव्यस्त्री स्रग्धरास्मिन्न भवति कतमा प्राप्य पुष्पावचायं,
श्रान्तस्वेदोदबिन्दुप्रकरहरपरा मन्दमन्दारवायौ ।।[२]

प्रयोग के अन्य स्थल - तृतीय सर्ग - ४५

(४८) चण्ड वृष्टि : जिस छन्द में क्रमशः दो नगण और सात रगण होते हैं, उसे चण्डवृष्टि या चण्डवृष्टि-प्रयात नामक दण्डक छन्द कहा गया है।[३] २६ अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले छन्द को दण्डक छन्द कहते हैं। यथा -

कठिनगवलकज्जलश्यामलश्रीभृतामद्भुतैर्धातुभिर्भ्राजमानावनौ,
रवभरकलिता बृहन्मर्दलाडम्बराणां ततस्तोकपुष्पौघलीलातरौ ।
कनकनिकषभास्वराकारविद्युल्लतामण्डितानाममुष्मिन्विशाले गिरौ,
विबुधमिथुनकैर्गुहासु स्थितैर्नीयते चण्डवृष्टिर्घनानां क्वणत्तुम्बरौ ।।[४]

(४९) वियोगिनी : जिस छन्द के विषम-अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण में सगण, सगण, जगण और गुरु हो तथा सम अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ चरण में सगण, भगण, रगण, लघु और गुरु हो तो वियोगिनी छन्द होता है।[५] यथा -

अथ तत्र निवर्त्य दिक्पतीन्स सुरेन्द्राननुयायिनः प्रभुः ।
पृथ्वीभृति मुक्तिवर्तिनी मणिसोपान इवारुरोह सः ।।[६]

प्रयोग के अन्य स्थल - चतुर्दश सर्ग - २ से ४६

(५०) पुष्पिताग्रा : जिस के विषम पादों में दो नगण, रगण और यगण और सम पादों में नगण, दो जगण, रगण और एक गुरु होता है ऐसे अर्द्धसम छन्द को पुष्पिताग्रा छन्द कहते हैं।[७] यथा -

अथ नृपतिरुपेतहर्षपूरः पुरि परितोऽपि महोत्सवान्विधातुम् ।
सदसि समुपविश्य सेव्यमानः क्षितिपगणेन स दण्डिनं दिदेश ।।[८]

---

१. म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् । वृ० र०, ३/१९४ २. नेमिनिर्वाण, ७/२०

३. यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफस्तदा चण्डवृष्टिप्रयातो भवेद्दण्डकः । वृ० र०, ३/२०४

४. नेमिनिर्वाण, ७/४६ ५. विषमेयदि सौ जगौ समे सभरालौ च तदा वियोगिनी । छन्दोमंजरी, ३/६

६. नेमिनिर्वाण, १४/१ ७. अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा । वृ० र०, ४/२१८

८. नेमिनिर्वाण, ३/४४

नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प

अलंकार

अलंकार शब्द की रचना अलं + कृ + अ धातु एवं प्रत्यय के संयोग से हुई है। उसका अर्थ है 'सजावट'। अलंकार शब्द में अलं तथा कार दो शब्द हैं। जिसका अर्थ है- जो अलंकृत करे, वह अलंकार है। 'अलंकरोतीति अलंकारः' अथवा 'अलंक्रियते अनेनेत्यलंकारः।

काव्यशास्त्र में भी इसका यही अर्थ ग्रहण किया गया है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं, रस आत्मा और अलंकार कटक कुण्डल की भांति काव्य को अलंकृत करते हैं। ये काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं। दण्डी ने कहा है-"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्ष्यते"।[१] मम्मट ने अलंकार का स्वरूप निर्धारण करते हुये रस का उपकारी धर्म माना है।

आचार्य विश्वनाथ ने स्पष्ट परिभाषा देते हुए कहा है –

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः। रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेङ्गदादिवत्।।[२]

अर्थात् जैसे अगंद आदि आभूषण मनुष्य-शरीर के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं, वैसे ही अनुप्रास आदि अलंकार शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हुए रस भाव आदि के प्रकाशन में सहायता प्रदान करते हैं।

आचार्य भामह 'शब्द और अर्थ के वैचित्र्य' को अलंकार कहते हैं।

वामन ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है - "सौन्दर्यमलंकारः"।[३] राजशेखर तो उपकारक होने के कारण अलंकार को वेद के षड़गों के अतिरिक्त सातवां अङ्ग मानते हैं। "उपकारकत्वादलंकारः सप्तममङ्गमिति यायावरीयः"।[४] ध्वनिवादी आचार्य अलंकारों को काव्य के अस्थिर धर्म मानते हैं।

सभी परिभाषाओं में विश्वनाथ की परिभाषा श्रेयस्कर है। क्योकिं शब्द और अर्थ दोनों को ही काव्य का शरीर माना गया है, अतः उन दोनों के शोभावर्धक धर्म अलंकारों को भी दो वर्गों में विभक्त किया है–

१. शब्दालंकार २. अर्थालंकार

अलंकारों का यह विभाजन शब्दपरिवृत्यसहिष्णुत्व और शब्द परिवृत्तिसहिष्णुत्व के आधार किया गया है अर्थात जहाँ शब्दों के बदल देने से अलंकार की चमत्कृति समाप्त हो

---

१. काव्यादर्श द्वितीय परिच्छेद-१
२. साहित्य दर्पण, १०/१
३. काव्यालंकारसूत्र, १/२
४. काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय, पृ० ६

जाये वहाँ शब्दालंकार और शब्दों के बदल देने पर अलंकार की चमत्कृति में अन्तर न आये वहाँ अर्थालंकार होता है ।

नेमिनिर्वाण में वर्णनों तथा भावों को प्रभावोत्पादक और मनोरम बनाने के लिये तथा रसों की परम्परा बनाये रखने के लिये दोनों प्रकार के अलंकारों का सन्निवेश हुआ है ।

वाग्भट ने विभिन्न आयामों विविध रूपों को प्रकट करने के हेतु विविध अलंकारों के द्वारा मनोरम, सौन्दर्यवर्द्धक चित्रों को अपनी लेखनी में संजोकर उनको काव्य में भिन्न-भिन्न प्रकार से चित्रित कर अपने अलंकार-कौशल को प्रकट किया है ।

शब्दालंकार

नेमिनिर्वाण काव्य में शब्दालंकार के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, श्लेष एवं चित्रालंकारों का संयोजन किया गया है । अनुप्रास की शोभा, यमक की मनोरमता, श्लेष की संयोजना और चित्रालंकारों की विचित्रता सहज ही पाठकों के हृदय को अलौकिक आनन्दवर्द्धन कराती है ।

अनुप्रास :

अनुप्रास वह अलंकार है जहाँ पर स्वरों का वैसादृश्य होने पर भी शब्द अथवा वर्णो का सादृश्य होता है । अनुप्रास की चमत्कृतिपूर्ण संयोजना में वाग्भट अत्यन्त कुशल हैं । नेमिनिर्वाण में अनेक स्थलों पर अनुप्रास की छटा देखने को मिलती है और संगीत ध्वनि के हेतु अलंकारों की योजना अनेक सन्दर्भों में हुई है । दूसरे सर्ग में देवाङ्गनाओं का आकाशमार्ग से उतरना--

वितन्वतीर्वियति विराजिभिर्मुखैर्विभावरी विभुनिकुरूम्बडम्बरम् ।
विवृण्वतीरिव मणिकिङ्कणीरवं स्मरद्विप सहचरमात्मनः स्फुटम् । ।[1]

तृतीय सर्ग के प्रायः सभी पद्यों में अनुप्रास की छटा देखने को मिलती है –

कल्लोलिनीपतिरिवातिगभीरवृत्तिः सिंहासनं यदुकुलीयमलंकरिष्णुः ।
वैमानिकैः सततसंभृतभूरिभक्तिर्नागालये शशिमुखीमुखगीतकीर्तिः । ।[2]

यहाँ पर "वितन्वतीर्वियतिविराजिभिमुखैर्विभावरीविभुनि" में वकार की आवृति की सुन्दर योजना की गई है । इसी तरह दूसरे पद्य के ल, त और ख में अनुप्रास है । इसी प्रकार के अनेक उदाहरण अन्य भी नेमिनिर्वाण में देखे जा सकते हैं ।

अनुप्रास के अन्य स्थल -- प्रथम सर्ग - १९, ७६
द्वितीय सर्ग - २, ९, ३६, ४२ तृतीय सर्ग - ३४, ३५

---

१. नेमिनिर्वाण, २/३, ३/४२ २. वही, ३/४५

यमक

सार्थक पर भिन्नार्थक पाद, पद और वर्णों की उसी क्रम से संयुक्त या असंयुक्त पुनरावृत्ति को 'यमक' कहते हैं ।[१] यह यमक श्लोक के आदि में हो सकता है, मध्य में हो सकता है और अन्त में हो सकता है । इस प्रकार यमक के निम्न भेद माने गये हैं –

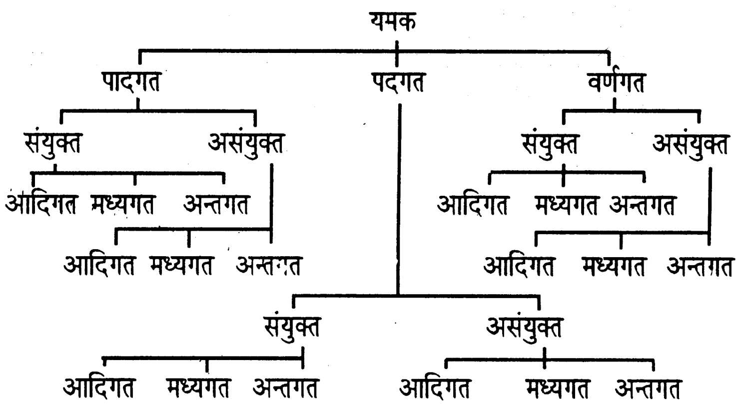

इस प्रकार यमक के १८ भेद माने गये है । 'पाद' श्लोक के चतुर्थांश को कहते हैं। 'पद' विभक्तियुक्त शब्द को कहते हैं ।[२]

"नेमिनिर्वाण" में कवि ने भिन्नार्थक वर्णों की आवृत्ति कर यमक की योजना विभिन्न भेदों में की है । नेमिनिर्वाण के पहले, छठे, सातवें तथा तेरहवें सर्ग में यमक योजना की गई है । जो निम्न प्रकार है –

अयुतावृत्तिमूलकः- दूसरे पाद की आवृति चतुर्थ पाद में हो और इन दोनों के बीच में तृतीय पाद आ जाने से "अयुतावृत्तिमूलक द्वितीय चातुर्थ पाद" यमक होता है ।[३]

"नेमिनिर्वाण" के निम्न श्लोक में यह यमक दृष्टिगोचर होता है -

अमरनगरस्मेराक्षीणां प्रपंञ्चयति स्फुर-त्सुरतरुचये कुर्वाणानां बलक्षम रंहसम ।

इह सह सुरैरायान्तीनां नरेश नगेऽन्वहं सुरतरुचये कुर्वाणानां वलक्षमरं हसम् ।।[४]

हे पराक्रमी राजन् ! कल्पतरु से भरे-पूरे इस पर्वत की उस मनोरम भूमि को देखिये जो बाणवृक्षों से भरी पड़ी है । यह एकान्त किन्तु चित्ताकर्षक स्थान नित्यप्रति देवताओं के साथ स्वर्गलोक से आनेवाली सुरांगनाओं की संभोगाभिलाषा को उकसा देता है ।

---

१. स्यात्पादपदवर्णानामावृत्तिः संयुतायुता । यमकं भिन्नवाच्यानामादिमध्यान्तगोचरम् ॥
-वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद श्लोक ४२

२. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ४९

३. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५१

४. नेमिनिर्वाण, ७/१६

यहाँ दूसरे पाद की आवृत्ति चतुर्थ पाद में है और इन दोनों के बीच में तृतीय पाद आ जाने से यहाँ पर अयुतावृत्तिमूलक द्वितीय चतुर्थ पाद यमक अलंकार है ।

महायमक : जहाँ प्रथम पाद की आवृत्ति, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पाद में हो, वहाँ महायमक होता है ।[1] नेमिनिर्वाण के इस श्लोक में महायमक अलंकार है, जो बड़ा ही मनोहर बन पड़ा है –

रम्भारामा कुरबकमलारम्भारामा कुरबककमला ।
रम्भा रामाकुरवक कमलारम्भारामाकुरवककमलः । ।[2]

हे रक्षक! कदली वन की वह भूमि अत्यन्त रमणीय है, क्योंकि उसमें कमलों का समूह है, सुन्दर कुरबक वृक्षों का कुंज है, मनोहारिणी सुन्दरियाँ हैं, बकपंक्ति से रहित निर्मल एवं रमणीक जलराशि है और मनोहर शब्द करने वाला हरिणयूथ भी है ।

इस श्लोक में प्रथम पाद की आवृत्ति द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पाद में है, अतएव यह 'महायमक' अलंकार है ।

मध्यम यमक :

संयुतावृत्तिमूलक मध्यमपद यमक : जहाँ आदि मध्य पदों की व्यवधान रहित आवृत्ति हो वहाँ संयुतावृत्तिमूलक यमक होता है ।[3] नेमिनिर्वाण के निम्न श्लोक में इस यमक का निर्वाह हुआ है —

नेमिर्विशालनयनो नयनोदितश्रीरभ्रान्तबुद्धिविभवो विभवोऽथ भूयः ।
प्राप्तस्तदेति नगरान्नगराजि तत्र सूतेन चारु जगदे जगदेकनाथः । ।[4]

संसार के एकमात्र स्वामी दीर्घनयन स्वामी नेमिनाथ जी, जिन्होंने अपनी नीति से धनोपार्जन किया और जिनका ऐश्वर्य सदैव स्थित रहने वाला है तथा जो जन्म-मरण आदि से युक्त संसार-चक्र से परे हैं, वें जब सारथी द्वारा नगर से पर्वत पर ले जाये गये तो सारथी ने उनसे बार-बार सुन्दर वचन में कहा

यहाँ नयनो, जगदे और विभवो आदि मध्य पदों की व्यवधान रहित आवृत्ति से 'संयुतावृत्तिमूलकमध्यपद यमक' है ।

अन्त यमक :

संयुतावृत्तिमूलक अन्तपद यमक : जहाँ अन्त पदों की आवृत्ति हो वहाँ संयुतावृत्तिमूलक अन्त पद यमक होता है ।[5] नेमिनिर्वाण के निम्न श्लोक में यह देखा जा सकता है –

यदुपान्तिकेषु सरलाः सरला यदनूच्चलन्ति हरिणा हरिणाः ।
तदिदं विभाति कमलं कमलं मुदमेत्य यत्र परमाप रमा । ।[6]

---

१. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५६ २. नेमिनिर्वाण, ७/५०
३. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५४ ४. नेमिनिर्वाण, ६/५१
५. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५४ ६. नेमिनिर्वाण, ७/२५

अहा! कितनी मनोहारिणी है यह जलराशि। इसके किनारे पर सीधे सीधे धूप के (काष्ठ विशेष) वृक्ष खड़े हुये हैं। यहाँ हरिण वायु के समान तीव्र वेग से दौड़ते हैं और यहाँ पर लक्ष्मी भी कमलों में स्थान पाकर हर्षोल्लास से भर जाती है।

इस पद्य में सरला, हरिणा और परमा आदि पदों की आवृत्ति से यहाँ संयुतावृत्तिमूलक अन्त यमक है।

आदि यमक अलंकार : चारों पदों के आदि में एक पद की आवृत्ति हो और ये पद आपस में दूर-दूर हों तो "अयुतावृत्तिमूलक आदियमक" अलंकार होता है।[१] यथा नेमिनिर्वाण में -

कान्तारभूमौ पिककामिनीनां कां तारवाचं क्षमते स्म सोढुम्।
कान्ता रतेशेऽध्वनि वर्तमाने कान्तारविन्दस्य मधोः प्रवेशे।।[२]

जब किसी सुन्दरी का पति परदेश में हो, (उसके पास न हो) चैत्र मास, कमल और वसन्तादि उद्दीपक उपकरणों से सजकर आ जाए, तो वह बेचारी वन प्रदेश में कल कुंजन करने वाली कोकिला की ऊँची तान को सुन सकने में कैसे समर्थ हो सकती है? (वह तो विरह से तड़प उठेगी।)।

इस श्लोक के चारों पादों के आदि में 'कान्तार' पद की आवृत्ति है और ये सभी पद एक दूसरे से दूर हैं। अतः- यह "अयुतावृत्तिमूलक आदिपद यमक" है।

अन्तयमक अलंकार:- चरण के अन्त में आने वाली पद की बार-बार आवृत्ति होने से 'अयुतावृत्तिमूलक अन्तयमक' होता है।[३] यथा नेमिनिर्वाण में -

भूरिप्रभानिर्जितपुष्पदन्तः करायतिन्यक्कृतपुष्पदन्तः।
त्रिकालसेवागतपुष्पदन्तः श्रेयांसि नो यच्छतु पुष्पदन्तः।।[४]

इस उदाहरण में चरण के अन्त में आने वाले 'पुष्पदन्त' पद की बार बार आवृत्ति होने से यहाँ पर 'अयुतावृत्तिमूलक अन्तपदयमक' अलंकार है।

अयुतावृत्तिआदिमध्यगोचरयमक : जहाँ आदि पाद की आवृत्ति भिन्नार्थक तृतीय पाद में हुई हो तथा उनके बीच में द्वितीय पाद आ जाने से व्यवच्छेद उत्पन्न हो जाता है, वहाँ 'अयुतावृत्तिमूलक आदिमध्यपाद यमक' होता है।[५] यथा नेमि निर्वाण में -

मधुरेणदृशां चक्रे शशिना मानविप्लवम्।
मधुरेण दृशां चक्रे मन्मथज्वलितात्मनि।।[६]

यहाँ आदि पाद की आवृत्ति भिन्नार्थक तृतीय पाद में हुई है, जिससे बीच में द्वितीय पाद आ जाने व्यवच्छेद उत्पन्न हो गया है।

---

१. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५४
२. नेमिनिर्वाण, ६/४६
३. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५५
४. नेमिनिर्वाण, १/९
५. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५१
६. नेमिनिर्वाण, ६/४८

पादद्वयान्त्ययमक : पूर्वार्द्धगत तथा उत्तरार्द्धगत अन्तगत पदों की आवृत्ति को 'अयुतावृत्तिमूलक प्रत्यर्धभाग भिन्न पादद्वयान्त्ययमक' कहते हैं ।[१]

जहुर्वसन्ते सरसीं न वारणा बभुः पिकानां मधुरा नवा रणाः ।
रसं न का मोहनकोविदार कं विलोकयन्ती बकुलान्विदारकम् । ।[२]

बसन्त ऋतु में हाथियों ने सरोवरों को नहीं छोड़ा । कोकिल कूजन ने नवीन शोभा को धारण किया । किस कामशास्त्र-प्रवीण नायिका ने मौलश्री के वृक्षों को देखकर विरह-व्यथा का अनुभव नहीं किया अथवा किस कामातुरा नायिका ने अपने पति-प्रेम का आनन्द नहीं लूटा ।

यहाँ पर पूर्वार्द्धगत 'नवारणा' और उत्तरार्द्धगत 'विदारकम्' अन्तगत पदों की आवृत्ति से 'अयुतावृतित्तमूलक प्रत्यर्धभाग भिन्नपादान्त गतपदयमक' है ।

द्वितीयपांदचतुर्थपादान्तयमक : जहाँ श्लोक के दोनों चरणों के अन्त में पद की आवृत्ति हो तो वहाँ अयुतावृत्तिमूलक पद्यार्द्धान्त्यभागगत पदयमक'[३] होता है । यथा नेमिनिर्वाण में -

वधं विधत्ते यदि जातु जन्तुरलं तपोदानविधानयत्नैः ।
तमेव चेन्नाद्रियते कदाचिदलं तपोदानविधानयत्नैः । ।[४]

इस श्लोक में दोनों चरणों के अन्त में 'तपोदानविधानयत्नैः' पद की आवृत्ति है । अतः 'अयुतावृत्तिमूलकपद्यार्द्धान्त्यभागगतपदयमक' है ।

यमक अलंकार के प्रयोग के अन्य स्थल -

षष्ठ सर्ग - ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७; १८, १९, २०, २१, २२, ४७, ४८, ४९, ५१

सप्तमसर्ग - १६, २५

श्लेष :

दो या अधिक अर्थ जहाँ श्लिष्ट (चिपके) निबद्ध रहते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार का चमत्कार दिखाई पड़ता है । नेमिनिर्वाण के प्रथम सर्ग के ग्यारहवें श्लोक में श्लेष अलंकार का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत है -

सुवर्णवर्णद्युतिरस्तु भूत्यै श्रेयान्विभुर्वो विनताप्रसूतः ।
उच्चैस्तरां यः सुगतिं ददानो विष्णोः सदानन्दयति स्म चेतः ।[५]

१. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५७
२. नेमिनिर्वाण, ६/४७
३. वाग्भटालंकार चतुर्थ परिच्छेद, पृ० ५७
४. नेमिनिर्वाण १३/१९
५. नेमिनिर्वाण, १/११

(जिनके शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान उज्ज्वल थी, जो भक्त पुरुषों को स्वर्ग-अपवर्ग आदि उत्तम गति को देने वाले थे तथा जो स्वसमान कालिक नारायण के चित्त (विष्णु) को सदा प्रसन्न किया करते थे, वे विनता माता के पुत्र श्रेयांसनाथ भगवान् तुम सबको विभूति प्रदान करें ।)

इस पद्य का श्लेष से दूसरा अर्थ -

(जिसके शरीर की आभा सुवर्ण के समान पीतवर्ण है, जो विभु है, श्रेयान्- कल्याणरूप है । उच्च आकाश में सुन्दर गमन को देता हुआ श्रीकृष्ण के चित्त को आनन्दित करता हुआ वह विनतासुत - वैनतेय गरुड तुम सबको विभूति देने वाला हो)

श्लेष के प्रयोग के अन्य स्थल -

द्वादश सर्ग - ७, ४४, ४६

अर्थालंकार

वाग्भट ने जहाँ एक ओर अनुप्रास आदि शब्दालंकार की चमत्कृति पूर्ण संयोजना की है, वहीं दूसरी ओर उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों के माध्यम से वर्णनीय विषयों की मंजुल अभिव्यंजना भी प्रस्तुत कर अपने पाण्डित्य का परिचय दिया है ।

नेमिनिर्वाण में उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक, परिसंख्या, समासोक्ति, उदाहरण, सहोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकारों का आह्लादक एवं मनोरम प्रयोग हुआ है । इन अलंकारों के प्रयोग में कवि को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, यह प्रस्तुत अलंकारों के उदाहरणों से जाना जा सकता है ।

उपमा :

दो भिन्न पदार्थों के साधर्म्य को उपमान-उपमेय भाव से वर्णन करना उपमा अलंकार कहलाता है ।

उपमा अलंकार सबसे प्रधान है, यह अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का आधार है । भावों द्वारा कल्पना को जितनी अधिक प्रेरणा प्राप्त होती है । उपमान योजना उतनी ही सार्थक सिद्ध होती है । कवि वाग्भट ने नेमिनिर्वाण में अनेक स्थलों पर उपमा अलंकार का प्रयोग किया है । इन्होंने उपमानों का चयन प्रकृति, दृश्य जगत्, पुराण और इतिहास से किया है । उनकी उपमा में सरलता, सुन्दरता एवं स्वाभाविकता सहज ही झलकती है । यथा

प्रस्तुत पद्य में २२ वें तीर्थङ्कर किस प्रकार के होंगे, उसे उपमा द्वारा स्पष्ट किया गया है -

दन्तीव भूरितरदानविराजमानो धर्म्यां धुरं कलयितुं वृषवत्प्रगल्भः ।

तेजोधिकः सकलजन्तुषु केसरीव लक्ष्म्या स्वयंवर विधावुपकीर्णमाल्यः ।।[१]

यहाँ पर दन्तीव - अर्थात् (भावी पुत्र) गज के समान भूरितर दान से युक्त होगा जिस प्रकार हाथी के मद से दानवारि निकलता है, निरन्तर दान जल-मदजल झरता रहता है । उसी प्रकार पुत्र दानी होगा । दूसरी उपमा केसरीव अर्थात् सिंह के समान तेजस्वी होगा, सिंह जिस प्रकार पराक्रमशाली होता है उसी प्रकार के पराक्रम से युक्त पुत्र होगा ।

द्वितीय, तृतीय चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में विशेष रूप से ही उपमायें देखने को मिलती हैं । कुछ अन्य उपमायें द्रष्टव्य हैं -

पीयूषरश्मिरिव[२] **:** अमृतकिरण के समान लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाला होगा ।

शीतेतरांशुरिव[३] **:** सूर्य के समान प्रतापशाली होगा ।

सिन्धुशुक्तिरिव[४] **:** सीप के भीतर मोती रहता है, उसके प्रभाव से सीप सुशोभित होता है । महारानी शिवा बालक को गर्भ में धारण किये हुये पुत्र के तेज के कारण सीप के समान सुशोभित हो रही थी । उक्त उपमान द्वारा महारानी के तेज की अभिव्यंजना प्रकट की है, क्योंकि गर्भ-धारण करने से प्रायः स्त्रियाँ शिथिलता को प्राप्त हो जाती हैं । शरीर पीला पड़ जाता है । परन्तु शिवा का सौन्दर्य वृद्धि को प्राप्त कर रहा था ।

सत्क्रियेव[५] **:** पुण्यकृत्य के समान समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ, सत्क्रिया कहने से पुत्र के सौन्दर्य और सौभाग्य की अभिव्यंजना होती है ।

अन्य उपमायें :

अट्टहासा इव[६] **:** हास के ढेर के समान पर्वत सुशोभित हुआ ।

सकज्जलोल्लासमिव[७] **:** सुमेरु के श्रृङ्ग पर बादल गिरे हुये थे, जिससे वह ऐसा मालूम पड़ता था मानो दीपक के ऊपर काजल सुशोभित हो रहा हो । जलते हुए दीपक द्वारा सुमेरु पर्वत की ओर कज्जल द्वारा नारियों की अभिव्यंजना भी है ।

---

१. नेमिनिर्वाण, ३/४०
२. वही, ३/४१
३. वही, ३/४१
४. नेमिनिर्वाण, ४/१
५. वही, ४/१३
६. वही,५/१४
७. वही, ५/१६

काव्यमिवोज्ज्वल[१] : महाकवि जिस प्रकार अपने काव्य में उचित रूप से अलंकार की योजना करता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने अलंकार धारण किये ।

पौराणिक उपमाओं में - पार्श्वनाथमिव[२] : पार्श्वनाथ और कमठ के सम्बन्ध का स्मरण दिलाते हुये उनकी आकृति के साथ द्वारिकावती की समता प्रस्तुत की है ।

उपमा-प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ४५, ४९, ७१ — द्वितीय सर्ग - ५२

तृतीय सर्ग - ३४ — चतुर्थसर्ग - १३, १४

पंचम सर्ग - ५, २३ — षष्ठ सर्ग - १

अष्टम सर्ग - २७, ५४, ५५, ६०, ६५ — नवम सर्ग - ५, ८, ९, १२, १८

एकादश सर्ग - ३६ — द्वादश सर्ग - २, ६६

त्रयोदश सर्ग - २० — चतुर्दश सर्ग - १

पंचदश सर्ग - १, १९, २१, २३, ६६, ७७, ७८, ७९, ८१

उत्प्रेक्षा :

उपमेय की उपमान के साथ संभावना या कल्पना उत्प्रेक्षा कहलाती है । नेमिनिर्वाण काव्य में वाग्भट ने उत्प्रेक्षा का अच्छा प्रयोग किया है । चतुर्थ सर्ग का निम्न श्लोक देखिये- गर्भावस्था के कारण माता शिवादवी का शरीर पीत वर्ण हो गया था । कवि उत्प्रेक्षा के द्वारा वर्णन करते हैं -

श्रीजिनस्य यशसा जगद्बहिःसर्पतेव वपुरन्तरस्थितेः ।
वासरैः कतिपयैर्नृपप्रिया प्राप पक्वशरपाण्डुरं वपुः ।।[३]

गर्भ में तीर्थङ्कर नेमिनाथ है अभी से उनका यश विस्तार प्राप्त कर रहा है । अतएव उनके यश के कारण मानों माता का शरीर पीत हो गया है ।

प्रयोग के अन्य स्थल - प्रथम सर्ग - ३ , ३५, ३६

तृतीय सर्ग - ६, ११, २० — पंचम सर्ग - १०, ३२

अष्टम सर्ग - ५० — नवम सर्ग - ३

एकादश सर्ग - १४, १५, २१, ३४ — पंचदश सर्ग - २०, २२

रूपक :

उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन रूपक अलंकार होता है । वाग्भट ने रूपक का बड़े ही प्रभावशाली व सुन्दर ढ़ंग से चित्रण किया है ।

---

१. नेमिनिर्वाण, ५/६१ २. वही, ४/५१ ३. वही, ४/५

प्रथम सर्ग में बड़ी सुन्दर योजना प्रकट की है। कवि ने संसार में समुद्र का आरोप और दया में नाव का आरोप किया है। यथा -

अपारसंसारसमुद्रनावं देयाद्दयालुः सुमतिर्मतिं नः।
नित्यप्रियायोगकृते यदन्ते तपस्यतीवाविरतं रथाङ्गः।।[१]

इसी प्रकार यहाँ भी देखिये -

तपः कुठारक्षतकर्मवल्लि।[२]

यहाँ पर कर्म में वल्लिका और तप में कुठार का आरोप किया है। प्रयोग के अन्य स्थल -

प्रथम सर्ग - ५९ चतुर्थ सर्ग - ५ पंचदश सर्ग - ७५

विरोधाभास :

जहाँ वास्तविक विरोध न रहते हुए भी शब्दों में विरोध जैसा प्रतीत होता है, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। नेमिनिर्वाण में विरोधाभास अलंकार का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। जो अत्यन्त स्वाभाविक एवं अत्यन्त सुन्दर है। तथा -

अराय तस्मै विजितस्मराय नित्यं नमः कर्मविमुक्तिहेतोः।
यः श्रीसुमित्रातनयोऽपि भूत्वा रामानुरक्तो न बभूव चित्रम्।।[३]

काम को जीतने वाले उन अरनाथ भगवान को कर्ममुक्ति के लिये नित्य नमस्कार हो, जो सुमित्रा का पुत्र (लक्ष्मण की माता, अरनाथ की माता) होते हुये भी रामानुरक्त (राम में अनुरक्त, रामा स्त्री में) अनुरक्त नही था। यह आश्चर्य की बात है।

यहाँ पर विरोध की प्रतीति कितनी सुन्दर बन पड़ी है कि सुमित्रा पुत्र होने पर भी जो राम में अनुरक्त न हुआ। लक्ष्मण होने पर भी राम में अनुरक्त नहीं हुआ, यह विरोध है, क्योंकि लक्ष्मण तो राम के भक्त थे। अतः इस विरोध का परिहार करने के लिये सुमित्रा तनय अर्थात् अर तीर्थङ्कर होते हुये भी जो रामा-स्त्रियों में आसक्त नहीं हुये यह श्लेष के आध ार पर निकलता है। अन्य उदाहरण देखिये –

आहारदानान्यखिलानि यच्छन्नजायताक्षीरकृतार्थितार्था।
यो दानवत्वे सुरलोकभक्तः कोबुध्यते राजगतिं विचित्राम्।।[४]

सभी प्रकार के आहार-दानों को देता हुआ भी जो याचकों को अक्षीर (दूध से भिन्न-आँखो से प्रेरित) अन्न को देने वाला हुआ और जो दानव (दान देने वाला-दनु का पुत्र

१. नेमिनिर्वाण, १/५ २. वही, १/१९
३. नेमिनिर्वाण, १/१८ ४. वही, १/६९

राक्षस) होने पर भी देवताओं का भक्त था । इस विचित्र राजगति को कौन जान सकता है ।

प्रयोग के अन्य स्थल - प्रथम सर्ग - १९, ७५

परिसंख्या :

कोई पूछी गई या बिना पूछी गई बात उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध में पर्यवसित होती है, वह परिसंख्या अलंकार है । वाग्भट ने द्वारावती का वर्णन करते हुये कहा है कि -

प्रकोपकम्पाधरबन्धुराभ्यो भयं वधूभ्यस्तरुणेषु यस्याम् ।
कर्पूरकालेयकसौरभाणां प्रभञ्जनः प्रौरगृहेषु चौरः ।।[१]

(जिस नगरी में क्रोध से कांपते हुये अधरों से बन्धुर बधुओं से भय को प्राप्त कर कपूर और कालेयक केशर की हवायें नगर निवासियों के घरों में चोर बन गई थी ।)

अर्थात् इस द्वारावती नगरी में कोई चोर नहीं था, चोर यदि कोई था तो वह वायु ही था जो नित्य सुन्दरियों के मुख से सुगन्धि को चुरा लेता था ।

प्रयोग के अन्य स्थल - एकादश सर्ग - १३

उदाहरण :

जहाँ प्रस्तुत को अप्रस्तुत द्वारा उदाहरण देकर दिखाया जाता है वहाँ उदाहरण अलकार होता है । यथा -

यदुयोषितां विशदमद्यपयः प्रतिबिम्बितानि वदनानि पुरः ।
रभसेन पानरसिकानि बभुश्चषकोदरेषु पतितानि यथा ।।[२]

यादवों की नायिकाओं के स्वच्छ मधु से प्रतिबिम्बित मुखपात्रों में गिरे हुये पान रसिकों के समान मालूम पड़ रहे थे ।

यहाँ कवि ने यथा शब्द द्वारा उदाहरण अलंकार की योजना की है ।

सहोक्ति:

'सहोक्ति' वह अलंकार है, जहाँ एकपद 'सह' (साथ) अर्थ के सामर्थ्य से दो अर्थों का वाचक होता है । यथा- नेमिनिर्वाण में 'सह' शब्द के नियोजन द्वारा कवि ने एक ही शब्द को दो अर्थों का बोधक कहा है । यथा -

अथसलिलविलासं यादवानामुदारैः सह निजनिजदारैस्तत्र वीक्ष्येव रम्यम् ।
दिनपतिरपि खिन्नः खं व्यतीत्यातिमात्रं, करकलितदिनश्रीः सागरान्तं जगाम ।।[३]

इस प्रकार उदारचेता यादवों द्वारा अपनी-अपनी नायिकाओं के साथ की गई मनोरम जल-क्रीड़ा को देखकर दुःखी सूर्यदेव भी अति विस्तृत आकाश का अतिक्रमण कर और किरणों द्वारा दिन की शोभा बढ़ाकर सागर पर्यन्त चला गया ।

१. नेमिनिर्वाण, १/४२
२. वही, १०/१०
३. वही, ८/८०

समासोक्ति :

द्व्यर्थक विशेषणों द्वारा अप्राकरणिक अर्थ का भी संक्षेप से वर्णन करना समासोक्ति अलंकार कहलाता है । समान विशेषणों से, प्रस्तुत और अप्रस्तुत अर्थों की योजना कर कवि वाग्भट ने इस अलंकार का प्रयोग किया है । यथा-

प्राचीं परित्यज्य नवानुरागामुपेयिवानिन्दुरुदारकान्तिः ।
उच्चैस्तनीं रत्ननिवासभूमिं कान्तां समाश्लिष्यति यत्र नक्तम् । ।[१]

रात्री के समय उत्कृष्ट कान्तिवाला चन्द्रमा नूतन अनुराग लालिमा से अलंकृत पूर्व दिशा को छोड़कर अत्यन्त उन्नत स्तनों वाली और मनोहर रत्न निर्मित महलों की भूमि का आश्लेषण करता है । समासोक्ति द्वारा अप्रस्तुत अर्थ - जैसे कोई उत्कृष्ट इच्छा वाला नायक नवीन अनुराग-प्रेम से उन्मत्त स्त्री को छोड़कर उन्नत स्तन वाली किसी अन्य कान्ता का आश्लेषण करता है, इसी प्रकार चन्द्रमा प्राची को छोड़कर द्वारावती की उच्च भूमि का आलिङ्गन करता था ।

अर्थान्तरन्यास :

सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से साधर्म्य या वैधर्म्य से जो समर्थन किया जाता है, उसे अर्थान्तरन्यास अलंकार कहते हैं । यथा नेमिनिर्वाण में -

सद्रत्नराशिरिव भास्वरकायकान्ति-
राक्रान्तकर्मगहनोऽग्निरिव प्रदीप्तः ।
भावी सुतः स च भविष्यति तावकीनः
स्वप्नाः सतां नहि भवन्त्यनपेक्षितार्थाः । ।[२]

रत्नों के समूह की तरह चमकती हुई शरीर कान्ति वाला, जलती हुई अग्नि की तरह गहन कर्मों को आक्रान्त कर देने वाला वह तुम्हारा पुत्र होगा । क्योंकि सज्जनों के स्वप्न अनपेक्षित अर्थ वाले नहीं होते ।

यहाँ पर भावी पुत्रोत्पत्ति रूप घटना का समर्थन सज्जनों के स्वप्न दर्शन से किया गया है, अतः यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

प्रयोग के अन्य स्थल -

चतुर्थ सर्ग - ७	पंचम सर्ग - ३३, ४१
नव सर्ग - १, १५, १७	त्रयोदश सर्ग - ८२

---

१. नेमिनिर्वाण, १/४१ २. वही, ३/४३

नेमिनिर्वाण : भाषा शैली एवम् गुणसन्निवेश

साहित्य में शैली से तात्पर्य 'रीति' या 'मार्ग' से होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसी आधार पर 'रीति सम्प्रदाय' नाम से एक अलग सम्प्रदाय चल पडा है, जिसके जनक आचार्य वामन थे। इनसे पहले 'रीति' के स्थान पर 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया जाता था। आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को ही काव्य की आत्मा स्वीकारा है अर्थात् जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर अस्तित्वहीन होता है, उसी प्रकार रीति के बिना काव्य का कोई अस्तित्व नहीं है।

रीति शब्द 'रीङ्' गतौ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है गति, मार्ग, वीथि या पन्थ। सरस्वती कण्ठाभरण के टीकाकार रामेश्वर मिश्र ने लिखा है कि गुणों से युक्त पद रचना रीति है। जिसके द्वारा परम्परया चला जाता है, उसे रीति कहते हैं, अतः रीति से अभिप्राय मार्ग से है।[1] प्रत्येक कवि अपने-अपने भावों की अभिव्यक्ति अपने-अपने ढंग से करता है। एक ही अर्थ को अनेक कवि अलग-अलग पदावलियों में प्रस्तुत कर सकते हैं और इससे रचनाओं के पढ़ने से आनन्द और सौन्दर्य की मात्रा में भी अन्तर पड़ता है। वास्तव में शैली का सम्बन्ध रचनाकार के व्यक्तित्व से होता है तभी तो किसी भी रचना पर उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप अवश्यमेव पड़ती है।

रीति के स्वरूप के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार शरीर के अंगों का संगठन होता है, उसी प्रकार भाषा में पदों का संगठन होता है और इसी संगठन को रीति कहा जाता है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार यह काव्य के आत्मभूत तत्त्व रस, भाव आदि की उपकारक होती है।[2]

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने रीति के भिन्न-भिन्न भेद किये हैं, किन्तु सबके निष्कर्ष स्वरूप आचार्य विश्वनाथ ने रीति के चार ही भेद स्वीकारे हैं और यही विद्वत् समुदाय में प्रचलित है - वैदर्भी, गौडी, पांचाली तथा लाटिका।[3]

नेमिनिर्वाण काव्य में प्रायः सभी रीतियों का प्रयोग हुआ है, जो इस प्रकार हैं —

वैदर्भीरीति :

मधुशब्दों से युक्त समास रहित अथवा छोटे-छोटे समासयुक्त पदों से मनोहर रचना को वैदर्भीरीति कहते हैं।[4] यथा-

विलोकयन्यत्र कुतूहलेन लीलावतीनां मुखपंकजानि।
जज्ञे स्मरः सेर्ष्यरतिप्रयुक्तकर्णोत्पलाघातसुखं चिरेण।।[5]

---

१. सरस्वती कण्ठाभरण, २/२६

२. पदसंगठना रीतिरंगसंस्थाविशेषवत्। उपकृती रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधाः।। - साहित्यदर्पण, ९/१

३. वैदर्भीचाथ गौडी च पांचाली लाटिका तथा। साहित्य दर्पण ९/२

४. माधुर्यव्यंजकैः रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।, वही ९/२-३

५. नेमिनिर्वाण, १/४४

सुन्दरियों के मुख कमल को कुतूहल पूर्वक देखते हुए युवक ईर्ष्या पूर्वक कर्णों में प्रयुक्त कमलों की मार के सुख को बहुत समय तक अनुभव करते रहे ।

इस प्रकार इस श्लोक में समास छोटे होने से तथा प्रसाद गुण की अधिकता होने से काव्य सहज बोधगम्य है ।

गौडी रीति :

ओज को प्रकाशित करने वाले कठिन वर्णों से युक्त तथा दीर्घ समास से युक्त बन्ध को गौड़ी रीति कहते हैं ।[१]

नेमिं निर्वाण के निम्न श्लोक को देखिये —

झलज्झलद्दिग्गजकर्णकीर्णैवातैरिवाशासु सदा प्रदीप्तः ।
यस्यारिभूभृद्वनवंशदाहे प्रतापवह्निः पटुतां बभार । ।[२]

यहाँ पर कठिन वर्णों से युक्त तथा दीर्घ समास के कारण तथा ओज गुण की प्रधानता होने से गौड़ी रीति का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

पांचाली रीति :

वैदर्भी एवं गौड़ी रीति के अवशिष्ट वर्णों से जो रचना की जाये अर्थात् जो वर्णन न तो माधुर्य का व्यंजक हो और न ओज का तथा जहाँ पर पाँच छः पदों तक समस्त पद हों वहाँ पांचाली रीति होती है ।[३] यथा - निम्न श्लोक में यह रीति दृष्टिगत है -

एतदुल्लसितसान्द्रपल्लवच्छन्नविद्रुमलतावलम्बितम् ।
भाति वेतसवनं करालितं वाडवेन शिखिनेव सर्वतः । ।[४]

लाटी रीति :

वैदर्भी एवं पांचाली रीति के कुछ लक्षणों से युक्त होने पर लाटी रीति होती है ।[५] यथा-निम्न श्लोक को देखिये –

तत्र प्रसिद्धास्ति विचित्रहर्म्या रम्या पुरी द्वारवतीति नाम्ना ।
पर्यन्तविस्तारिविशालशालच्छायाछविर्यत्परिखापयोधिः । ।[६]

यहाँ पर प्रसादगुण युक्त वैदर्भी रीति से समन्वित अल्पसमास पद वर्ण माधुर्य व्यंजक है, किन्तु नीचे के दो चरणों में दीर्घ समास है, अतः यहाँ लाटी रीति प्रयुक्त है ।

---

१. ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुनः समासबहुला गौड़ी ।-साहित्यदर्पण, ९/३ २. नेमिनिर्वाण, १/६०
३. वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः । समस्त पंचषट्पदो बन्धः पांचालिका मता । ।-साहित्यदर्पण, ९/४
४. नेमिनिर्वाण, ४/५५ ५. लाटी तु रीति वैदर्भी पांचाल्योरन्तरे स्थिता ।-साहित्यदर्पण, ९/५
६. नेमिनिर्वाण, १/३४

गुण :

काव्य के अन्य तत्त्वों की भाँति ही काव्य में भावों की मधुरता बनाने के लिये मधुर भाषा की आवश्यकता होती है। मधुर भाषा को बनाने के लिए गुण-निरूपण आवश्यक है। आचार्य भरत ने गुण को दोषों का विपर्यय कहा है। भरत के अनुसार दोष शोभा के विघातक हैं और गुण काव्य शोभा के विधायक[१]। किन्तु भारतीय काव्य शास्त्र में गुण की स्पष्ट एवं वैज्ञानिक परिभाषा सर्वप्रथम आचार्य वामन ने प्रस्तुत की। इनके अनुसार काव्य के शोभा-कारक धर्म को गुण कहा जाता है। गुण नित्य है जिनके अभाव में सौन्दर्य विधान नहीं हो सकता। उनके अनुसार गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं, ये काव्य के शोभावर्द्धक उपादान हैं।

भामह तथा दण्डी ने गुण विभाग का तो विवेचन किया है, किन्तु गुण की स्पष्ट परिभाषा नही दे सके। ध्वनिवादी आचार्य गुण को रस का धर्म या काव्य के प्रधानभूत तत्त्व रस के आश्रित कहते हैं। ये शरीरभूत शब्दार्थ के धर्म नहीं अपितु आत्मभूत रस के अंग हैं।[२]

आचार्य मम्मट ने गुणों का स्वरूप बताते हुये कहा है कि जिस प्रकार मानव शरीर में सारभूत आत्मा के धर्म, शौर्य, औदार्य आदि हैं उसी प्रकार काव्यशरीर के सारभूत तत्त्व रस के धर्म जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक हैं वे गुण हैं।[३] अतः काव्य में रस अंगीरूप में रहते हैं तथा गुण उन रसों में नियत रूप से रहते हुये उपकार करते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने भी काव्य में गुण के इसी स्वरूप को माना है।[४]

अतः यह स्पष्ट होता है कि जिन लक्षणों से काव्य में विशेषता प्रतीत हो और दूसरों को प्रभावित करे उन्हें गुण कहा जाता है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुण रस के धर्म हैं। काव्य में इनकी अचल या नित्य स्थिति है। यें रस के उत्कर्षक या काव्य के शोभाधायक तत्त्व हैं।

गुण के भेद :

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में दश गुणों का कथन किया है[५] उन्होंने माधुर्य और औदार्य गुणों को कहकर ओज के स्वरूप को भी बतलाया है। अन्य गुणों के विषय में उन्होंने नहीं कहा है।[६]

भरत के पश्चात् भामह ने कहा है कि काव्य में तीन गुण होते हैं - ओज, प्रसाद और माधुर्य। उन्होंने कहा है कि माधुर्य और प्रसाद में समस्त पदों का प्रयोग अधिक नहीं होना चाहिये। किन्तु ओजगुण की सिद्धि के लिए समास की बहुलता होनी चाहिए।[७] दंण्डी ने

---

१. नाट्यशास्त्र, १७/९४ २. तमर्थमवलम्बन्तेयेऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृता। - ध्वन्यालोक, २/६

३. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादिरिवात्मनः। उत्कर्षहितवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः। -काव्यप्रकाश, ८/६६

४. साहित्यदर्पण, ८/१

५. श्लेषप्रसाद-समता-समाधिमाधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्चकाव्यस्यागुणाः दशैते।। - भरतनाट्यशास्त्र, १७/९६

६. समासवद्भिर्विविधैर्विचित्रैश्च पदैर्युतम्।
सा तु स्वरैरुदारैश्च तदोजः परिकीर्त्यते।। -भरतनाट्यशास्त्र, १६/१९ ७. काव्यालंकार की भूमिका, पृ० ३८

गुणों के स्वरूप का विवेचन अधिक विस्तार से किया है । गुणों के अतिरिक्त काव्य के दो मार्ग भी बताये - वैदर्भ और गौड़ । गुण इन्ही के प्राणभूत हैं । दण्डी ने श्लेष आदि दश गुण वैदर्भ मार्ग में और इनके विपरीत गुण गौड़ मार्ग में माने हैं ।[१]

अग्निपुराण में कहा गया है कि जो तत्त्व काव्य में महती छाया उत्पन्न करते हैं वे गुण हैं ।[२] उसमें शब्द गुण, अर्थगुण और उभयगुण माने हैं । वामन ने रीतियों के साथ-साथ गुणों के साक्षात् सम्बन्ध को प्रतिपादित किया है । वे रीति को काव्य की आत्मा तथा रीति की आत्मा गुण को मानते हैं ।[३] वामन ने गुणों की संख्या बीस मानी हैं, उनमें दश शब्द गुण और दश अर्थ गुण हैं ।

परन्तु परवर्ती आचार्य मम्मट और विश्वनाथ ने गुणों की संख्या तीन ही स्वीकार की है - माधुर्य, औज और प्रसाद ।[४] इन्होंने बताया कि उन तीन गुणों में ही अन्य सभी गुणों का अन्तर्भाव हो जाता है । विश्वनाथ ने भी लिखा है कि माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन ही गुण हैं ।[५]

अतः गुण तीन ही माने जाते हैं - माधुर्य, ओज और प्रसाद । नेमिनिर्वाण में इन तीनों ही गुणों का प्रयोग हुआ है ।

माधुर्य : चित्त को पिघलाने वाले द्रवीभूत करने वाले आनन्ददायी प्रमुख गुण को माधुर्य कहते हैं । यह संभोग श्रृंगार, करुण, विप्रलम्भ श्रृंगार और शान्त रस में क्रमशः अधिक मधुर हो जाता है ।[६]

माधुर्य गुण के अभिव्यंजक में ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर (क से म पर्यन्त) अपने वर्गों के अन्तिम वर्णों से युक्त वर्ण तथा लघु र, ण वर्ण और समास रहित या छोटे-छोटे समासों वाली रचना सहायक है ।[७]

नेमिनिर्वाण में माधुर्य गुण का अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में प्रयोग हुआ है । विशेष रूप से विप्रलम्भ श्रृंगार का यह उदाहरण देखिये -

इन्दोर्दीप्त्या दत्तदाहातिरेका यद्यच्छुभ्रं तत्र तत्रापरक्ता ।
सा कर्पूरं दन्तजं कर्णपूरं हारं हासं चेति सर्वंव्यहासीत् । ।[८]

---

१. श्लेषः प्रसादः समता माधुर्य सुकुमारता । अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिः समाधयः । ।
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः । - काव्यादर्श, १/४१-४२

२. यः काव्ये महती छायामनुग्रंह्यति असौ गुणः । - अग्निपुराण, ३४६/३

३. रीतिरात्मा काव्यस्य । विशिष्टा पदसंघटना रीतिविशेषगुणात्मा । - काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/२-६-८

४. माधुर्योजः प्रसादाख्यस्त्रयस्ते न पुनर्दशः । - काव्यप्रकाश, ८/६६

५. माधुर्यओजोऽथप्रसाद इति ते त्रिधा - साहित्यदर्पण, ८/१

६. चित्तद्रवीभावमयोऽऽह्लादो माधुर्यमुच्यते ।
संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात् । । - साहित्यदर्पण, ९/२

७. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू । अवृतित्तर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा । - काव्यप्रकाश, ८/७४

८. नेमिनिर्वाण, ११/९

नायिका के कृत्रिमकोप में माधुर्य गुण देखिये -

परिलंघनीयगगनान्तमागतस्तरणिर्बभूव सहसारुणप्रभः ।
कलुषीभवत्यनुकलं दिनात्यये प्रभुरप्युपैति यदिवानुगम्रियम् । ।[१]

करुण रस में माधुर्य गुण देखिये

श्रुत्वा वचस्तस्य स वश्यवृत्तिः स्फुरत्कृपान्तः करणः कुमारः ।
निवारयामास विवाहकर्माण्यधर्मभीरुः स्मृतपूर्वजन्मा । ।[२]

अन्यत्र शान्त रस के विवेचन में भी सर्वत्र माधुर्य गुण दृष्टिगोचर होता है ।

ओज :

ओज का लक्षण करते हुये आचार्य मम्मट ने कहा है कि वीर रस में रहने वाली आत्मा अर्थात् चित्त के रस की हेतुभूत दीप्ति ओज कहलाती है । यह सामान्यतः वीर रस में रहती है । परन्तु वीभत्स और रौद्र रसं में इसका आधिक्य विशेष चमत्कारजनक होता है । इसमें कठिन शब्द और लम्बे-लम्बे समासयुक्त पदों का प्रयोग किया गया है ।[३] इसी प्रकार साहित्यदर्पण में भी कहा है कि चित्त का विस्ताररूप दीप्तत्व ओज कहलाता है । यह वीर वीभत्स और रौद्र में क्रमशः बढ़ता जाता है ।[४]

ओज के अभिव्यञ्जक वर्ण वर्ग के प्रथम अक्षर के साथ मिले हुये द्वितीय और तृतीय अक्षर के साथ लिखे हुए चतुर्थ अक्षर आगे या पीछे रेफ और ट, ठ ड ढ श ष हैं ।[५]

नेमि-निर्वाण में वीर और रौद्र रस में ओज गुण का प्रयोग किया गया है । राजा समुद्रविजय के वर्णन में ओजगुण द्रष्टव्य है –

झलज्झलद्दिग्गजकर्णकीर्णैर्वातैरिवाशासु सदा प्रदीप्तः ।
यस्यारिभूभृद्वनवंशदाहे प्रतापवह्निः पटुतां बभार । ।
यदर्धचन्द्रापचितोत्तमाङ्गैरुद्दण्डदोस्ताण्डवमादधानैः ।
विद्वेषिभिर्दत्तशिवाप्रमोदैः कैः कैर्न दध्रे युधि रुद्रभावः । ।[६]

---

१. नेमिनिर्वाण, ९/२

२. वही, १३/५

३. दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररस स्थितिः,
वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च । । - काव्यप्रकाश, ८/६९-७०

४. साहित्यदर्पण, ८/४

५. योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेफ तुल्ययोः ।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि । । - काव्यप्रकाश, ८/७५

६. नेमिनिर्वाण, १/६०-६१

प्रसाद :

मम्मट ने कहा है- जैसे सूखे इन्धन में अग्नि शीघ्र ही व्याप्त हो जाती है, तथा स्वच्छ वस्त्र में जल व्याप्त हो जाता है। इसी प्रकार जो गुण सहसा ही चित्त में व्याप्त हो जाता है वह प्रसाद्गुण है। यह सभी रसों में व्याप्त रहता है।[१]

इसी प्रकार विश्वनाथ ने लिखा है कि सूखी लकड़ी में अग्नि की तरह जो चित्त में व्याप्त हो जाता है, वह प्रसाद्गुण है।[२]

जहाँ शब्द के श्रवण मात्र से ही शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाती है जो सब में समान रूप से हो सकता है वह प्रसाद गुण का व्यंजक होता है।[३]

'नेमिनिर्वाण' में सर्वत्र ही इस गुण का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

विलोकयन्यत्र कुतूहलेन लीलावतीनां मुखङ्कजानि।
जज्ञे स्मरः सेर्ष्यरतिप्रयुक्तकर्णोत्पलाघातसुखं चिरेण।।[४]
श्रुत्वा तमार्तध्वनिमेकवीरः स्फारं दिगन्तेषु स दत्तदृष्टिः।
ददर्श वाटं निकटे निषण्णः खिन्नाखिलश्वापदवर्गगर्भम्।।
श्रुत्वा वचस्तस्य स वश्यवृत्तिः स्फुरत्कृपान्तः करणः कुमारः।
निवारयामास विवाहकर्माण्यधर्मभीरुः स्मृतपूर्वजन्मा।।[५]

---

१. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यत्यन्यत्प्रसादो सौ सर्वत्र विहितस्थितिः।। - काव्यप्रकाश, ८/७०
२. साहित्यदर्पण, ८/४
३. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।। - काव्यप्रकाश, ८/७६
४. नेमिनिर्वाण, १/४४
५. वही, १३/२,५

अध्याय - पाँच

नेमिनिर्वाण में वर्णनवैचित्र्य

प्रकृति का चित्रण काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। इसी हेतु सभी कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति चित्रण अपनाया है।

महाकवि वाग्भट का वर्णन वैचित्र्य अनुपम है। वर्णन में कवि ने विभिन्न आयामों को चित्रित कर वर्णन-साफल्य स्थापित किया है।

कवि ने नेमिनिर्वाण काव्य में वर्णन चमत्कार के सृजन के लिये वस्तुओं का चित्रण सुन्दर रूप में किया है। प्रस्तुत काव्य घटना प्रधान न होते हुये भी अलंकृत वर्णनों की प्रधानता से युक्त है। देश, नगर, सन्ध्या, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रभात, सूर्योदय, वन, नदी, पर्वत, समुद्र, द्वीप और प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन सांगोपांग तथा अलंकृत है।

देश वर्णन :

महाकवि वाग्भट ने सुराष्ट्र देश की स्थिति और वहाँ की उर्वरा पृथ्वी का बड़ा ही व्यवस्थित चित्रण किया है।

देवताओं के निवास की तरह सुराष्ट्र नाम से प्रसिद्ध रमणीय देश है, जिसमें कृषि उत्तम तिलों वाली और स्त्री सुन्दर केशों वाली एवं स्वभाव से ही मधुर हैं। ओस के बिन्दुओं के हार के समान चारों दिशाओं में फैले हुए गायों के समूहों से जो देश अपने वैभव के अभिमान से दूसरे देशों की अवज्ञा से मानों हँसी उड़ाता है। जहाँ पर निर्मल जल वाले तालाब प्रकाशित होते हुए सुन्दर पत्तों वाली लताओं के हरितवर्ण उत्तरीय से युक्त वनवास को धारण करने वाली पृथ्वी के विलासों के दर्पण को धारण करते हैं। जहाँ पर खेतों में नेत्रों से तिरस्कृत थकावट को प्राप्त मिलकर उपद्रव के लिये आये हुए मृगों के समूह को गोपियाँ गीत के गुणों से निरन्तर रोक लेती हैं। जहाँ पर हिम के समान श्वेत वर्ण वाले अर्जुन वृक्षों से युक्त हरी भरी भूमियाँ बलाकाओं के आकाश से गिरते हुए बादलों की तरह मालूम पड़ती हैं।

(जो सुराष्ट्र देश) ऋषभ नामक स्वर विशेष से सुन्दर ग्राम स्वरों के समुदाय से विराजित गुरुतर श्रेष्ठ अथवा बड़ी बड़ी तन्त्रियों के सन्निवेश से युक्त तथा सरस्वती देवी के समीप में स्थित उसके हाथ से विलसित मनोहर, भाष्ययुक्त, विशाल घोषवती वीणा को धारण करते हैं। अर्थात जिस देश के मनुष्य हर वस्तु की चिन्ता से रहित होकर हाथ में वीणा धारण कर

संगीत सुधा का पान करते हैं ।[१]

नगर वर्णन:

वाग्भट ने नगर की स्थिति का बड़ा ही व्यवस्थित चित्रण किया है । द्वारावती के वर्णन में कवि ने प्राकार, परिखा तथा सुन्दर भवनों का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है ।

समुद्र की परिखा से युक्त सुन्दर भवनों वाली द्वारावती सुशोभित थी । जहाँ पर चंचल तरंगों रूपी शुण्ड के प्रहार से जल रूपी हाथियों के द्वारा वप्रक्रीडा को नष्ट करते हुये सिन्धु मानों हँस रहा हो । जिस नगरी में निरन्तर बीधँने के अभ्यास में लगे हुये कामदेव ने धनुर्विद्या के कर्म में दक्षता को पाकर मानों संसार के चंचल मनों को लक्ष्य बनाया तथा जो नगरी समुद्र के मध्य कमलिनी के समान शोभायमान होती थी । जिस प्रकार कमलिनी विकसित कमलों की छाया से जिनकी आतप व्यथा शान्त हो गई ऐसे राजहंसों (हंसविशेष) से सेवित होती है । उसी प्रकार वह नगरी भी बड़े-बड़े श्रेष्ठ राजाओं से सेवित थी । अर्थात् उसमें अनेक राजा महाराजा निवास करते थे । इस प्रकार की नगरी के प्रतिबिम्ब को देखकर समुद्र में वरुण देव ने भी उसे अपनी राजधानी बनाने के लिये मन में एक चित्र खींचा था ।

"उन्नत शिखरों वाली द्वारावती के हर्म्यों पर स्थित सिंहों से यह मेरा मृग भयभीत हो गया है" इस प्रकार विचार कर चन्द्र देव भवनों की स्फटिक शिला की किरणों से स्थिर रह जाता था ।[२]

प्रकृति चित्रण:

सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना के लिए प्रकृति का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है । मानव को प्रकृति के प्रत्यक्ष बोध में सुख-दुःख की संवेदना प्राप्त होती है अतः कलात्मक भावों की अभिव्यंजना एवं यौन सम्बंधी रागात्मक भावों के रूप-रंग के लिये प्रकृति का आश्रय कवि को ग्रहण करना पड़ता है । कवि वाग्भट ने प्रकृति के अनेक रम्य रूप उपस्थित किये हैं । कवि

१. रम्याः सुराष्ट्राभिधया प्रसिद्धा दिवो निवेशा इव सन्ति देशाः ।
तिलोत्तमा यत्र कृषिः सुकेशी स्त्री मञ्जुघोषा च किल प्रकृत्या ।।
गोमण्डलैर्दिङ्मुखविप्रकीर्णैर्नीहाररहारप्रतिमैः समन्तात् । देशान्तराणां विभवेन दृप्ता येऽवज्ञया हासमिवोद्वहन्ति ।।
वपुर्वनाली हरितोत्तरीयमुल्लासिसस्यपत्रलतं वहन्त्याः । यत्रावनेर्विभ्रमदर्पणत्वं सरांसि विभ्रत्यमलोदकानि ।।
चक्षुःपराभूतमिवात्तखेदं संभूय संप्राप्तमुपद्रवाय । निरुन्धते गीतगुणेन गोप्यः क्षेत्रेषु यत्रानिशमेणयूथम् ।।
यत्रार्जुनीभिस्तुहिनार्जुनाभिरध्यासिताः साद्वलभूमिभागाः । घना नभस्तः पतिताः कथंचित्समं बलाकाभिरिवावभान्ति ।।
विराजमानामृषभाभिरामैर्ग्रामैगरीयो गुणसंनिवेशाम् । सरस्वतीसंनिधिभाजमुर्वी ये सर्वतो घोषवतीं वहन्ति ।।
- नेमिनिर्वाण, १/२८-३३

२. तत्र प्रसिद्धास्ति विचित्रहर्म्या रम्या पुरी द्वारवतीति नाम्ना । पर्यन्तविस्तारिविशालशालच्छायाच्छविर्यत्परिखापयोधिः ।।
विलोलकल्लोलकरप्रहारैर्वावारणैर्वातनिपातिदन्तैः । यद्वप्रमुच्छेत्तुमजातशक्तिः फेनैर्विलक्षो हसतीव सिन्धुः ।।
राधाव्यधाभ्यासपरेण यस्यामासाद्य तत्कार्मुककर्म दाक्ष्यम् । मनोभुवा विश्वमनांसि मन्ये नीतानि लोलान्यपि लक्ष्यभावम् ।।
परिस्फुरन्मण्डलपुण्डरीकच्छायापनीतातपसंप्रयोगैः । या राजहंसैरुपसेव्यमाना राजीविनीवाम्बुनिधौ रराज ।।
एवं विधां तां निजराजधानीं निर्मापयामीति कुतूहलेन । छायाछलादच्छजले पयोधौ प्रचेतसा या लिखितेव रेजे ।।
उत्तुंगश्रृंगोत्करकेशरिभ्यो मागाद्भयं नक्तमयं मृगो मे । इतीव यत्र स्फटिकाश्मशालाकरैर्मृगाङ्कः स्थगयांबभूव ।।
- नेमिनिर्वाण १/३४-३८ एवं १/४३

प्रकृति के ऊपर मानव का आरोप करता हुआ कहता है -

"सूर्य के चले जाने से भाग्योदय से अन्य दिशा का सेवन करने वाला तथा अन्धकार समूह से आवृत्त मुँह वाला पक्षी-समूह समान दुःख से दुःखी हो रहा था। रोना धर्म मनुष्य का है कवि ने इसे पक्षियों में आरोपित कर मानव रूप का चित्रण किया है।

पृथ्वी रस का अत्यधिक पान करने से सूर्यदेव की किरणें पीली हो गयी थी- मन्द पड़ गयी थी, अतः पुनः पटुता प्राप्त करने के हेतु रात्रि में औषधियों का सेवन कर रही हैं।

यहाँ सूर्य किरणों में मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है। कोई भी मनुष्य क्षीण शरीर हो जाने पर पुनः शक्ति प्राप्त करने के लिये औषधियों का सेवन करता है, उसी प्रकार सूर्य किरणें भी औषधियों का सेवन कर रही हैं।

कुमुदनियों की सहानुभूति का चित्रण करता हुआ कवि उसमें मानवीय भावनाओं का आरोप करते हुये कहता है कि रात्रि में विहार करने वाले और सूर्य के वियोग से विलाप करते हुये पक्षियों की करुण क्रंदन रूपी विपत्ति को देखने में असमर्थ कुमुदिनी ने अपने कमल रूपी नेत्र बन्द कर लिये।[1]

यहाँ कुमुदनियों में मानव भावनाओं का आरोप किया गया है।

उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण करते हुये कवि ने मलयानिल का वर्णन करते हुये कहा है कि -

"मलयानिल" पथिकों के मनरूपी कानन में कामदेव के समान अग्नि प्रदीप्त करने के लिये शिशिर ऋतु के बीत जाने से कमल पूर्ण दक्षिण दिशा को प्राप्त हुआ है।[2]

इसी प्रकार आलम्बन के रूप में भी कवि ने प्रकृति-चित्रण किया है।[3]

सूर्योदय एवं प्रातःकाल:

वाग्भट ने प्रभात वर्णन का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। चन्द्रकिरणों से स्फटिक मणि निर्मित सा प्रासाद जो रात्रि में सुधा धवल प्रतीत होता था, अब सूर्य किरणों के सम्पर्क से कुंकुम स्नात सा मालूम पड़ रहा था। नदी और सरोवरों का जल अरुण प्रतीत हो रहा था। सूर्योदय का वर्णन करते हुये कवि कहता है :-

सूर्य के उदित होने का समय है। मनोज्ञ दाँन्तो वाले क्रीड़ा-शुक अपनी बुद्धि के कारण

---

१. प्रलयं गते दिनपतौ विधेर्वशात्परिरभ्य गाढमितरेतरं दिशः ।
समदुःखिता इव पतत्रिणां रवै रुरुदुस्तमःसिचयसंवृतानना: ।।
अतिमात्रपीतवसुधारसं क्रमात्परिमन्दतां गतमहःपतेर्महः ।
अधिगन्तुमात्मपटुतां पुनर्दिने ध्रुवमौषधीरभुजत प्रतिक्षपम् ।।
करुणस्वरं विलपतोरनेकशः पुरतो निशाविरहिणोर्विहंगयोः ।
विपदं विलोकयितुमक्षमा ध्रुवं नलिनी सरोजनयनं न्यमीलयत् ।। - नेमिनिर्वाण ९/९-११

२. पथिकमानसकाननपावकस्मरमिव प्रतिबोधयितुं दधे ।
यमदिशा शिशिरात्ययतः स्फुरत्कमलयामलया मलयानिलः ।। - वही, ६/१८

३. किशलयैः कुसुमैश्च निरन्तरै प्रतिदिगन्तमशोकमहीरुहः ।
परिवृतः सहसा कमलेक्षणा क्रमहतो महतोरणसंनिभैः ।। - वही ६/३१

अनूदित कर रहे हैं। कुमुदनियों के ऊपर नवीन नवीन सूर्य का पड़ा हुआ जपा कुसुम के समान कान्तिवाला यह तेज शोभायमान होता हुआ ऐसा लगता है कि अपने पति चन्द्रमा के वियोग के दुःख से हृदय से खून का प्रवाह बहा रहे हों। वह समय ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो तोड़ी गई इन्द्र-नील मणि के समान कान्ति वाले अन्तरिक्ष में चंचल मद के कारण धन रूपी पराग से लिप्त शरीर वाले, वेगशील सूर्य के घोड़ों द्वारा उदयाचल पर्वत के तट पर भ्रमरों के द्वारा कमलों पर आक्रमण किया जा रहा है। सन्ध्या के प्रारम्भ में फैले हुये अन्धकार रूपी कस्तूरी के पङ्क से और रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति रूपी चन्दन के संचय से जिस लोक की अर्चना की गई है वह उस समय सूर्य की किरणों के समूह रूपी लेप से लिप्त हो रहा था। अर्थात् रात्रि को ज्योत्स्ना ने चन्दन द्रव्य से चर्चित कर दिया है। पर अब नवीन सूर्य किरणों से संसार कुंकम द्वारा लीपा जा रहा था।

अन्धकार रूपी कीचड़ में फंसी पृथ्वी का पर्वत रूपी उन्नत श्रृंगों से उद्धार करते हुये उदय को प्राप्तः सूर्यदेव ने हजारों किरणों को फैलाकर सार्थक नाम प्राप्त किया है।

प्रातः काल के वर्णन में कवि कहता है कि "प्रातः काल में पीले पीले पराग रूपी वस्त्र से ढके हुये शरीर वाले भ्रमरों का यह समूह महारानी के शोभा के सम्पूर्ण विलास रूपी भवन पर स्थित हो केवल वर्ण से ही नहीं अपितु कर्म से भी कालिमा को प्राप्त कर रहा था। प्रातः काल का बाल-अरुण कालसर्पिणी के समान प्रतीत हो रहा है। इसके बारे में कवि वर्णन करते है कि निर्दोष होने से सुन्दर पल्लवों के समान कान्ति वाला सूर्यमण्डल लोकान्धकार को नष्ट करने से महान् प्रभाव वाले काल-सर्पराज के रत्न के समान मालूम पड़ता था। प्रातःकालीन शीतल मन्द सुगन्ध पवन के चित्रण में कवि कहता है कि स्वच्छ होकर तालाबों में कमलों के काँपने से चारों ओर से गिरे हुये पराग से आच्छादित भ्रमरावलि की वाचालता से अवगत होने वाला पवन मदोन्मत्त हाथी के समान धीरे धीरे प्रवाहित हो रहा था।[१]

---

१. सूर्योदयस्य समयस्त्वमिहाधुनापि, निद्रासि दासि न ददासि मनः स्वकृत्ये ।
इत्यादिकञ्चुकिवचस्तव केलिकीरः, प्रज्ञावशादनुवदन्ति मनोज्ञदन्ति ।।
तेजो जपाकुसुमकान्ति कुमुद्वतीषु, विद्योतते निपतितं नवभानवीयम् ।
भर्तुः कलाकुलगृहस्य वियोगदुःखैर्निर्दारितादिव हृदो रुधिरप्रवाहः ।।
भिन्नेन्द्रनीलमणिकान्तिभिरन्तरिक्षलोलैर्मदाद्धनपरागपरीतकायैः ।
तिग्मद्युतेरुदयशैलतटं तुरङ्गैराक्रम्यते सरभसैः कमलं च भृंगैः ।।
सन्ध्यागमे तततमोमृगनाभिपङ्कैर्नक्तं च चन्द्ररुचिचन्दनसंचयेन ।
यच्चर्चितं तदधुना भुवनं नवीन-भास्वत्करौघघुसृणैरुपलिप्यते स्म ।।
मग्नां तमः प्रसरपंकनिकायमध्याद्गामुद्धरन्सपदि पर्वतुङ्गशृङ्गाम् ।
प्राप्योदयं नयति सार्थकतां स्वकीयमहानं पतिः करसहस्रमसावखिन्नः ।।
एतत्प्रवालदलकोमलकान्तिजालमार्तण्डमण्डलमदोषतयाभिरामम् ।
लोकान्धकारगरलच्छिदुरप्रभावमाभाति रत्नमिव कालमहोरगस्य ।।
स्वैरं विहृत्य सरसीषु सरोरुहाणामाकम्पनेन परितश्छुरितो रजोभिः ।
भृङ्गावलीमुखरशृङ्खलसूच्यमानो मन्दं मरुच्चरति चित्तभुवः करीव ।। —नेमिनिर्वाण, ३/१२-१६, २२, २३

चन्द्र वर्णन:

नेमि निर्वाण में चन्द्रमा की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है -

"जहाँ पर पूर्व दिशा को त्याग कर नवीन अनुराग वाली कान्ता को प्राप्त निर्मल कान्ति वाला चन्द्रमा रात्रि में उँच्चे स्तनों वाली रत्नों की एवमात्र स्थान स्त्रियों का आलिंगन करता है।"

उन्नत शिखरों के समूह रूपी सिंहों से मेरा मृग रात्रि में डर को प्राप्त न हो जाये ऐसा सोचकर ही जहाँ पर चन्द्रमा स्फटिक मणियों के भवनों की किरणों से स्थगित हो जाता था।[1]

इसी प्रकार नवें सर्ग में चन्द्रोदय वर्णन बड़ा ही मनोहर हुआ है।

पर्वत-वर्णन:

वाग्भट ने पर्वतों के वर्णन में सुमेरु एवं रैवतक पर्वतों का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। स्वर्णमयी भूमि वाला रैवतक पर्वत उन्नत शिखरों से गिरते हुये झरनों के ऊपर उछलते हुए जल-बिन्दुओं से देवांगनाओं का शरीर शीतल करता था। एक ओर स्वर्णमयी और दूसरी ओर रजतमयी दीवाल से यह पर्वत अद्भुत शोभा पा रहा था। कवि ने रैवतक का वर्णन सप्तम सर्ग में ५५ पद्यों में किया है -

उस पर्वत पर वह गणिनी तपस्विनी विराजमान है, जो मुनि समूह से सेवनीय है, गुरुओं से सहित है और जिसका समस्त लक्षण चरित्राश्रित होकर प्रकाशमान है।

देवों द्वारा की गई परिचर्या से जिनकी महिमा अत्यन्त स्पष्ट है, ऐसे हे यदुवंश के अलंकार नेमिनाथ, इस पर्वत पर विद्युद्दाम से शोभायमान और अनेक शिखरों से सहित नवीन मेघों की माला, जलधारा की अविरल वर्षा के द्वारा उस दावानल को प्रणमित कर रही है, जिससे हाथी दूर से डरते हैं जो अत्यन्त सन्ताप रूप शरीर को प्राप्त है।

पुष्पों से सम्पन्न इस शिखर पर सिद्ध-वधुएं, देवांगनाएं लता-गृहों में अनेक पुष्पमालाओं को धारण कर तथा शरीर को अनेक धातु खण्डों से सुरम्य बनाकर पतियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रति क्रिया करती हैं।[2]

---

१. प्राचीं परित्यज्य नवानुरागामुपेयिवानिन्दुरुदारकान्तिः ।
उच्चैस्तनीं रत्ननिवासभूमिं कान्तां समाश्लिष्यति यत्र नक्तम्
उतुङ्ग श्रृङ्गोत्करके शरिभ्यो मागाद्भयं नक्तमयं मृगो मे ।
इतीव यत्र स्फटिकाश्मशालाकरैर्मृगाङ्कः स्थगयांबभूव ।। - नेमिनिर्वाण १/४१, ४३

२. मुनिगणसेव्या गुरुणा युक्तार्या जयति सामुत्र ।
चरणगतमखिलमेव स्फुरतितरां लक्षणं यस्याः ।।
यदूनामुत्तंस त्रिदशपरिचर्योक्तमहिमन्सदैवास्मिन्दावज्वलनमतिदूरत्रसदिभम् ।
लसद्विद्युद्दामा प्रशमयति संतापितनुगं पयोधारासारैर्नवजलदमाला शिखरिणी ।।
इह कुसुमसमृद्धे मालिनीभूय सानौ, विपुलसकलधातुच्छेदनेपथ्यरम्यम् ।
वपुरपि रचयित्वा कुंजगर्भेषु भूयो विदधति रतिमिष्टैः प्रार्थिताः सिद्धवध्वः ।।- नेमिनिर्वाण, ७/२, ६, १२

देव मन्दिर

महाकवि वाग्भट ने द्वारावती के देवमन्दिरों का वर्णन करते हुये कहा है कि स्फटिक मणिमय अथवा सुधालिप्त देवालय चन्द्रमा के प्रकाश में लीन हो जाते थे ।

जिस (द्वारावती) नगरी में रात्रि के समय निर्मल स्फटिक मणियों के बने हुये देवमन्दिर चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना द्वारा लुप्त कर लिये जाते थे । श्वेत मन्दिर शुभ्रज्योत्स्ना में छिप जाते थे, केवल उनके सुवर्ण-निर्मित पीले पीले कलश ही परिलक्षित होते थे उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाश में सुवर्ण कमल विकसित हुये हैं ।[१]

स्त्री-पुरुषों का वर्णन

स्त्रीः

कवि वाग्भट ने स्त्री-चित्रण करते हुये कहा है कि जहाँ पर युवतियाँ (स्त्रियाँ) कामदेव की अस्त्रशाला - आयुधयशाला के समान सुशोभित होती थी । यतः स्त्रियाँ अपने कानों में मणि निर्मित कर्णफूल पहने हुये थी । वें चक्रनामक आयुध के समान मालूम होते थे । उनके हार कामदेव के पाशबन्धन के समान और प्रणय कोप से बंक भौंहे धनुष के समान प्रतीत होती थी ।

स्त्रियों की मुखों की सुगन्धि के कारण भ्रमर उनके पास पहुँच जाते थे । वे भौंरे उन स्त्रियों की मुस्कान की श्वेत कान्ति से व्याप्त होने पर ऐसे प्रतीत होते थे मानों पुष्पों के पराग के समूह से चित्र-विचित्र हो गये हों ।

"जो उत्तम भौंह रूप युग-जुवारी सहित है (पक्ष में उत्तम भौंहे के युगल से सहित है) चंचल नेत्र रूप वाहों - घोड़ों से युक्त हैं । (पक्ष में चंचल नेत्रों को प्राप्त है) और जो कुण्डल रूपी सुन्दर चक्र आयुध विशेष से शोभित है (पक्ष में चमकते हुये कुण्डलों की चारु परिधि से सहित है) ऐसे स्त्रियों के मुखरूपी रथ पर आरुढ होकर कामदेव जिस द्वारावती नगरी में तीनों लोकों को जीतने वाला बन गया था ।[२]

पुरुष :

उस द्वारावती नगरी में रहने वाले पुरुष यमैकवृती थे - अहिंसा आदि यमव्रतों को धारण करने वाले (पक्ष में यमराज की मुख्य वृत्ति को धारण करने वाले थे । वें धनवान् अधिक सवारियों से युक्त थे (पक्ष में इन्द्र थे) प्रचेतस थे - उत्कृष्ट हृदय को धारण करने वाले थे । (पक्ष में वरुण थे) एवं धनेश्वर अत्यधिक धनिक थे (पक्ष में कुबेर थे) । इस प्रकार पुरुषों के

---

१. यत्रेन्दुपादैः सुरमन्दिरेषु लुप्तेषु शुद्धस्फटिकेषु नक्तम् । चक्रे स्फुटं हाटककुम्भकोटिर्नभस्तलाम्भोरुहकोशशङ्काम् ॥
- नेमिनिर्वाण, १/५५

२. चक्रायमाणैर्मणिकर्णपूरैः पाशप्रकाशैरतिहारहारैः । भ्रूभिश्च चापाकृतिभिर्विरेजुः कामास्त्रशाला इव यत्र बालाः ।।
सुगन्धिनः संनिहिता मुखस्य स्मितद्युता विच्छुरिता वधूनाम् । भृङ्गाः बभुर्यत्र भृशं प्रसूनसंक्रान्तरेणूत्करकर्बुरा वा ।।
सभ्रूयुगं चञ्चलनेत्रवाहं यस्यां स्फूरत्कुण्डलचारुचक्रम् । आरुह्य जातस्त्रिजगद्विजेता वधूमुखस्यन्दनमङ्गजन्मा ।।
- वही, १/३९, ४५, ५२

छल से चारों दिशाओं के दिग्पालों ने उस नगरी को अपना निवास स्थान बनाया था ।[१]

पुत्र-जन्मोत्सव

किसी महापुरुष का जन्म लोक कल्याण के लिये होता है । अतएव उसके जन्म से जितनी प्रसन्नता माता-पिता आदि पारिवारिक जनों को होती है उससे कहीं अधिक नगर निवासियों एवम अन्य जन समुदाय के लिये भी । महापुरुष की उत्पत्ति प्रकृति में भी परिवर्तन कर देता है । उसके जन्म के साथ ही शीतल मन्द पवन बहने लगती है । महाकवि वाग्भट ने नेमिनाथ के जन्म का बड़ा ही आह्लादक वर्णन प्रस्तुत किया है ।

जन्म से पूर्व राजा समुद्रविजय के यहाँ नवमास तक रत्नों की वर्षा हुई । श्रावण का महीना आ जाने पर शुक्ल पक्ष षष्ठी के दिन रानी शिवा देवी ने सम्पूर्ण लोकों को आनन्दित करने वाले पुत्र को जन्म दिया । देवताओं के देदीप्यमान महोत्सव वाले उसके जन्मदिन में राग-रहितता (परागशून्यता) को पाकर वायु भी (धीरे-धीरे) मन्दता को प्राप्त हो गई । जन्म के समय में पारितोषिक मांगने वाले प्राणियों का समूह तथा शंख की ध्वनि से संसार व्याप्त हो गया । अभिषेक करने के लिये तीनों लोकों के अधिपति उस बालक को देखने आये । राजा समुद्रविजय के यहाँ जन्म भवन में सात दीपक जलाये गये, ऐसा मालूम पडता था कि उसकी सेवा के लिए अद्भुत कान्ति वाले महर्षि ही आये हों ।[२]

जलक्रीडा:

नेमि निर्वाण के आठवें सर्ग में पूर्णरूप से जलक्रीड़ा का वर्णन किया गया है, जिसमें से मुख्य वर्णन इस प्रकार है -

''साक्षात् कामिनी प्रियतमाओं के साथ यदुवंशी राजा थककर जलक्रीड़ा करने के लिये जलाशय पर चले गये । खिले हुये कमलों रूपी मुखों वाले, पक्षियों के कूजन के वार्तालाप से युक्त जल ने राजा की मित्रता से उचित समय आनन्द प्राप्त किया । निर्मल जल में स्त्रियों के तरंगों के कारण चंचल प्रतिबिम्बों से मानों जल देवतायें ही क्रीड़ा करती हुई विचरण करने लगी । सुन्दर भौंहें वाली स्त्रियों ने भी भयानक प्राणियों वाले जल में भय और क्रोध के साथ प्रवेश किया । तरंगरुपी हाथों से रानियों का आलिंगन करके नदी के प्राणों की तरह पक्षी अचानक उड़ गये ।[३]

---

१. यमैकवृत्तेर्घनवाहनस्य प्रचेतसो यत्र धनेश्वरस्य । व्याजेन जाने जयिनो जनस्य वास्तव्यतां नित्यमगुर्दिगीशाः ।।
- नेमिनिर्वाण, १/५७

२. वज्रवह्निविरहेण हारिणी तत्र संततमदुर्दिनोदया । रत्नवृष्टिरजनिष्ट मन्दिरे पार्थिवस्य नवमासवर्तिनी ।।
शुक्लपक्षभवषष्ठवासरे साथ मासि नभसि प्रसर्पति । नन्दनं सकललोकनन्दनं सत्क्रियेव सुषुवे समीहितम् ।।
तस्य जन्म-दिवसे दिवौकसां दूरदीपितमहामहे मुहुः । प्राप्य काममपरागतामयं वायुरेव किल मन्दतां गतः ।।
भावनीयभवनेषु संभवन्व्याप विश्वमपि शंखनिस्वनः । जन्तुजातमिव याचितुं तदा पारितोषिकममुष्य जन्मनि ।।
विश्वनाथमभिषेक्तुमेष्यतां त्रीक्षणार्थमिव नाकिनां श्रियः । तुल्यकालमृतवः समारुहन्भूरुहेषु वनपुष्पभारिषु ।।
तस्य जन्मभवने प्रबोधिताः सप्त मंगलमयस्य दीपकाः । आगता इव दिवो महर्षयः सेवनार्थमभुरद्भुतप्रभाः ।।
- नेमिनिर्वाण, ४/१२; १३, १५, १७, २०, २३

३. साक्षादिव स्मराक्षाभिः प्रेयसीभिः समं नृपाः । तेऽथ कर्तुंजलक्रीडां जग्मुः श्रान्ता जलाशयम् ।।
सहासपुण्डरीकास्यं सालापं पक्षिकूजितैः । नृपमैत्र्या धृतानन्दं स्थाने जलमजायत ।।
निर्मले नितरां नीरे नारीणां प्रतिबिम्बतैः । कल्लोललोलैः खेलन्त्यों जलदेव्योऽनुचक्रिरे ।।
पुरः सरैः पुरोपास्तक्रूरसत्त्वेषु वारिषु । सुभ्रुवः सभयोत्कापं शतरैन्तः पदं व्यधुः ।।
राजदारांस्तरंङ्गग्रहस्तैरालिङ्गय विभ्रतः । नदस्य सहसोड्डीनाः प्राणा इव विहंगमाः ।। - नेमिनिर्वाण, ८/४२-४६

इस प्रकार अपनी-अपनी उदारपत्नियों के साथ यादवों की रमणीय जलक्रीड़ा को देखकर ही मानो सूर्य भी खिन्न होकर (विशाल) आकाश को पार कर अपनी किरणों में दिन की शोभा को समेट कर समुद्र के किनारे चला गया।[१]

मदिरा पान

नेमि निर्वाण के दशवें सर्ग में मदिरा पान का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है।

लड़खड़ाती हुई वाणी वाले, गिरते हुये वस्त्रों वाले, भूमि पर गिरने के कारण धूसरित परवश तरुण मधुपान की लोलुपता के कारण बाल्यावस्था का अनुभव करने लगे।

अत्यधिक पीये गये मदिरा-जल से चंचल नेत्रों वाली स्त्रियों के नेत्राञ्चल सन्तुष्ट हुये कामदेव के लाल-लाल कान्ति वाले नवीन पल्लवों की तरह शोभावान होने लगे।

चकोर के समान नेत्रों वाली बालायें सूर्यकान्त मणियों के प्यालों के मध्य में प्रतिबिम्बित प्रियतमों के साथ मदिरा को अत्यन्त आनन्द के साथ पीने लगी। मदिरा जल को पीता हुआ भी वह कामुक व्यक्ति वितृष्णा को प्राप्त नहीं हुआ किन्तु मदिरा की शक्ति से कांपते हुए हाथ से प्याला स्वयं ही गिर गया।

कानों के आभूषण रूप कमलों के कारण समागत भौंरों के द्वारा सरस गीत गाने पर सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों की अत्यन्त घूमते हुये नेत्रों वाली भौहें मद के कारण नाचने लगी। "प्रियतम परकीय वनिता के साथ मधु पी रहा है।" ऐसा कहे जाने पर लाल-लाल नेत्रों वाली प्रियतमा तुरन्त गद्-गद् वाणी से कुपित हो कर मद की शोभा को प्राप्त हुई। एक दूसरे के मुख की मदिरा को ग्रहण करने के लिये तत्क्षण चुम्बन के भावों से युक्त फैलायी हुई भुजाओं से मिले हुये प्रिय-युगलों ने रति के लिए मन बनाया।[२]

---

१. अथ सलिलविलासं यादवानामुदारैः, सह निजनिजदारैस्तत्रवीक्ष्येव रम्यम्।
दिनपतिरपि खिन्नःखं व्यतीत्यातिमात्रं, करकलितदिन श्रीः सागरान्तं जगाम।।
नेमिनिर्वाण, ८/८०

२. असमग्रवाग्भिरवधूतगलद्वसनैर्धरापतन धूसरितैः। मधुपानलौल्यवशतो विवशैरनुभूयते स्म तरुणैः शिशुता।।
अतिमात्रपीतपदिरासलिलैरुपतर्पितस्य मदनस्य मुहुः। नवपल्लवा इव सताम्ररुचो नयनांचलाश्चलदृशां विबभुः।।
प्रतिबिम्बितैस्तपन कान्तदृषच्चषकोदरेष्वथ चकोरदृशः। मधु वल्लभैः सह रसात्सहसा वदनैर्द्वितामिव गतैरपिबन्।।
न वितृष्णतामुपययौ मदिरासलिलं पिबन्नपि स कामिजनः।
मदशक्तिकम्पितकरादमुतः स्वयमेव किंतु चषकं व्यगलत्।।
श्रवणावतंसकमलातिथिभिर्मधुपैः कृते सरसगीतरवे। घनघूर्णमाननयनान्तभुवा सुदृशां भ्रुवा मदवशान्ननृते।।
मधुपीयतेऽन्यवनिताभिधया हृदयेश्वरेण गदिता दयिता। अरुणेक्षणा सपदि गद्गदवाक्कुपिता मदश्रियमवापतमाम्।।
इतरेतरं मुखसुराग्रहणक्षणचुम्बनोपचितभावभरैः। सपदि प्रसारितभुजामिलितैर्मिथुनैरतन्यत रताय मनः।।
- वही, १०/३, ८, १२-१६

रति क्रीडा

नेमिनिर्वाण में मदिरापान से मस्त हुये यादवों की रति क्रीडा का वर्णन हुआ है जो इस प्रकार है :-

रतिक्रीडा के समय प्रियतम दृढ़ आलिङ्गन से कांपती हुये भुजाओं वाली कोई वधू प्रथम आलिङ्गन को करने में समर्थ नहीं हुई। गाढ आलिङ्गन के कारण रतिक्रीडा के परिश्रम से उत्पन्न पसीना, गिरते हुये मणिहार चूर्ण की तरह प्रियतम युगल के शरीर पर शोभायमान होने लगा। अधरोष्ठ दंश से विकसित मुख में प्रवेश करते हुये प्रियाओं के दाँतों की कान्ति वाले युवक रतिक्रीडा के समय साक्षात् निर्मल रस को पीते हुये की तरह शोभायमान होने लगे।[1]

इस प्रकार नेमिनिर्वाण काव्य में महाकाव्य के सभी वर्ण्य विषयों का मनोरम वर्णन किया गया है।

---

१. उपगूहतः प्रियतमस्य दृंढ प्रथमानवेपथु विहस्तभुजा ।
परिरम्भमग्रमणितं न वधूरशकद्विधातुमपरा सुरते ।।
सुरतश्रमप्रभववारिलवप्रकरो रराज मिथुनस्य तना ।
निबिडोपगूहनवशेन दलन्मणिहार चूर्ण इव कीर्णकणः ।।
अधरौष्ठदंशविकसद्वदनप्रविशत्प्रिया दशनराजिरुचः ।
तरुणा विरेजुरमलं सुरते रसमापिबन्त इव मूर्तिधरम् ।
- नेमिनिर्वाण १०/१८-२०

नेमिनिर्वाण : दर्शन एवं संस्कृति

दर्शन

"दर्शन" का अर्थ है "देखना"। "दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्" अर्थात् जिसके द्वारा देखा अर्थात् विचार किया जाए वह दर्शन है। दर्शन शब्द व्याकरण में दृश् धातु से करण अर्थ में "ल्युट्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। संक्षेप में तत्त्वों के युक्तिपूर्वक सूक्ष्म ज्ञान के प्रयास को दर्शन कहा जाता है। विभिन्न भारतीय दर्शनों में प्रयुक्त सम्यक्दर्शन इसी अर्थ का परिचायक है।[१]

भारतीय दर्शन की दो प्रमुख शाखायें - वैदिक और अवैदिक हैं। प्राचीन वर्गीकरण के अनुसार ये ही आस्तिक और नास्तिक कही जाती हैं। अवैदिक दर्शनों को नास्तिक इसलिए कहा जाता है कि वे वेदों को प्रामाणिक नहीं मानते (नास्तिको वेदनिन्दकः)। परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो हम देखते हैं कि सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक दर्शनों की उत्पत्ति भी पूर्णतया लौकिक विचारों से हुई है। वेद अविरोधी होने पर भी इनकी उत्पत्ति वैदिक विचारधारा से नहीं मानी जा सकती।[२] अतः अवैदिक दर्शनों में जैन एवं बौद्ध दर्शन को नास्तिक कहना समीचीन नहीं है। क्योंकि ये दर्शन स्वर्ग, नरक, मुक्ति आदि पारलौकिक तत्त्वों में विश्वास रखते हैं। यदि पारिभाषिक रूप में वेद-विरोधी होने से कुछ दर्शनों को नास्तिक कहा जाता है तो चार्वाक, बौद्ध एवं जैन दर्शनों को नास्तिक कोटि में रखा जाना आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि निश्चित रूप से ये तीनों दर्शन वैदिक विचारधाराओं से सहमत नहीं हैं।

प्राचीन परम्परा से भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

(१)

भारतीय दर्शन

आस्तिक	नास्तिक
१. सांख्य	१. चार्वाक
२. योग	२. बौद्ध
३. न्याय	३. जैन
४. वैशेषिक	
५. मीमांसा	
६. वेदान्त (उत्तरमीमांसा)	

---

१. सम्यक्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्ननिबध्यते।
दशनिन विहीनस्तु संसार प्रतिपद्यते।। - द्रष्टव्य - मनुस्मृति ६/७४

२. द्र० - भारतीय दर्शन (एन इंट्रोडक्शन टू इन्डियन फिलास्फी का हिन्दी अनुवाद) चट्टोपाध्याय एवं दत्त पृ० ३-४

परलोक में आस्था रखने वाले एवं आस्था न रखने वालों के आधार पर भारतीय दर्शनों का एक नवीन वर्गीकरण भी संभव है। जो इस प्रकार है :-

(२)

भारतीय दर्शन

परलोक विरोधी
१. चार्वाक

परलोकवादी
१. बौद्ध
२. जैन
३. सांख्य
४. योग
५. न्याय
६. वैशेषिक
७. मीमांसा
८. वेदान्त

एक तीसरा वर्गीकरण वैदिक विचारधारा एवं अवैदिक विचारधारा के आधार पर भी प्रस्तुत किया जाता है। वैदिक विचारधारा में भी दो प्रकार के दर्शन हैं :-

१. प्रथम विशुद्ध रूप से वैदिक विचारधारा, कर्मकाण्ड अथवा ज्ञानकाण्ड पर आधारित

२. द्वितीय लौकिक विचारों से प्रभावित

(३)

भारतीय दर्शन

वेद-विरोधी
१. चार्वाक
२. बौद्ध
३. जैन

वैदिक

विशुद्ध वैदिक विचारधारा पर आश्रित
१. मीमांसा (कर्मकाण्डी)
२. वेदान्त (ज्ञानकाण्डी)

लौकिक विचारधारा से प्रभावित
१. सांख्य
२. योग
३. न्याय
४. वैशेषिक

भारतीय दर्शनों के इन तीन वर्गीकरणों में अन्तिम दो वर्गीकरण युक्ति पर आधारित हैं और प्रथम वर्गीकरण अतिशयित वैदिक आस्था पर आधारित है। अर्वाचीन विद्वानों ने युक्ति पर आधारित अन्तिम दो वर्गीकरणों को अधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि युक्ति, दर्शन का आवश्यक तत्त्व है।

महाकवि वाग्भट विरचित "नेमिनिर्वाण" एक दार्शनिक ग्रन्थ न होकर एक महाकाव्य है। अतः इस काव्य में क्रमबद्ध रूप से दार्शनिकता दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु महाकवि वाग्भट जैन धर्मानुयायी थे। अतः उनके इस काव्य में जैन दर्शन का बहुशः उल्लेख हुआ है। नेमिनिर्वाण काव्य के पन्द्रहवें सर्ग में इसे विशिष्ट रूप में देखा जा सकता है।

जैन दर्शन में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष, इन सात तत्वों के यथार्थ ध्यान, ज्ञान एवं तद्नुकूल आचरण को मुक्ति-मार्ग माना है।[१] कुछ जैनाचार्यों ने इन सात तत्त्वों में पुण्य एवं पाप इन दो को जोड़कर नौ पदार्थ माने हैं। अतः नेमिनिर्वाण में मुक्ति के मार्ग के रूप में सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवम् सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय तथा उनके आश्रयभूत सात तत्त्वों का ही विवेचन हुआ है।

रत्नत्रय :

जैन दर्शन में सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की "रत्नत्रय" संज्ञा है। "समयसार" एवं "नयचक्र" में रत्नत्रय को आत्मा रूप कहा है।[२] जैन सिद्धान्त के अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।[३] ये तीनों "तैलवर्तिकादीपकन्याय" से मोक्ष के कारण माने गये हैं। इसीलिए तत्त्वार्थसूत्रकार आचार्य उमास्वामी ने सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों को मिलकर मोक्षमार्ग की संज्ञा दी है।[४]

सम्यग्दर्शन :

तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष ये सात तत्त्व माने गये हैं।[५] समयसार आदि में इन सात के अतिरिक्त "पुण्य" "पाप" को भी ग्रहण करने से नौ संख्या स्वीकार की गई है।[६] भाव यह है कि इन तत्त्वों के स्वरूप को भली भाँति जानकर उन पर वैसी ही श्रद्धा करना, सम्यक्दर्शन कहलाता है।

---

१. नेमिनिर्वाण, १५/६, १५/४६

२. नयचक्र ३२३ एवं समयसार गाथा १/१६

३. स्यात सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रियात्मकः।
मार्गोमोक्षस्य भव्यानां युक्त्यागमसुनिश्चितः।। - तत्त्वार्थसार १/३ एवं द्र०-समयसार १/७ एवं नयचक्र ३२१

४. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। - तत्त्वार्थसूत्र १/१

५. तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्! जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्। वही १/२, ४

६. भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा व पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मतं।। समयसार १/१३

सम्यग्ज्ञान :

नयचक्र[1] एवं द्रव्यसंग्रह[2] के अनुसार - आत्मा एवं अन्य वस्तुओं के स्वरूप को ज्ञान की न्यूनाधिकता से हीन तथा सन्देह एवं विपरीतता से रहित ज्यों का त्यों जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

"विरुद्धानेककोटिस्पर्शिज्ञानं संशयः" अर्थात् "ऐसा है कि ऐसा है" इस प्रकार परस्पर विरुद्धतापूर्वक दो प्रकार रूप ज्ञान को संशय कहते हैं । जैसे आत्मा अपना कर्ता है या पर का । यह सीप है या चांदी, रस्सी है या सर्प, ठूंठ है या पुरुष आदि ।

"विपरीतकोटिनिश्चयो विपर्ययः" अर्थात् वस्तु-स्वरूप से विरुद्धतापूर्वक ऐसा ही है" इस प्रकार का एकरूप ज्ञान विपर्यय है जैसे शरीर को आत्मा जानना ।

जैनाचार्यों ने इसके पाँच भेद बताये हैं - (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यय और (५) केवलज्ञान ।[3] प्रथम दो ज्ञानों को परोक्ष तथा बाद के तीन ज्ञानों को प्रत्यक्ष ज्ञान कहा गया है । पश्चात्वर्ती दार्शनिकों ने इसे परोक्ष के सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष की कोटि में रखकर अन्य भारतीय दार्शनिकों के समान इन्द्रिय प्रत्यक्ष भी स्वीकार कर लिया है।

मतिज्ञान :

पाँचों इन्द्रियों और मन के द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं । मतिज्ञान जब स्वानुभूति रूप (अनुभव सहित) होता है, तब इसके प्रभाव से होने वाला ज्ञान का विकास केवल ज्ञान हो जाता है ।

श्रुतज्ञान :

मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थ का जो विशेष रूप से ज्ञान होता है । वह श्रुत ज्ञान है इसके दो भेद हैं - अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक । कर्ण के अतिरिक्त शेष ४ इन्द्रियों के द्वारा होने वाले मति ज्ञान के पश्चात् जो विशेष ज्ञान होता है वह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । जैसे स्वयं घट को जानकर यह जानना कि यह घट अमुक-अमुक काम में आ सकता है और कर्ण इन्द्रिय के द्वारा होने वाले मतिज्ञान के पश्चात् जो विशेष ज्ञान होता है वह अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान है । जैसे "घट" इस शब्द को सुनकर कर्ण इन्द्रिय के द्वारा जो मतिज्ञान हुआ उसने केवल शब्द मात्र को ही ग्रहण किया, उसके बाद उस "घट" शब्द के वाच्य घड़े को देखकर यह जानना कि यह घट है और यह पानी भरने के काम का है यह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । यह शब्द-रूप होने से हित अहित का निर्णय करने वाला विकल्प रूप ज्ञान है । यह श्रुतज्ञान ही केवलज्ञान का उपाय है ।

---

१. वत्थूण जं सहावं जहट्ठियं णयपमाण तह सिद्धं ।
तं तह व जाणणे इह सम्मं णाणं जिणाविंति ।। - नयचक्र-३२६

२. संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्परसरूपस्य । गहणं सम्मं णाणं सायारमणेय भेयं तु ।। - द्रव्य संग्रह ४२

३. मतिश्रुतावधिमन : पर्ययकेवलानि ज्ञानम् । तत्त्वार्थसूत्र १/९

मतिज्ञान द्वारा चींटी खाद्यान्न को ग्रहण करके श्रुतज्ञान द्वारा इष्ट जानती है। इसी प्रकार अग्नि जो श्रुतज्ञान के द्वारा अनिष्ट जान कर हट जाती है।

अवधिज्ञान :

द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ का इन्द्रियादिक की सहायता बिना जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वह अवधि ज्ञान है।

मनःपर्ययज्ञान :

मनुष्य लोक में वर्तमान जीवों के मन में स्थित जो रूपी पदार्थ है, जिनका उन जीवों ने सरल रूप में या जटिल रूप से विचार किया है या विचार कर रहे हैं या भविष्य में विचार करेंगे, उनकी मन की अवस्थाओं को स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को मनः पर्ययज्ञान कहते हैं।

इस प्रकार अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान केवल रूपी पदार्थ को जानने वाले होने से आत्मज्ञान और केवलज्ञान में सहायक नहीं हैं। यह तो चमत्कारिक ज्ञान है।

केवलज्ञान :

त्रिकालवर्ता समस्त द्रव्यों की सब पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

सम्यग्चारित्र :

जो दोष रहित सम्यग्दर्शन से विशुद्ध सभी गुणों से युक्त है, सुख-दुःख में भी समान रहता है, आत्मा के ध्यान में लीन रहता है, राग-द्वेष और योग को हटाकर जो स्वरूप को जानता है वही सम्यक् चारित्र होता है।[१] वस्तुतः संसार को बढ़ाने वाले रागद्वेषादि अन्तरंग क्रियाओं और हिंसा आदि बहिरंग क्रियाओं से विरक्त होकर आत्मा का अपने स्वरूप में स्थिर हो जाना सम्यक्चारित्र कहलाता है।

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीनों मिलकर मोक्ष (मुक्ति) के उपाय होते हैं। किसी एक या किन्हीं दो के होने पर भी मुक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सप्त तत्त्वों का विवेचन :

"नेमिनिर्वाण" काव्य के पंचदश सर्ग में सात तत्त्वों का विवेचन हुआ है जिनका पृथक्-पृथक् रूप से संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है - नेमिनिर्वाण में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष[२] इन सप्त तत्त्वों का वर्णन करते हुये कहा है कि उन तत्त्वों से तीनों लोक व्याप्त हैं। और इनके ज्ञान होने से ही अन्ततः मुक्ति प्राप्त होती है। यह भगवान जिनेन्द्र ने कहा है।

---

१. उपेक्षणं तु चारित्रं तत्त्वार्थानां सुनिश्चितम्। तत्वार्थसार १/४

२. जीवाजीवाश्रवा बन्धसंवरौ निर्जरान्वितौ।
मोक्षश्च तानि तत्त्वानि व्याप्नुवन्ति जगत्त्रयम्।। - नेमिनिर्वाण, १५/५१

(१) जीव

जीव चेतन होता है ।[१] इन जीवों में सभी का ज्ञान भिन्न-भिन्न होता है । जैन दर्शन के अनुसार जीव या आत्मा को स्वदेह परिमाण माना गया है । इन्द्रिय संवेदन के आधार पर जीव के पांच भेद माने गये हैं - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। जीवों की एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है ।[२] लट, शंख, जोंक, वगैरह के स्पर्शन-रसना ये दो इन्द्रियाँ, भौंरा, मक्खी, डांस, मच्छर, इत्यादि के स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु ये ४ इन्द्रियाँ और मनुष्य, पशु, पक्षी, महामत्स्य आदि के पाँच इन्द्रियाँ होती हैं ।[३] महाकवि वाग्भट ने नेमिनिर्वाण में इन्द्रिय संवेदन के आधार पर जीव के भेदों का विस्तृत विवेचन किया है ।[४] एक इन्द्रिय वाले को स्थावर और दो इन्द्रिय से पंच इन्द्रिय वाले को त्रस कहा जाता है ।

गति की अपेक्षा अथवा चित्त के परिणामों की अपेक्षा से नेमिनिर्वाण में जीव के चार भेद किये गये हैं । नारकीय, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता । वहाँ कहा गया है कि जो अत्यधिक परिग्रह में रत हिंसक एवं रौद्र आत्मवृत्ति वाले होते हैं वे सात नरकों में उत्पन्न होते हैं ।[५] नरकों की संख्या सात मानी गयी है । "रत्न शर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयोधघनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः"[६]

नरक के दुखों का वर्णन करते हुये नेमिनिर्वाण में कहा गया है - नारकीय जीवन में बँधते हैं काढे जाते हैं और उसे छेदन तथा भेदन (बींधने) को सहन करते हैं, काटे जाते हैं और बार-बार निर्दयता पूर्वक मारे जाते हैं । तपी हुई लोहे की शिलाओं पर बैठना पड़ता है। लोहे की कीलियों पर सोना पड़ता है तथा खौलते हुए तेल से सींचे जाते हुए वे अपने कर्मों का भोग करते हैं । अस्त्रों के द्वारा ताड़ित होने पर उनके मुखों से हृदय मे जलती हुई मुखरूपी ज्वालाओं की तरह खून की धारायें निकलती रहती हैं । कांटों के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण नाखूनों से चीरे जाने पर व्याकुल होकर लाल नेत्रों वाले होकर वे दीर्घ काल तक नरकों के दुःख को भोगते हैं ।[७]

माया कषाय के उदय से छल प्रपंच करने के कारण जिस पशु-पक्षी आदि गति को जीव प्राप्त करता है, उसे तिर्यञ्च गति कहते हैं ।[८] नेमिनिर्वाण में तिर्यञ्च गति का वर्णन करते हुये कहा गया है कि "यह मुझे प्राप्त हो या न हो" इस प्रकार के आर्तध्यान वाले जीव मरकर विभिन्न तिर्यंच योनियों में उत्पन्न होते हैं वे अपने कर्म बन्धन की तरह रस्सियों से बांधे जाते हैं । कुछ लोग उन पर आरोहण करके लाठियों से उन्हें अत्यधिक ताड़ित करते हैं । जंगलों

१. चेतनालक्षणो जीवः शरीरपरिमाणभाक् !
एकेन्द्रियादिभेदेन पंच यावत्स जायते । । - नेमिनिर्वाण, १५/५२

२. वनस्पत्यन्तानामेकम् । - तत्त्वार्थसूत्र २/२२

३. कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि । वही, २/२३

४. नेमिनिर्वाण, १५/५३-५४

५. नेमिनिर्वाण, १५/५५-५६

६. तत्त्वार्थ सूत्र ३/१

७. नेमिनिर्वाण - १५/५५-६०

८. मायातैर्यग्योनस्य । तत्त्वार्थ सूत्र ६/१६

मे घास को खाते हुये ठण्ड वर्षा और गर्मी का दुःख सहते हुये हिंसक प्राणियों और बहेलियों के दुःख से व्याकुल होकर वे कभी भी सुख को प्राप्त नहीं करते हैं । कुछ अपवित्र पदार्थों का भोजन करते हैं और कुछ स्पर्श के अयोग्य होते हैं । कुछ मुख में विष वाले होते हैं और कुछ घाव आदि में कृमि के रूप में बारम्बार उत्पन्न होते रहते हैं ।[१]

आर्त और रौद्र परिणाम के साथ धर्मध्यान से भावित प्राणी मरकर कर्मभूमि में मनुष्य बनते हैं । उनमें कुछ तो सुन्दर खेत में धान्य की तरह उत्तम कुल में उत्पन्न होते हैं और कुछ अभव्य अपने दुष्कर्मों के भाव से घुन की तरह मलेच्छ आदि अनार्यों के मलिन कुल में उत्पन्न होते हैं ।[२]

जो मन, वचन, काय से दूसरे को पीड़ित करने की इच्छा नहीं करते हैं, वे तपस्या और दानादि के प्रभाव से देव लोक में उत्पन्न होते हैं । वहाँ पर दिव्य देवांगनाओं के सुखों को भोगते हुए समययापन करते हैं ।[३]

(२) अजीव :

यद्यपि मोक्ष प्राप्ति के लिये आत्मा ही उपादेय तत्त्व है । अजीव तत्त्व तो हेय है, किन्तु हेय तत्त्व को जाने बिना उपादेय तत्त्व का आश्रय लेना सम्भव नहीं है । इसलिये नेमिनिर्वाण के पन्द्रहवें सर्ग में प्रसंगतः अजीव का विवेचन हुआ है । जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव होता है ।[४] अजीव तत्त्व जीव तत्त्व का विपरीत होता है । जिसमें चेतना नहीं होती वही अजीव है । जीव के लक्षण से ही अजीव का लक्षण स्पष्ट हो जाता है । नेमिनिर्वाण में अजीव तत्त्व को पाँच भागों में विभक्त किया है - (१) धर्म द्रव्य, (२) अधर्म द्रव्य, (३) अणु, (४) कालद्रव्य, और (५) आकाश द्रव्य ।[५]

अणु या मुद्‌गल

नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त अणु शब्द पुद्‌गल का उपलक्षण है क्योंकि अन्य सभी जगह पुद्‌गल शब्द का ही प्रयोग हुआ है । इनमें से पुद्‌गल मूर्तिक्रिया रूपी है और शेष चारों अमूर्तिक्रिया अरूपी हैं । अणु या पुद्‌गल द्रव्य ही समग्र आरम्भ का कारण है । जिसका टुकड़ा नहीं हो सकता है ऐसे रूपी द्रव्य को अणु और अणुओं के परस्पर मिश्रण को स्कन्ध कहते हैं ।

---

१. नेमिनिर्वाण १५/६१-६४

२. वही, १५/६५-६७

३. वही, १५/६८-६९

४. तद्विपर्ययलक्षणो जीवः ।। सर्वार्थसिद्धि १/४

५. धर्माधर्माणवः कालाकाशौ चाजीवसंज्ञिताः ।
धर्मो गतिनिमित्तं स्यादधर्मः स्थितिकारणम् । नेमिनिर्वाण १५/७०
अजीवो पुणमेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयास ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणों अमुक्ति सेसा दु ।। - द्रव्यसंग्रह - १५

धर्म द्रव्य :

धर्मद्रव्य का प्रयोग प्रचलित अर्थ में न होकर जैन दर्शन में पारिभाषिक अर्थ में होता है। यह गति में सहायक द्रव्य माना जाता है। यह सारे संसार में व्याप्त रहता है अखण्ड तथा फैला हुआ है। नेमिनिर्वाण के अनुसार यह गति का निमित्त है। तत्त्वार्थ सूत्र[१] आदि ग्रन्थों में यह विवेचन पुष्ट है।

अधर्म द्रव्य :

जड़ और जीवों की स्थिति में अधर्म का उपयोग होता है। गति करने में जिस प्रकार धर्म सहायक होता है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल की स्थिति में अधर्म द्रव्य सहायक होता है।[२]

आकाश :

आकाश द्रव्य नित्य है, अवस्थित है और अरूपी है।[३] संसार में जीवों को और पुद्गलों को पूर्ण रूप से अवकाश देता है वही आकाश द्रव्य कहलाता है।[४] नेमिनिर्वाण में आकाश (द्रव्य) को संसार में सर्वत्र व्याप्त और अनश्वर कहा गया है।[५]

काल :

नेमिनिर्वाण में काल द्रव्य को भी आकाश द्रव्य के समान व्याप्त और अनश्वर कहा गया है। कालद्रव्य भी आकाश आदि की तरह अमूर्तिक है। क्योंकि उसमें रूप, रस आदि गुण नहीं पाये जाते हैं। काल बहुप्रदेशीय नहीं है। क्योंकि लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में एक-एक कालाणु पृथक्-पृथक् स्थित है। वे आपस में मिलते नहीं हैं। इसलिए जैन दर्शन में काल को द्रव्य मानते हुये भी अन्य द्रव्यों की तरह "अस्तिकाय" नहीं माना गया है। काल द्रव्य असंख्यात हैं किन्तु निष्क्रिय हैं, अतः एक स्थान से अन्य स्थान पर नहीं जाते हैं। वे स्थित रहते हैं। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं यही निश्चय काल द्रव्य है। घड़ी, घण्टा आदि तो व्यवहारकाल हैं, जो निश्चय काल द्रव्य के पर्याय हैं।

(३) आस्रव :

नेमिनिर्वाण में कहा गया है कि मन, वचन, काय का योग कर्मों का आस्रव कहलाता है। यह आस्रव ही सम्पूर्ण संसार रूपी नाटक के आरम्भ के लिये सूत्रधार की तरह है।[६]

---

१. गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकारः।। तत्त्वार्थसूत्र ५/१७
२. धर्मोगतिनिमित्तं स्यादधर्मः स्थितिकारणम्। नेमिनिर्वाण १५/७०
३. नित्यावस्थितान्यरूपाणि। तत्त्वार्थ सूत्र ५/४
४. आकाशान्ते त्रद्रव्याणि स्वयाकाशतेऽथवा।
द्रव्याणामाकाशं वा करोत्याकाशमस्त्यतः। तत्त्वार्थसार ३/३७
५. जगतो व्यापकावेतौ कालाकाशवनश्वरौ। नेमिनिर्वाण १५/७१
६. कायवाङ्मनसा योगः कर्मणास्रव संज्ञितः।
स हि निःशेष संसारनाटकारम्भसूत्रभृत्।। नेमिनिर्वाण १५/७५

पुण्य और पाप रूप कर्मों के आगमन के द्वार को आस्रव कहते हैं। जैसे नदियों द्वारा समुद्र प्रतिदिन जल से भरा जाता है वैसे ही मिथ्यादर्शनादि स्रोतों से आत्मा में कर्म आते रहते हैं। अतः मिथ्या दर्शनादि आस्रव हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है कि काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं और वही आश्रव है।[1] वास्तव में आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन होती है उसका नाम योग है वह योग (परिस्पंदन) या तो शरीर के निमित्त से होता है या वचन निमित्त से होता है अथवा मन के निमित्त से होता है। अतः निमित्त के भेद से योग के तीन भेद हो जाते हैं - काय योग, वचन योग और मनोयोग।

वह योग ही आस्रव है। आस्रव को द्वार की उपमा दी गई है। जिस प्रकार नाले आदि के मुख द्वारा सरोवर में पानी आता है उसी प्रकार योग द्वारा ही कर्म और नौ-कर्म वर्गणाओं का ग्रहण हो कर उनका आत्मा से संबंध होता है। इसलिए योग को आस्रव कहा है।

(४) बन्ध :

नेमिनिर्वाण में कहा गया है कि कर्मों और आत्मा का सम्बन्ध बन्ध कहलाता है। शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है।[2]

नयचक्र में कहा गया है कि आत्मा और कर्म प्रदेशों का आपस में सम्बन्ध होना बन्ध कहलाता है।[3] राजवार्तिक में कहा गया है कि जो बँधे या जिसके द्वारा बाँधा जाये या बन्धन मात्र को ही बन्ध कहते हैं।[4]

मिथ्यादर्शनादि द्वारों से आये हुए कर्म पुद्‌गलों का आत्म प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह हो जाना बँध है। जैसे बेड़ी आदि से बँधा प्राणी परतन्त्र हो जाता है और इच्छानुसार देशादि में नहीं जा सकता उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा परतन्त्र होकर अपना इष्ट विकास नहीं कर सकता है। अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों से दुःखी होता है।

(५) संवर :

नेमिनिर्वाण में कहा गया है कि उत्पन्न हुये अनाबद्ध कर्मों का रुक जाना संवर कहलाता है।[5] तत्त्वार्थ सूत्र[6] तत्त्वार्थसार में संवर का यही कथन किया है आत्मा में जिन कारणों से कर्मों का आश्रव होता है, उन कारणों को दूर करने से कर्मों का आगमन रुक जाता है उसे संवर कहते हैं। इसके दो भेद हैं - भाव संवर और द्रव्य संवर।[7] शुभाशुभ भावों को रोकने में समर्थ

---

१. काय-वाङ् मनः कर्म योगः। स आस्रवः। - तत्त्वार्थसूत्र ६/१-२

२. दृढं परिचयस्थैर्यं कर्मणामात्मनश्च यत्।
शुभानामशुभानां वा बन्धः स इह बुध्यताम्॥ - नेमिनिर्वाण १५/७३

३. कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं कसायादो। - नयचक्र १५३

४. बध्नाति, बध्यतेऽसौ, बध्यतेऽनेन बन्धनमात्रं वा बन्धः। - राजवार्तिक ५/२४

५. उत्पन्नानामनाबद्धकर्मणामेव संवृतः। क्रियते या स्मरादीनां संवरः सः उदाहृतः॥ - नेमिनिर्वाण १५/७२

६. तत्त्वार्थ सूत्र ९/१

७. तत्त्वार्थसार ६/२

जो शुद्धोपयोग है वह भाव संवर है और भाव कर्म के आधार से नवीन पुद्‌गल कर्मों का विरोध होना द्रव्य संवर है। यह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से होता है।[१] संसार भ्रमण के कारण स्वरूप मन, वचन और काय इन तीन योगों के निग्रह करने को गुप्ति कहते हैं। प्राणियों को कष्ट न पहुँचे। इस भावना से यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करना समिति है। जो आत्मा को संसार के दुःखों से छुटाकर उसके इष्ट स्थान में धरता है वह धर्म है। संसार शरीर आदि का स्वरूप बार-बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा है। भूख-प्यास आदि का कष्ट होने पर कर्मों की निर्जरा के लिये शान्त भावों से सहन करने को परिषहजय कहते हैं। रागद्वेष को सहन करने के लिये ज्ञानी पुरुष की चर्या को चारित्र कहते हैं।

(६) निर्जरा :

कर्मों के फलों का भोगपूर्वक नाश हो जाना निर्जरा कहलाती है निर्जरा के होने पर यह आत्मा दर्पण की तरह निर्मल हो जाता है।[२]

तप-विशेष से संचित कर्मों का क्रमशः अंशरूप से झड़ जाना निर्जरा है। जिस प्रकार मन्त्र या औषधि आदि से निःशक्ति किया हुआ विष दोष उत्पन्न नहीं करता, उसी प्रकार तप आदि से नीरस किये गये कर्म संसार चक्र को नहीं चला सकते।

(७) मोक्ष :

नेमिनिर्वाण में कहा गया है कि अनेक जन्मों से बन्धे हुये सभी कर्मों के छूट जाने से आत्मा की एक स्थिति होने को, मोक्ष कहा जाता है। तत्त्वार्थ-सूत्र आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का स्वरूप दिया गया है।[३]

सम्यग्दर्शनादि कारणों से सम्पूर्ण कर्मों का आत्यन्तिक मूलोच्छेद होना मोक्ष है। जिस प्रकार बन्धन युक्त प्राणी स्वतंत्र होकर यथेच्छ गमन करता है उसी तरह कर्म बन्धनमुक्त आत्मा स्वाधीन हो अपने अनन्त ज्ञान दर्शन सुख आदि का अनुभव करता है।

तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है कि मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन बन्ध के कारणों के अभाव में नये कर्मों का अभाव तथा पूर्व कर्मों के झड़ जाने से समस्त कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाना मोक्ष है।[४] अर्थात् मिथ्या दर्शनादि कारणों का अभाव हो जाने से नये कर्मों का बन्ध होना रुक जाता है और तप इत्यादि के द्वारा पहले बन्धे हुये कर्मों की निर्जरा हो जाती है। अतः आत्मा सर्व कर्म बन्धनों से छूट जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

---

१. तत्त्वार्थ सूत्र ९/४

२. कर्मणां फलभोगेन संक्षयो निर्जरा मता।
भूत्यादर्श इवात्मायं तया स्वच्छत्वमृच्छति।। नेमिनिर्वाण १५/७४

३. अनेकजन्मबद्धानां सर्वेषामपि कर्मणाम्।
विप्रमोक्षः स्मृतो मोक्ष आत्मनः केवलस्थिते।। नेमिनिर्वाण १५/७६

४. बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां-कृत्स्न-कर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। तत्त्वार्थसूत्र १०/२

इस प्रकार नेमिनिर्वाण काव्य में महाकवि वाग्भट ने आत्मज्ञान के लिए आवश्यक अजीव तत्त्व बन्ध के कारण रूप आस्रव, दुःखरूप बन्ध और मोक्ष के कारण रूप संवर तथा निर्जरा का वर्णन किया है । यह समग्र वर्णन मोक्ष के कारणरूप सम्यक् श्रद्धा के लिये किया गया है ।

ध्यान :

एकाग्र चिन्ता के निरोध को ध्यान कहते हैं । यद्यपि ध्यान की स्थिति उत्तम संहनन वाले को अन्तर्मुहूर्त तक ही होती है ।[१] किन्तु ध्येय बदल जाने पर भी ध्यान की भावना चलती रहती है । इसलिये बदलते हुये ध्येय की भावना के साथ ध्यान अधिक समय तक भी रह सकता है पं० टोडरमल ने लिखा है कि "एक का मुख्य चिंतन होय अर अन्य चिंता रुके, ताका नाम ध्यान है । जो सर्व चिन्ता रुकने का नाम ध्यान होय तो अचेतनमन हो जाये । बहुरि ऐसी भी विविधता है जो संतान अपेक्षा नाना ज्ञेय का भी जानना होय, परन्तु यावत् वीतरागता रहे - रागादिक करि आप उपयोग को भ्रमावे नांही तावत् निर्विकल्प दशा कहिये है" ।[२]

गति की अपेक्षा जीव के नारकीय, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवता ये चार भेद करते हुए उनकी प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में नेमिनिर्वाण में ध्यानों का विवेचन हुआ है ।[३] ध्यान के चार भेद होते हैं - आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल । इनमें अन्तिम दो ध्यान मोक्ष के कारण हैं ।[४] धर्मध्यान परम्परा से तथा शुक्ल ध्यान साक्षात् मोक्ष का कारण है । इनमें से प्रारम्भ के दो ध्यान अप्रशस्त हैं और संसार के कारण हैं ।

(१) आर्तध्यान

दुःख के अनुभव के समय चिन्ता का होना आर्तध्यान है । यह अनिष्ट संयोग इष्ट वियोग, पीड़ा तथा निदान से होता है । विष, कांटा, शत्रु आदि अप्रिय वस्तुओं का समागम होने पर तज्जन्य पीड़ा से व्याकुल होकर उस वस्तु के वियोग के लिये सतत चिन्ता करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है । यह ध्यान द्वेष भाव से होता है इष्ट पदार्थ का (पुत्र, धन, स्त्री) वियोग होने पर उसके संयोग के लिये बारम्बार विचार करना सो इष्ट वियोगज नाम का आर्तध्यान है । रोग जनित पीड़ा होने पर उसे दूर करने के लिए रात-दिन सतत चिन्ता करते रहना सो वेदना जन्य आर्तध्यान है । भोगों की तृष्णा से पीड़ित होकर रात दिन आगामी भोगों को प्राप्त करने की ही चिन्ता बनी रहना निदान आर्तध्यान है ।[५] आर्तध्यान तिर्यंच गति का कारण होता है ।

(२) रौद्र ध्यान

रौद्र का अर्थ है निर्दयता-क्रूरता । निर्दय, या क्रूर परिणामों से होने वाले ध्यान को रौद्रध्यान कहते हैं । यह हिंसा, असत्य, चोरी और विषयों के संरक्षण के भाव से अविरत और

---

१. उत्तमसंहनन स्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।। - तत्त्वार्थसूत्र ९/२७

२. मोक्षमार्गप्रकाशक पृ० २११

३. नेमिनिर्वाण, १५/५६-६१, ६५

४. आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्लानि । परेमोक्षहेतू ।। तत्त्वार्थ सूत्र २८-२९

५. तत्त्वार्थसूत्र ९/३०-३३

देश-विरत गुणस्थानों में होता है।[१] रौद्र ध्यान नरक गति का कारण है। रौद्र ध्यानी जीव हिंसा झूठ चोरी विषय-संरक्षण या परिग्रह में आनन्द मानकर उन्हीं की चिन्ता में रत रहता है।

(३) धर्म ध्यान

शुभ राग और सदाचार के पोषण का चिन्तन करना धर्म ध्यान है। यह ध्यान आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान विचय इन चार निमित्तों से होता है। अतः चार प्रकार का है।[२] अच्छे उपदेश के न होने से, अपनी बुद्धि के मंद होने से और पदार्थ के सूक्ष्म होने से जब युक्ति और उदाहरण की गति न हो तो ऐसी अवस्था में सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे गये आगम को प्रमाण मानकर गहन पदार्थ का श्रद्धान कर लेना कि यह ऐसा ही है, आज्ञाविचय है। अथवा स्वयं तत्त्वों का जानकार होते हुये भी दूसरों को उन तत्त्वों को समझाने के लिये युक्ति दृष्टान्त आदि का विचार करते रहना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। स्वयं के और संसारी जीवों के दुःख का विचार करना और उससे छूटने के उपाय का चिंतवन करना अपाय विचय धर्मध्यान है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इनकी अपेक्षा कर्म कैसे-कैसे फल देते हैं, इसका सतत विचार करना विपाक विचय धर्मध्यान है। लोक के आकार और उसके स्वरूप के विचार में अपने चित्त को लगाना संस्थान विचय धर्मध्यान है। धर्मध्यान मनुष्य गति एवं देवगति की प्राप्ति का हेतु है।

(४) शुक्ल ध्यान

कषाय रहित भावों से किसी एक पदार्थ पर चित्त का लगना शुक्ल ध्यान कहलाता है। इससे परिणामों में निर्मलता आती हैं शुक्ल ध्यान साक्षात् मोक्ष का हेतु है। शुक्ल ध्यान के चार भेद किये गये हैं - पृथक्त्व वितर्क, एकत्व वितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति।[३] मन वचन काय के द्वारा अनेक भेदों से युक्त द्रव्यों का ध्यान पृथक्त्ववितर्क नाभ का शुक्ल ध्यान है। मन वचन काय में से किसी एक योग के द्वारा एक द्रव्य का ध्यान एकत्व बितर्क शुक्ल ध्यान है। काय योग की सूक्ष्म क्रियाओं के काल में जो ध्यान होता है, वह सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति शुक्त ध्यान होता है। व्युपरतक्रिया निर्वृत्ति नामक शुक्ल ध्यान योग रहित जीव को होता है। अन्य जीवों के लिये दुर्लभ है।

पंच पाप :

नेमिनिर्वाण के त्रयोदश सर्ग में पंच पापों के त्याग का विवेचन किया गया है।[४]

(१) हिंसा

प्रमाद-कषाय-राग-द्वेष (असलाचार के सम्बन्ध) अथवा प्रमादी जीव के मन वचन काय योग से जीव अपने तथा दूसरों के भाव अथवा द्रव्य प्राणों का अथवा दोनों का घात करना हिंसा है।[५] यह हिंसा चार प्रकार की हो सकती है - जो हिंसा गृहस्थियों को खाना बनाने,

१. तत्त्वार्थ सूत्र ९/३५ २. वही, ९/३६ ३. वही, ९/३९

४. नेमिनिर्वाण, १३/८-९ ५. प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा। तत्वार्थ सूत्र ७/१३

शरीर, मकान आदि के स्वच्छ रखने में होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं। जो आजीविका के लिये कोई योग्य व्यवसाय के करने में होती है वह उद्योगी हिंसा होती है, जो चोर आदि अत्याचारियों से अपनी व अपने धन जन की रक्षा में होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं तथा जो हिंसा केवल किसी के प्राण लेने अथवा दुःख पहुँचाने के संकल्प के इरादे से की जाती है, उसे संकल्पी हिंसा कहते हैं। इन चार प्रकार की हिंसा में से गृहस्थ केवल संकल्पी हिंसा का त्यागी हो सकता है।

(२) अनृत

प्रमाद के योग से जीवों को दुःखदायक अथवा मिथ्या रूप वचन बोलना असत्य है।[१] अनृत चार प्रकार का है - अविद्यमान, पदार्थ का कथन करना, विद्यमान वस्तु का निषेध करना, विपरीत वचन तथा पीड़ाकारी एवं गर्हित वचन बोलना।

(३) स्तेय

बिना दी हुई वस्तु का लेना स्तेय अर्थात् चोरी है।[२]

(४) अब्रह्म

मैथुन को अब्रह्म अर्थात् कुशील कहते हैं।[३] स्त्री और पुरुष का जोड़ा मिथुन कहलाता है और चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने पर राग परिणाम से युक्त होकर उनके द्वारा की गई स्पर्शन आदि क्रिया (मैथुन) अब्रह्म है।

(५) परिग्रह

किसी भी पर वस्तु में मूर्च्छा-आसक्ति-ममत्व-लीनता परिग्रह है।[४] परिग्रह के दो भेद हैं - अन्तरंग और बाह्य परिग्रह। अन्तरंग परिग्रह १४ प्रकार का है - मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसंकवेद। बाह्य परिग्रह १० प्रकार का है - क्षेत्र, वास्तु, सोना, चाँदी, धन, धान्य, दास, दासी, वस्त्र, बर्तन। इस प्रकार दोनों प्रकार का मिला कर परिग्रह २४ प्रकार का बताया है।

कर्म :

महाकवि वाग्भट ने तीर्थङ्करों की स्तुति के प्रसंग में तीर्थङ्कर अरनाथ की स्तुति करते हुये इन्हें कर्मों से मुक्त होने के लिए नमस्कार किया है।[५] कर्म सांसारिक बन्धन रूप हैं। ये सभी कर्म पुद्गल के परिणाम हैं अतः पर पदार्थ हैं। कर्मों से छुटकारा पाये बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। कर्म दो प्रकार के होते हैं - द्रव्य कर्म और भाव कर्म।

---

१. असदभिधानमनृतम्, तत्त्वार्थसूत्र ७/१४
२. अदत्तादानस्तेयम्। तत्त्वार्थसूत्र ७/१५
३. मैथुनमब्रह्म - तत्त्वार्थसूत्र ७/१६.
५. मूर्च्छापरिग्रहः। तत्त्वार्थ सूत्र ७/१७
६. नेमिनिर्वाण, १/१८

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह और अन्तराय ये चार घाती एवं वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघाती मिलकर आठ द्रव्य कर्म हैं तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से उत्पन्न होने वाले मोह आदिभाव भाव-कर्म कहलाते हैं। जो आत्मा के ज्ञान गुण को ढके है वह ज्ञानावरण कर्म, जो आत्मा के दर्शन गुण को ढके है दर्शनावरण कर्म, जो दर्शन मोह का स्वभाव तत्त्वार्थ श्रद्धान न होने देना है और चारित्र मोह का स्वभाव संयम को रोकना है यानि जो मोह राग और द्वेष भाव के उत्पन्न होने में निमित्त है वह मोह कर्म तथा जो दान, लोभ, भोग उपभोग, वीर्य में विघ्न डालता है वह अन्तराय कर्म, जो बाह्य सामग्री के आलम्बन पूर्वक सुख-दुःख का वेदन कराने में निमित्त है वह वेदनीय, जो आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य या देव शरीर (भव) में रोके रहे वह आयु कर्म, जो नाना प्रकार के शरीर व शारीरिक विविध अवस्थाओं के होने में निमित्त हो वह नाम कर्म, तथा जो ऊँच नीच कुल में पैदा होने में निमित्त हो वह गोत्र कर्म, कहलाते हैं।

तप :

नेमिनिर्वाण में अनेक स्थलों पर तप का वर्णन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि यद्यपि तपस्या महत्त्वपूर्ण है तथापि प्राणी-वध में अभिरुचि रखने वाले की तपस्यायें व्यर्थ हैं।[1] जैन दर्शन में एवं आचार में तप का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि तप संवर के साथ-साथ निर्जरा का भी कारण है।[1] तप के प्रभाव से नये कर्मों का संवर होता है और प्राचीन कर्मों की निर्जरा होती है। तप का प्रधान फल कर्मों का नाश होना, एवं गौण फल सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति है। तप आत्मा से कर्म मैल को हटा देता है तथा इससे कामवासना नष्ट होती है। इस प्रकार तप से कर्मों की अविपाक निर्जरा होती है, जो मोक्ष का साक्षात्कारण है। इसी लिए दश धर्मों में भी तप को परिगणित किया गया है। तप बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का होता है।

बाह्य तप :

जिसमें शारीरिक क्रियाओं की प्रधानता होती है और जो दूसरों को देखने में भी आता है वह बाह्य तप है। इसके छः भेद हैं।

(१) अनशन - इसे उपवास भी कहते हैं।
(२) अवमौदर्य - भूख से कम खाना अवमौदर्य तप है।
(३) वृतिपरिसंख्यान - प्रतिज्ञा एवं रीति के अनुसार आहार मिलने पर ही ग्रहण करना।
(४) रस परित्याग - इन्द्रियों के दमन के लिये घी, दूध आदि का यथाशक्ति त्याग।
(५) विविक्त शय्यासन - ब्रह्मचर्य आदि की सिद्धि के लिये एकान्त में शयन एवं आसन।
(६) कायक्लेश - परिषह सहन के लिये पद्मासन आदि लगाना।

---

१. नेमिनिर्वाण, १३/१८-१९

अन्तरंग तप :

जिसमें मानसिक क्रिया की प्रधानता होती है और दूसरे को दिखाई नहीं पड़ता है उसे अन्तरंग तप कहते हैं । इसके भी छह भेद हैं :-

(१) प्रायश्चित - प्रमाद जनित दोषों का शोधन करना प्रायश्चित है ।
(२) विनय - परिणामों को कोमल बनाना विनय तप है ।
(३) वैयावृत्य - भक्तिभाव सहित पूज्यपुरुषों की सेवा वैयावृत्य है ।
(४) स्वाध्याय - शास्त्रों का आलस्य रहित अभ्यास स्वाध्याय है ।
(५) व्यत्सर्ग - बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह को त्यागना, तथा भावों को निःसंग शुद्ध बनाना।
(६) ध्यान - विकल्परूप चित्त की चंचलता का त्याग ।

अनेकांत :

अनेकांत का अर्थ है परस्पर विरोधी दो तत्वों का एकत्र समन्वय । तात्पर्य यह है कि जहाँ दूसरे दर्शनों में वस्तु को केवल सत् या असत् सामान्य या विशेष, नित्य या अनित्य, एक या अनेक और भिन्न या अभिन्न स्वीकार किया गया है । वहाँ जैन दर्शन में वस्तु को सत् और असत्, सामान्य और विशेष, नित्य और अनित्य, एक और अनेक तथा भिन्न और अभिन्न स्वीकार किया गया है और जैन दर्शन की यह मान्यता परस्पर विरोधी दो तत्वों के एकत्र समन्वय को सूचित करती है ।[१]

नेमिनिर्वाण में प्रथम सर्ग में पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति करते हुये उन्हें अनेकान्त का विधान करने वाला कहा है ।[२]

---

१. तपसा निर्जरा च - तत्त्वार्थ सूत्र-८/३
१. न्यायदीपिका पृ० ३
२. नेमिनिर्वाण १/२३

नेमिनिर्वाण : दर्शन एवं संस्कृति

संस्कृति

तत्कालीन संस्कृति की अमिट छाप उस समय के साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही है क्योंकि लेखक अथवा कवि एक युग निर्माता होता है। वह पूर्णरूप से संस्कृति से जुड़ा होता है। महाकवि वाग्भट अपने युग के एक सजग प्रहरी हैं, जिन्होंने अपने काव्य नेमिनिर्वाण में अनेक सांस्कृतिक तथ्यों को प्रस्तुत किया है। कवि ने जीवन का सभी दृष्टियों से विवेचन प्रस्तुत किया है। द्वीप, क्षेत्र, जनपद, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष पुष्प, पशु, पक्षी, नगर, ग्राम, भवन, व्यवसाय, शिक्षा, परिवार आदि का वर्णन नेमिनिर्वाण में हुआ है। जिनका संक्षेप में सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत है।

साहित्य में सांस्कृतिक परिवेश का अति महत्त्व है। इसके अन्तर्गत समाज, उसका, रहन-सहन, आचार-विचार, राजनीति, अर्थनीति, तथा अन्य सभी पहलू विचारणीय होते हैं। अतः कवि के लिए भूगोल का ज्ञान उसके काव्याध्ययन के लिए अपरिहार्य है।

द्वीप :

नेमिनिर्वाण में जम्बूद्वीप का उल्लेख जैन परम्परा के अनुसार ही हुआ है।[1]

यह द्वीप लवण समुद्र से घिरा है और इसके बीच में सुमेरु पर्वत है। इसमें जम्बू वृक्ष होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है। इसका विस्तार एक लाख योजन तथा परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष साढे तेरह अंगुल बताई है। इसका घनाकार क्षेत्र सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख चौरानवें हजार एक सौ पचास योजन है।[2]

पुष्करार्ध द्वीप :

नेमि निर्वाण में यह पुष्करार्द्ध द्वीप नाम आया है।[3] इस द्वीप का पुष्कर द्वीप अथवा पुष्करार्ध ये दोनों ही नाम आये हैं। इसका आकार चूड़ी के समान है। इसमें पर्वत और नदियाँ बड़ी विशाल हैं। बीच में पुष्कर वृक्ष होने से इसका यह नाम पड़ा। इसके बीचों-बीच मानुषोत्तर पर्वत होने से यह दो भागों में बँट गया है। अतः आधे द्वीप को पुष्करार्ध यह नाम प्राप्त हुआ है।[4]

पर्वत :

सांस्कृतिक उपादानों के अन्तर्गत पर्वतों का बड़ा की महत्त्व है। देश की सीमाओं की रक्षा की दृष्टि से तथा जलवायु तथा प्राकृतिक वातावरण में पर्वतों का बड़ा योग होता है। ये देश की सीमा पर प्रहरी के समान कार्य करते हैं।

---

१. नेमिनिर्वाण, ५/५८, १३/६५ २. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत पृ० ४१ ३. नेमिनिर्वाण, १३/५२

४. यत्र जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम् तत् एव अस्य द्वीपस्य नाम रूढं पुष्करद्वीप इति ..... मनुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धव्वात्पुष्करार्ध संज्ञा सर्वार्थसिद्धि ३.३४ सूत्र की व्याख्या।

नेमिनिर्वाण मे गोवर्धन[१], सुमेरु[२], मन्दार[३], मेरु[४], सुपर्व[५], कैलाश[६], मलय[७], रैवतक[८], मन्द्र[९], अञ्जन[१०], तथा विन्ध्य[११] पर्वतों के नाम आये हैं ।

नदियाँ :

पर्वतों की तरह नदियों का भी अति महत्त्व है । ये प्रकृति का वरदान तथा अभिशाप स्वरूप होती हैं । भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाने में नदियाँ एक विशेष कार्य करती हैं। पहले तो आवागमन की सुविधा न होने से यह कार्य नदियों पर आश्रित होता था । यही कारण है कि प्राचीन बहुत से बड़े बड़े नगर नदियों पर ही बसे हैं ।

नेमिनिर्वाण में भी अनेक नदियों का उल्लेख हुआ है जो इस प्रकार हैं - सिन्धु[१२], यमुना[१३], कलिन्दकन्या[१४], मन्दाकिनी[१५], गंगा[१६], मालिनी[१७], जह्नुतनया[१८], तमसा[१९], मेकलकन्या[२०]।

वन एवं उद्यान :

भौगोलिक दृष्टि से वनों व उद्यानों का अति महत्त्व है । विविध प्रकार की भूमि और जलवायु के कारण विभिन्न वनस्पतियाँ उद्यानों एवं वनों में उत्पन्न होती हैं, जो बड़ी ही लाभ दायक है । तथा जीवनोपयोगी हैं । इसी प्रकार उद्यान मनोरञ्जन तथा क्रीड़ा के प्रमुख साधन हैं । जिनका मनोरम और मनोहर वातावरण मन को आकर्षित करता है । नेमिनिर्वाण में तीन वनों या उद्यानों के नाम उल्लिखित है ।

चेलूवन[२१] क्रीड़ावन[२२] अम्भोजवन[२३]

वृक्ष :

देश की समृद्धि के लिये वृक्ष अति आवश्यक उपादान हैं जहाँ वृक्ष और लतायें शोभावर्द्धक होती हैं, वहीं दूसरी ओर इनसे बहुमूल्य लकड़ियाँ तथा पौष्टिक फल-फूल भी प्राप्त होते हैं ।

नेमिनिर्वाण में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का वर्णन मिलता है । जैसे - पौराणिक वृक्षों में कल्पद्रुम[२४] । कल्पवृक्ष का उल्लेख भारतीय साहित्य में बहुतायत से हुआ है । योगभूमि में मनुष्यों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को चिन्तना मात्र से पूरी करने वाले कल्पवृक्ष होते हैं ।

---

१. नेमिनिर्वाण १/८९ २. वही, ५/३, ५३ ३. वही, ५/११, ७/२०
४. वही, ५/१६, ११/५६ ५. वही, ५/४० ६. वही, ५/६७
७. वही, ६/२० ८. वही, ६/५०, १०/४६, १३/८४
९. वही, ११/३७, ४९ १०. वही, १२/३७ ११. वही, १३/२६
१२. वही, १/३५ १३. वही,१/७४ १४. वही, १/७६
१५. वही, ३/३६ १६. वही, ५/६० १७. वही, ७/३८
१८. वही, ९/३५ १९. वही, ९/१२, २४ २०. वही, १३/३१
२१. वही, ८/१ २२. वही, ८/१०, ५९ २३. वही, ८/४९
२४. वही, ५/४४, ७१

इसके अतिरिक्त शाल[१], बल्लि[२], अर्जुन[३], कैरव[४], चन्दन[५], अशोक[६], वेतस[७], तमाल[८], शैवाल[९], कुरबक[१०], सहकार[११] (आम)

मदन[१२], बन्धूक[१३], चम्पक[१४], रम्भा[१५], (कदली), तिलक[१६], कर्णिका[१७], कदम्बक[१८], केतकी[१९], ताल[२०], मौलि[२१], बकुल[२२] ।

पुष्प :

नेमिनिर्वाण में विभिन्न प्रकार के शोभादायक और सुगंधित पुष्पों का उल्लेख मिलता है जिनमें मुख्य रूप से जपाकुसुम[२३], पुण्डरीक[२४], (पद्म) (कमल) (राजीवनी) (पंकज) (अम्भोरुह) (सरोज) नीलोत्पल[२५],

कैरव[२६], पद्मिनी[२७], (नलिनी), सरोरुह[२७], बन्धूक[२९], पारिजात[३०], किंशुक[३१], बकुल[३२], अरविन्द[३३], चम्पक[३४], आदि पुष्पों के नाम आये हैं ।

पशु :

नेमिनिर्वाण में वर्णित पशुओं में गौ(गाय)[३५], कुरङ्ग (हरिण)[३६], केशरी (सिंह)[३७], मृग[३८], शिवा[३९], चमरी[४०], तुरंग(घोड़ा)[४१], गज[४२], महिष[४३], देवकरी[४४], (ऐरावत-इन्द्र का हाथी)[४५], वृष[४६],

---

१. नेमिनिर्वाण, १/३४
२. वही, १/७०
३. वही, १/३२
४. वही, ३/४
५. वही, ३/१५
६. वही, ३/२८, ५/२, ६/३०, ८/८, ७/३८
७. वही, ४/३३, ५५,
८. वही, ५/२, ५८
९. वही, ५/४१, ४९, ८/५५
१०. वही, ६/२५
११. वही, ८/१६
१२. वही, ६/४१, ८/७
१३. वही, ७/४
१५. वही, ७/५०, ८/१०
१६. वही, ७/५१, १२/५
१७. वही, ८/८
१८. वही, ८/१०
१९. वही, ८/५६
२०. वही, ८/१६
२१. वही, ८/१९
२२. वही, ६/२३, ४७
२३. वही, १/१२, ३/१२
२४. वही, १/३७, १/१, १/१२, ३/१४, ८/७, १/४४, १/५५, १/१३, ७/२५, ३२, ८/४३
२५. वही, १/७६
२६. वही, ३/४, ३/३१, ७/१५
२७. वही, ३/९, ३/१०, ८/५७
२८. वही, ३/२३
२९. वही, ७/४
३०. वही, ४/३
३१. वही, ६/३८, ६/४१
३२. वही, ६/२३, ४७
३३. वही, ८/८२
३४. वही, १/४८, ६/२९
३५. वही, १/२९
३६. वही, १/४०, २/५२, ७/४५
३७. वही, १/४३, ४/१६, ८/२
३८. वही, १/४३, ३/१५
३९. वही, १/६१, ७/४४
४०. वही, १/६८, ७/४२, ७/५३
४१. वही, ३/१४, ५/३८, ५/४१
४२. वही, ४/१६, ५/४१, ३/२१
४३. वही, ४/३१, ९/२७
४४. वही, ४/३४
४५. वही, ५/४, १२
४६. वही, ६/१६, १३/४७

हरिणी[१], गजेन्द्र[२] (गजराज) नन्दिनी (कामधेनु)[३], शार्दूल[४], श्वापद[५], शश(खरगोश)[६], सारंग (हरिण)[७], शूकर[८] हैं । जलचरों में मीन[९], मकर[१०], आदि हैं ।

पक्षी :

नेमिनिर्वाण में पक्षियों का उल्लेख निम्न प्रकार है - बलाका[११], राजहंस[१२], भ्रमर (मधुकर) भृंग, अलि, मधुप, षटपद[१३], चकोर [१४], कोक[१५], उल्लूक[१६], शिखि[१७], मराल (हंस)[१८], कोकिल (पिक)[१९], मयूर[२०],

सुरचक्र[२१] (चक्रवाक), मधुकरी[२२] (भौंरी), शुक (तोता)[२३], कीर[२४] ।

देश :

नेमि निर्वाण में देश का वर्णन निम्न प्रकार है -

भारत[२५], जनपद, नगर, ग्राम

सुराष्ट्र :

भारत देश में सौराष्ट्र या सुराष्ट्र जनपद में काठिवाड़ तथा उसका निकटवर्ती प्रदेश सम्मिलित था । इसकी राजधानी द्वारका[२६] थी । महाभारत में सहदेव द्वारा सुराष्ट्र को जीते जाने का उल्लेख है । गिरनार पर्वत इसी देश में होने के कारण तथा सोमनाथ के मंदिर के कारण इसका बहुधा उल्लेख मिलता है ।

नेमिनिर्वाण में सुराष्ट्र देश का वर्णन हुआ है ।[२७] जिसमें द्वारावती (द्वारका) नगरी है।

कुरुजांगल :

नेमिनिर्वाण के त्रयोदश सर्ग में कुरुजांगल देश का वर्णन आया है ।[२८] अन्तिम कुलकर नाभिराय के प्रथम पुत्र तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने भरत क्षेत्र को जनपदों एवं खण्डों में विभाजित किया था । इनमें एक कुरुजांगल नामक जनपद भी था । कुरुजांगल की राजधानी हस्तिनापुर या गजपुर

---

१. नेमिनिर्वाण, ७/१५ २. वही, ७/३०, ३५ ३. वही, ७/३७
४. वही, ७/४५ ५. वही, ७/४५ ६. वही, ९/२१, ९/२५
७. वही, १३/५५ ८. वही, १३/१६ ९. वही, ९/४
१०. वही, ९/४ ११. वही, १/३२ १२. वही, १/३७, ४/४८, ५८
१३. वही, १/४५, ३/१४, ३/११, ९/१७, ७/२०, ७/३७ १४. वही, २/२३, ३/११, १५, १०/१२
१५. वही, ३/४ १६. वही, ३/२०, ९/१६ १७. वही, ४/५५, ६/८, ७/२६
१८. वही, ५/४९ १९. वही, ६/११, २९, ३९, ४३, ४७, ७/३५
२०. वही, ७/३६ २१. वही, ८/१३ २२. वही. ८/४९
२३. वही, ९/३ २४. वही, ११/२० २५. वही, १३/२६
२६. महाभारत सभापर्व २८.४० २७. नेमिनिर्वाण, १/२८ २८. वही, १३/७५

थी ।[१] हस्तिनापुर वर्तमान में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में है, जो जैनधर्मानुयायियों का प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र है । यहाँ १६ वें शान्तिनाथ, १७ वें कुन्थुनाथ और १८ वें अरनाथ तीर्थङ्करों का जन्म हुआ था । यें तीनों पांचवें छटे और सातवें चक्रवर्ती भी थे ।

इसके अतिरिक्त अमरावती[२], अवापुर[३] तथा अमरनगर[४] नामों का उल्लेख मिलता है ।

द्वारका पुरी :

सुराष्ट्र जनपद की राजधानी द्वारका पुरी थी जो नेमिनाथ की जन्मभूमि है । नेमिनिर्वाण मे द्वारका पुरी का अनेकधा वर्णन हुआ है जो प्रसंगवश पहले अध्याय में दिया जा चुका है।[५]

सिंहपुर :[६]

जम्बू द्वीप में सिंहपुर नाम का एक नगर है । इस जनपद के गाँव में भगवान नेमिनाथ पूर्वजन्म में उत्पन्न हुये ।

श्रीगान्धिल :[७]

यह सिंहपुर जनपद का एक गाँव है जहाँ पर भगवान नेमिनाथ के पूर्वजन्म का उत्पन्न होना माना गया है ।

आवास :

नेमिनिर्वाण में विविध आवासों का वर्णन हुआ है ।

हर्म्य :

हर्म्य को सात मंजिल वाला भवन कहा है । हर्म्य की छत बहुत ऊँची होती थी । महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत काव्य में हर्म्य का निर्देश किया है । हर्म्य ऊँची अट्टालिका वाले ऐसे भवन थे जिनमें कपोत भी निवास करते थे । अमर कोष में धनिकों के भवन को हर्म्य कहा है ।[८]

नेमिनिर्वाण में द्वारकापुरी को विभिन्न हर्म्यों वाली कहा गया है ।

प्रासाद :

प्रासाद रचना वास्तुकला का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । प्रासाद शब्द साधारणतः राजाओं के महलों के लिए प्रयोग किया जाता है परन्तु वास्तु-शास्त्रीय परिभाषा में प्रासाद का तात्पर्य विशुद्ध रूप में देव-मन्दिर से हैं । प्रासाद में राज शब्द जोड़ देने से राजप्रासाद या राजमहल का बोधक हो जाता है । अतः प्रासाद शब्द राजमहलों अथवा देवमन्दिरों के लिए प्रयोग किया जाता है । नेमिनिर्वाण में प्रासाद शब्द का प्रयोग हुआ है ।[९]

---

१. पावनतीर्थ हस्तिनापुर पृ० ४ (दो शब्द)
२. नेमिनिर्वाण, २/१५
३. वही, ५/१२
४. वही, ७/१६
५. द्र० नेमिनिर्वाण, १२/२४
६. वही, १३/६५
७. वही, १३/६५
८. हर्म्यादि धनिनां वासः - अमरकोश, २/९
९. नेमिनिर्वाण, १/४६

सद्म :

सभा, वापिका, विमान तथा बाग-बगीचे से सुशोभित भवन को सद्म कहते हैं। राजभवन को राजसद्म कहा जाता है। नेमिनिर्वाण में सद्म शब्द का उल्लेख तृतीय सर्ग में हुआ है।[१]

शाला :

शाला - भवनों की परम्परा बहुत प्राचीन है। शाला एक प्रकार का हर्म्य या भवन होता है। मंत्रशाला, यज्ञशाला, गौशाला, गजशाला, पाठशाला, अश्वशाला, पाकशाला आदि इसके परिचायक हैं। नेमिनिर्वाण में स्फटिकमणियों से निर्मितशाला (स्फटिकाश्मशाला) का नाम आया है।[२]

मन्दिर :

मन्दिर शब्द के दो अर्थ होते हैं - घर (भवन) तथा नगर। अमरकोश में मन्दिर शब्द भवन वाचक है। प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो बहुत प्राचीन नगर मन्दिर स्थानों के विकास मात्र हैं। संसार के अन्य प्राचीन नगरों की यही कथा है। प्राचीन काल में किसी देवायतन के पूत-पावन भू-भाग के निकट थोड़े से जिज्ञासु एवं साधक सज्जनों ने सर्वप्रथम अपने आवासों का निर्माण किया। धीरे धीरे वह स्थान अपने निजी आकर्षण से एक विशाल तीर्थस्थान या नगर में परिणत हो गया। उसके निकट किसी सुरम्य जलाशय, सरिता का होना आवश्यक है। क्योंकि जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता जलपूर्ति की साधन सम्पन्नता के कारण, मन्दिर के सुन्दर स्वास्थ्यप्रद एवं पावन वातावरण के कारण निवास स्थापन सहज हो जाता है।[३]

नेमिनिर्वाण में सुर-मन्दिर[४], पट-मन्दिर[५], विश्व मन्दिर[६], मन्दिर[७], श्रीमन्मन्दिर[८], नामों का उल्लेख आया है।

दीर्घिका :

नेमिनिर्वाण में उग्रसेन के यहाँ क्रीड़ास्थल में सुन्दर दीर्घिका होने का कथन ११ वें सर्ग में किया गया है। दीर्घिका एक लम्बी नहर होती थी जो राजमहलों के भागों में प्रवाहित होती हुई गृह उद्यान तक जाती थी। नेमिनिर्वाण में इस प्रकार की दीर्घिकाओं का वर्णन आया है कि महलों के अंदर बड़ी बड़ी दीर्घिकाओं में स्वच्छ जल बहता था, जहाँ स्नान करती हुई स्त्रियों के अंगरागों से निरन्तर कर्पूर श्रीखंड कस्तूरी की सुगन्ध से क्रीडादीर्घिका सुगन्धित होती थी।[९]

---

१. नेमिनिर्वाण, ३/१७
२. वही, १/४३
३. भारतीय स्थापत्य : पृष्ठ ५३-५४
४. नेमिनिर्वाण - १/५५
५. वही - ७/५५, १०/५२
६. वही - ९/८
७. वही - ९/५५
८. वही - ११/२०
९. वही, १/१९, २३

राजा :

नेमिनिर्वाण में राष्ट्र नीति तथा राजनीति का क्रमबद्ध वर्णन नहीं हुआ है, क्योंकि यह एक काव्यग्रन्थ है । फिर भी राजा तथा उसके कर्त्तव्य आदि के विषय में छुटपुट उल्लेख मिलता है । राजतन्त्रीय व्यवस्था में राजा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है । मनुस्मृति के अनुसार सम्पूर्ण सम्प्रभुता राजा में ही निहित होती है ।[१] राजा के अभाव में राज्य की कल्पना असम्भव है । प्रजा का अनुरंजन ही राजा का मुख्य कर्त्तव्य होता है । समुद्रविजय तथा श्रीकृष्ण आदि राजाओं में प्रजा को प्रसन्न रखने के गुण विद्यमान हैं । शत्रुओं को पराक्रम दिखाना, अपराधियों को कठोर दण्ड देना तथा सज्जनों की रक्षा करना राजा का धर्म बताया है ।[२] नेमिनिर्वाण में राजा समुद्रविजय के पराक्रम से सभी राजाओं की तीन स्थितियाँ हुई - उसके चरणों की सेवा, युद्ध में मृत्यु अथवा गहन वन में निवास । जिस राजा की छत्रछाया में दुष्टों का समूह सन्ताप को प्राप्त हुआ तथा जिसके पराक्रम से शत्रुओं ने स्पर्धा से देश त्याग कर दिया ।[३]

राजा का उत्तराधिकारी :

प्रायः राजा का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता था और वही राजतन्त्र की मर्यादा भी होती है । परन्तु इसके विपरीत भी देखा जाता है जैसा कि नेमिनिर्वाण में राजा समुद्र विजय ने अपने भाई वसुदेव को अपने प्रति भक्तिभाव युक्त जानकर उसके पुत्र चक्रपाणि श्रीकृष्ण को युवराज बनाया, जिससे देवगण बहुत प्रसन्न हुये तथा जो जनता को अतिप्रिय था उन्होंने यमुना के प्रवाह को नियंत्रित किया तथा पूतना तथा केशी राक्षसों को मारा तथा गोवर्धन पर्वत उठाकर द्वारकापुरी की रक्षा की ।[४]

अतः कभी कभी राजा निःसन्तान होने से तथा सन्तान अल्प वयस्क होने से भी अपने किसी परिवार में से उचित तथा बलिष्ठ, विद्वान और प्रजा के प्रिय को भी (युवराज) उत्तराधिकारी बना सकता था ।

राजा की दानवीरता एवं यश :

नेमिनिर्वाण में राजा समुद्रविजय की दानवीरता के विषय मे कहा है कि वह सभी प्रकार के आहार दानों को देता हुआ भी जो याचकों को अक्षीर (दूध से भिन्न - आंखों से प्रेरित) अन्न को देने वाला हुआ । दान देने वाला होते हुये भी (दनु का पुत्र राक्षस होने पर भी) देवताओं का भक्त था ।[५]

जिस राजा का यश चारों दिशाओं में फैला था तथा जिसकी सेवा वशीकृति राजा नित्यप्रति किया करते थे ।[६] तथा जिसके यश को सुनने में असमर्थ होते हुये शत्रु युद्ध में मृत्यु

१. मनुस्मृति, ७/७
२. राज्ञो हि दुष्टनिग्रहः शिष्टपरिपालनं च धर्मः । - नीतिवाक्यामृत, ५/२
३. नेमिनिर्वाण, १/६२, ६३, ६५
४. वही, १/७३, ७५, ७९
५. वही, १ /६९
६. वही, २/१

को प्राप्त हो गये तथा उन्होंने स्वर्ग में देवांगनाओं के द्वारा गाये जाते हुये अपने वध को बड़े कष्ट के साथ सुना ।[१]

सैन्य :

देश की रक्षा और राष्ट्र विरोधी शक्तिओं एवं शत्रु राजाओं के दमन के लिए राज्य में सैन्य विभाग तथा सहचारियों का होना अनिवार्य है। वास्तव में बल ही राज्य का आधार स्तम्भ होता है। सैन्य (बल) संगठन का उद्देश्य प्रजा का दमन करना नहीं है, अपितु देश रक्षा तथा राष्ट्र कंटकों का विनाश करना है। जैसा कि "नीति-वाक्यामृत" में कहा है कि जो शत्रुओं का निवारण करके, धन, दान और मधुर भाषाओं के द्वारा अपने स्वामी के समस्त प्रयोजन सिद्ध करके उसका कल्याण करता है, उसे बल (सैन्य) कहते हैं ।[२]

नेमिनिर्वाण में सैन्य-सहचारिण शब्द का उल्लेख मात्र हुआ है ।[३]

दुर्ग :

शत्रु राजाओं से रक्षा करने की दृष्टि से राज्य की सीमाओं पर दुर्ग बनाया जाता था। इन्हीं दुर्गों में चुनी हुई सेना का निवास होता था, जो आक्रमणकारी शत्रु को नगर में प्रवेश से रोकती थी। अतः राजा के लिये दुर्ग बहुत महत्त्वपूर्ण है प्राचीन काल में दुर्ग नगर के रूप में तथा नगर दुर्ग के रूप में सन्निविष्ट होते थे। इसीलिए शब्द कल्पद्रुप में पुर का अर्थ दुर्ग, अधिष्ठान, कोट्ट तथा राजधानी लिखा है ।[४] प्राचीन काल में जब शासन पद्धति तथा शासन व्यवस्था के वे सुन्दर केन्द्रीय साधन अनुपलब्ध थे जिनसे किसी विशाल भू-भाग पर शासन की सुव्यस्था तथा शान्ति रक्षा का प्रबन्ध किया जा सके। विभिन्न बस्तियाँ, चाहे वे ग्राम हों अथवा नगर, अपनी अपनी रक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं संभालती थी ।[५] अतः ये दुर्गम दुर्ग बनाये जाते थे।

नेमिनिर्वाण में दुर्ग नाम का प्रयोग हुआ है ।[६]

परिखा :

परिखा को खाई भी कहते हैं। नगर की सुरक्षा की दृष्टि से बनाई जाती थी जो नगर के चारों ओर होती थी जिससे शत्रु नगर के अन्दर प्रवेश न कर सके। कभी कभी एक से अधिक परिखायें भी बनाई जाती थी जो आवश्यकतानुसार होती थी। परिखा के जल में कभी कभी भंयकर जीवजन्तु भी छोड़ दिये जाते थे।

नेमिनिर्वाण में परिखा का उल्लेख हुआ है कि द्वारावती नगरी के चारों ओर समुद्र की तरह (खाई) परिखा बनी थी ।[७]

---

१. नेमिनिर्वाण, ९/६७ २. नीतिवाक्यामृत - २२.१ ३. नेमिनिर्वाण, ४/३४
४. पुरं कोट्टमधिष्ठानं कोट्टो स्त्री राजधान्यपि। शब्दकल्पद्रुम (भारतीय स्थापत्य पृ० ६६)
५. भारतीय स्थापत्य पृ० ६५,६६ ६. नेमिनिर्वाण, १/२० ७. वही, १/३४

वप्र : (मिट्टी की चारदीवारी)

नगर के चारों और परिखाओं का खोदना एवं वप्र भूमि का निर्माण एक संयुक्त कार्य है ।[१] कौटिल्य के अनुसार खाई से चार दण्ड की दूरी पर छः दण्ड (चौबीस हाथ) ऊँचा, नीचे से मजबूत, ऊपर से ऊँचाई से दुगुना विस्तृत वप्र (मिट्टी की चारदीवारी) बनवाये । इन वप्रों को बनाते समय बैलों और हाथियों द्वारा भली - भाँति खोदवाकर और दबवाकर खूब मजबूत कर दे । उस पर कटीली झाड़ियाँ और विषैली लताएं लगा दे ।[२]

नेमिनिर्वाण में वप्र का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है ।[३]

सभा : (सदस्)

सभा के दो प्रधान उपकरण थे स्तम्भ तथा वेदियाँ । सभा एक प्रकार का द्वार भित्ति आदि से विरहित स्तम्भ प्रधान निवेश होता था । प्राचीन सभा भवन की यह रूप रेखा सदा वर्तमान रही । बाद में द्वारों और भित्तियों की कल्पनाओं से इन भवनों को अन्य भवनों के सादृश्य में लाने की परम्परा पल्लवित हुई । यह परम्परा राजनीति से प्रभावित थी । अतः सभा राजनीतिक निवेश का एक प्रधान अंग थी । जिसको दरबार के नाम से पुकारा जाता है ।

नेमिनिर्वाण में सदस् शब्द का उल्लेख इस प्रकार हुआ है - "इसके बाद राजा समुद्रविजय की सभा में अनेकदिशाओं से आये हुए राजाओं के द्वारा पूजित उस राजा ने आकाश से पृथ्वीतल पर उतरते हुए देवांगनाओ को आश्चर्यचकित दृष्टि से देखा" ।[४]

वर्ण और जातियाँ :

जैन धर्म में जातिवाद तथा वर्णवाद के प्रति विरोध की भावना दृष्टिगत होती है । आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण में चार जातियों की मान्यता को अहेतुक बताते हुये किसी भी जाति को निन्दनीय नहीं माना है ।[५] जैन धर्म अपनी समन्वयात्मक वृत्ति के कारण वैदिक संस्कृति के साथ अत्यन्त मेल से रहा । नेमिनिर्वाण में भी इसी परंपरा का निर्वाह किया गया है । वर्णों में चारों वर्णों को स्वीकारा है । जातियों में यदु (यादव)[६] अप्सरा[७], नट[८], किन्नर[९], आर्य[१०] सामंत[११], मलेच्छ[१२], देव, दानव गन्धर्व, यक्ष[१३] आदि नाम आये हैं ।

परिवार :

परिवार सार्वभौमिक समाज है । यह समाज काम की स्वाभाविक दृष्टि को लक्ष्य में रखकर यौन सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है । यह शिशुओं

---

१. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०२
२. कौटिल्य अर्थशास्त्र, २/३
३. नेमिनिर्वाण, १/३५, ४७
४. वही, २/१
५. पद्मपुराण, ११/१९४, २०३
६. नेमिनिर्वाण, १/३१, ६/५०
७. वही, ५/३९, ५/५६
८. वही, ५/५६
९. वही, ६/२८
१०. वही, ७/२
११. वही, ११/२९
१२. वही, १५/६७
१३. वही, १५/३२

के समुचित पोषण और विकास के लिए एक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। अतः मनुष्य के लिए समाज तथा परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। मातृस्नेह, पितृस्नेह, दाम्पत्य, आसक्ति, अपत्यप्रीति, साहचर्य परिवार के मुख्य स्तम्भ हैं। इन स्तम्भों पर ही परिवार का प्रासाद स्थित होता है।

नेमिनिर्वाण में राजा समुद्रविजय[१], रानी शिवादेवी[२], वसुदेव[३], गोविन्द (श्रीकृष्ण)[४] उग्रसेन[५] आदि के एक साथ रहने तथा परिवार के प्रति स्नेह को प्रकट करता है।

राजा समुद्रविजय तथा रानी शिवादेवी का दाम्पत्य जीवन का सुन्दर चित्रण है। पति पत्नी हृदय से एक दूसरें को प्रेम करते हैं।

परिवार में भाई-भाई का अतिस्नेह तथा भतीजे के प्रति प्रेम तथा पिता पुत्र का अत्यधिक प्यार था। राजा समुद्रविजय ने अपने प्रति भाई की भक्ति से ही वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को युवराज बनाया।[६]

अतः परिवार में सामान्यतः आज्ञाकारिता की भावना होती थी। पुत्र पिता की आज्ञा पालन करता था।

तेरहवें सर्ग में नेमि के पूर्वभवों के वर्णनों में पुत्र का पिता तथा माता के प्रेम तथा भक्ति भावनाओं का परिचय मिलता है।

माता-पिता सन्तान को सुशिक्षित और योग्य बनाते थे। नेमिनिर्वाण में पितृ-सत्तात्मक परिवार का ही चित्रण हुआ है।

परिवार में मनोरंजन के लिये जन्मोत्सव, अभिषेकोत्सव, विवाहोत्सव, जातकर्मोत्सव आदि आयोजन किये जाते थे। पिता का स्थान परिवार में प्रमुख था।

विवाह :

विवाह का उद्देश्य जीवन के पुरुषार्थों को सम्पन्न करना है। गार्हस्थ जीवन का मुख्य उद्देश्य परसेवा, देवपूजा, मुनिधर्म का आश्रय, दानादि है। स्त्री के बिना पुरुष और पुरुष के बिना स्त्री अपूर्ण होती है। अतः विवाह का महत्त्व असंदिग्ध है। नीतिवाक्यामृत में कहा गया है कि अग्नि, देव और द्विज की साक्षीपूर्वक पाणिग्रहण क्रिया का सम्पन्न होना विवाह है।[७] समाज शास्त्र की दृष्टि से भी धार्मिक कृत्यों, समाज के प्रति दायित्वों का निर्वाह, सन्तानोत्पत्ति, स्त्री-पुरुष का यौन सम्बन्ध, विवाह के उद्देश्य हैं।

---

१. नेमिनिर्वाण, १/५९ २. वही, १/५९ ३. वही, १/७३
४. वही, १/७३ ५. वही, ११/१ ६. वही, १/७३
७. युक्तितो वरणविधानमग्निद्विजसाक्षिकं च पाणिग्रहणं विवाहः।
-नीतिवाक्यामृत ३/२

नेमिनिर्वाण कालीन समाज में अनुरूप वर को कन्या देने का सामान्य नियम था। विवाह का उत्तरदायित्व पिता अथवा बड़े भाई पर होता था। एक व्यक्ति अनेक विवाह कर सकता था। नेमिनाथ के चेचेरे भाई श्रीकृष्ण के बहुत सी रानियाँ थी। स्पष्ट है कि बहु-विवाह प्रथा उस समय समादृत थी। नेमिनिर्वाण में नेमि के विवाह के लिए कृष्ण राजा उग्रसेन की कन्या को माँगने के लिए गये।[१] इससे स्पष्ट होता है कि पुत्र के लिए कन्या के पिता से याचना करने की प्रथा उन दिनों थी। विवाह के लिए सबसे पहले लग्न और मुहूर्त निकलवाया जाता था।[२] शुभ मुहूर्त में विवाह किया जाता था। बारात वरपक्ष से वधूपक्ष की ओर जाती थी।[३] विवाह के लिए सबसे पहले मंडप बनाया जाता था। वर एवं वधू को मंगल स्नान कराया जाता था, विभिन्न प्रकार के आभूषण व वस्त्र धारण कराए जाते थे, मंगलवाद्य ध्वनि होती थी।[४] कन्या को वरपक्ष वाले दिव्य वस्त्र आभूषण, सुगन्धित द्रव्यों से अलंकृत करते थे। हृदय पर मोतियों के हार, नाक में मोती, आँख में अंजन, रतन कुंडल इस प्रकार बहुत से आभूषणों और सुन्दर वस्त्रों से कन्या को सजाया जाता था।[५]

इसी प्रकार वर को भी हृदय पर स्वच्छ हार, रत्न कंकण, कानों में सुंदर रत्नकुंडल नासिका के ऊपर चन्दन का तिलक, सिर पर सुन्दर छत्र चूड़ामणि सजायी जाती थी। शरीर पर अंगराग तथा सुंदर वस्त्र धारण कराए जाते थे।[६] इस प्रकार सजे हुए वर का वधू पक्ष में आगमन होता था।

भोजनपान :

भोजन और पान के द्वारा शरीर पुष्ट तो होता ही है साथ ही साथ मस्तिष्क का भी विकास होता है। जैसा भोजन होता है वैसे ही हमारे विचार और क्रियाकलाप हो जाते हैं। सात्त्विक भोजन करने वालों के सात्त्विक विचार या अहिंसकता की भावना, इसके विपरीत तामसिक भोजन करने वालों की तामसी तथा हिंसक भावना। इसलिए भोजनपान की शुद्धता परम आवश्यक है। भोजन कई प्रकार का होता है जैसे अन्नाहार, फलाहार तथा मांसाहार। नेमिनिर्वाण कालीन समाज में अहिंसक होने के साथ-साथ मांसाहार का उल्लेख भी मिलता है। अन्नाहार में क्षीर[७], गोरस[८], शस्य[९], लाज[१०], क्षत[११], आदि हैं। मांसाहार का उल्लेख त्रयोदश सर्ग में भगवान् नेमिनाथ के विवाहोपलक्ष्य में राजाओं को खिलाने के लिए किया गया।[१२] पेय पदार्थों में मादक द्रव्य हाला[१३], मदिरा[१४], मधु[१५], मद्य[१६], आदि का उल्लेख है। फलाहारों में नारियल, केला, आम आदि का वर्णन हुआ है।

---

१. नेमिनिर्वाण, ११/१०
२. वही, ११/५६
३. वही, १२/१
४. वही, १२/३३
५. वही, १२/३५-३८
६. वही, १२/२-८
७. वही, १/६९
८. वही, ३/१८
९. वही, ८/६१
१०. वही, १२/१७
११. वही, १२/७०
१२. वही, १३/४
१३. वही, १/६४
१४. वही, ६/२३
१५. वही, ६/५०, १०/३, १०/४
१६. वही, १०/७, ८, १०

आजीविका के साधन :

जीवन को चलाने के लिए आजीविका का सुचारु और सुदृढ़ होना परमावश्यक है। अतः सामाजिक जीवन में आजीविका के साधन जुटाना अपेक्षित है नेमिनिर्वाण कालीन समाज में आजीविका के साधनों में कृषि ही एक मात्र साधन था । वहाँ पर विशेष वर्ग कृषि आश्रित था । कृषि में उत्तम तिलों की खेती होती थी ।[१] तिलों के अतिरिक्त अन्य अनाज भी उत्पन्न होते थे ।

वाहन :

नेमिनिर्वाण में निम्नलिखित वाहनों का उल्लेख मिलता है । नाव[२], स्यन्दन[३], विमान[४], रथ[५] आदि ।

आभूषण :

आभूषणों के प्रति भारतीयों का हृदय सर्वाधिक आकर्षित रहा है । यहाँ मनुष्यों ने आभूषणों का प्रयोग सामाजिक सम्पन्नता के प्रतीक के रूप में तथा सुसंस्कृत जीवन के लिए शरीर को सज्जित करने आदि रूपों में किया है । आभूषणों के द्वारा व्यक्ति के सौन्दर्य में वृद्धि होती है । अतः मनुष्य ने प्रति अंग के लिए भिन्न भिन्न आभूषणों की रचना की है । नेमिनिर्वाण में स्त्रियों और पुरुषों के आभूषण प्रायः समान माने गये हैं जैसे - गले में माला, हार तथा कानों मे कुण्डल, मुद्रिका तथा सिर पर मुकुट आदि धारण करना (स्त्री-पुरुष) दोनों के द्वारा प्रयोग किया जाता था ।

नेमिनिर्वाण में निम्नलिखित आभूषणों का उल्लेख मिलता है जो क्रमशः इस प्रकार है-

शिरोभूषण :

सिर के आभूषणों में मुख्य रूप से मुकुट किरीट[६] का उल्लेख है । मुकुट मणियों से बनाये जाते थे और उनमें हीरे जड़े होते थे । इनका प्रचलन विशेष रूप से राज परिवारों में होता था । यह राजा का विशेष चिह्न होता था । सिर पर चूड़ामणि धारण की जाती थी ।[७] इसका प्रयोग स्त्रियाँ अपने बालों को बांधने में करती थी । चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में एक रत्नचूड़ामणि नामक रत्न भी होता था ।[८]

इसके अतिरिक्त गर्मी को रोकने के लिए सिर पर छत्र का प्रयोग किया जाता था जिसको आतपत्र[९] धर्मवारण[१०] अथवा आतपवारण[११] भी कहते थे ।

---

१. नेमिनिर्वाण १/२
२. वही, १/५
३. वही, १/५२, ५/३१, ३४, ६/१४
४. वही, ४/३६, ३८, ५/३०
५. वही, २/१७
६. वही, १/१
७. वही, १/७२, १२/६
८. वही, ३/२५
९. वही, १/६३
१०. वही, २/३५
११. वही, १२/१०

कर्णाभूषण :

कान का सामान्य आभूषण कुण्डल है जो एक भारी या घुमाव दार लटकने वाला गहना होता है। ये मोतियों और रत्नों के बनाये जाते हैं। जरा भी शरीर संचलन से हिलने-जुलने लगते हैं। कुण्डल शब्द संस्कृत के कुण्डलिन् (साँप का कुँडली में रहना) से सम्बद्ध है। नेमिनिर्वाण में इस प्रकार के आभूषणों जैसे मणिकर्णपूर[१], कर्णोत्पल[२], कुण्डल[३], रत्नकुण्डल[४], मणिकुण्डल[५], अवन्तस[६] (अवन्तस प्रायः फूलों के होते थे) कर्णभरण[७] का भी प्रयोग हुआ है।

कण्ठाभूषण :

कण्ठाभूषणों में हार[८] प्रमुख है। इसे मोतियों और रत्नों से बनाया जाता है। इसे मुक्तावली भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त स्रक्[९], माला[१०], का भी प्रयोग हुआ है। माला को अनेक भारतीय भावनाओं से ग्रन्थन किया जाता था। प्रत्येक मांगलिक कार्य में माला का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। ये मालायें विशेष रूप से पुष्प निर्मित होती हैं, सोने, मोती आदि की भी हुआ करती हैं।

इसके अतिरिक्त उरुहार[११] तथा अतिहार[१२] अंगहार[१३] मौक्तिकदाम[१४] आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

कराभूषण :

हाथ के आभूषणों में कंकण[१५] और केयूर[१६] का वर्णन हुआ है। ये भी रत्नों और मणि तथा सोने चाँदी इत्यादि के बनाये जाते हैं। केयूर को भुजबन्द या अंगद भी कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कटि के आभूषणों में स्त्री की करधनी के लिए नेमिनिर्वाण में कांची[१७] का प्रयोग हुआ। आभूषण के रूप में तो यह आभूषण था ही अधोवस्त्र को यथास्थान रखने में भी यह सहायक होती है।

पैरों के आभूषणों के रुप में नेमिनिर्वाण में एकमात्र नूपुर[१८] का उल्लेख हुआ है।

इसके अतिरिक्त शरीर में सौन्दर्य बढ़ाने वाले (लगाये जाने वाले) सुगन्धित द्रव्यों में पद्मराग[१९], कर्पूर[२०], कालेयक[२१], अंजन[२२], धूप[२३], कज्जल[२४], कुसुम-प्रसाधन[२५], केसर[२६], अंगराग[२७], कस्तूरी[२८], आदि का प्रयोग मिलता है।

---

१. नेमिनिर्वाण, १/३९ २. वही, १/४४ ३. वही, १/५२, ५६
४. वही, २/५, १२/४ ५. वही, ६/३५ ६. वही, १०/५, १०/१४
७. वही, ८/२७ ८. वही, १/२९, ८३, ८/२१, १२/२
९. वही, १/१२ १०. वही, १/४, ८/१४, २१ ११. वही, ८/८
१२. वही, १/७० १३. वही, १/८२ १४. वही, ७/१३
१५. वही, २/५, ३६, १२/३ १६. वही, १२/३८ १७. वही, १/५९
१८. वही, ८/२, ८/१२ १९. वही, १/१२ २०. वही, १/४२
२१. वही, १/४२ २२. वही, १/४९ २३. वही, १/५४
२४. वही, १/७४ २५. वही, ४/१० २६. वही, ८/२२
२७. वही; ८/५१, ५९ २८. वही, ८/५४, ५७, ११/२३

श्रृंगार करने तथा आभूषण पहनने के लिए मणियों के दर्पण[१], श्रृंगार मंडप[२] तथा साधारण दर्पणों[३] का प्रयोग होता था ।

वस्त्र :

नेमिनिर्वाण में वस्त्रों का विशेष वर्णन या नाम उल्लेख नहीं हुआ है। फिर भी उत्तरीय[४], वसन[५], तथा नेपथ्य[६] आदि नाम उल्लिखित हैं ।

वस्त्रों के नाम से जान पड़ता है कि सूती और रेशमी दोनों वस्त्रों का प्रयोग तत्कालीन समाज करता था । वस्त्र के लिए नेपथ्य शब्द का प्रयोग विशेष ध्यातव्य है । सामान्यतः ऊर्ध्ववस्त्र व अधोवस्त्र दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था ।

शिक्षा :

शिक्षा का मूल उद्देश्य विनय की प्राप्ति थी । नेमिनिर्वाण में कहा गया है कि नेमि कुमार गुरु की शिक्षा से विनय को प्राप्त हो गये ।[७] शिक्षा में सभी प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता था ।[८] शास्त्रविद्या के साथ शस्त्रविद्या भी कराई जाती थी ।

संस्कार :

संस्कार से तात्पर्य उन धार्मिक कृत्यों से है जो व्यक्तित्व की शुद्धि के लिए आवश्यक माना जाता है । नेमिनिर्वाण में विभिन्न संस्कारों का विवेचन हुआ है ।

(१) पुंसवन :

यह एक गर्भकालीन संस्कार है । गर्भधारण के निश्चय के बाद गर्भस्थ शिशु को इस संस्कार के द्वारा अनुष्ठानित किया जाता है । इस संस्कार मे पुंसन्तति होने की भावना निहित रहती है । यह संस्कार गर्भावस्था के तीसरे माह में किया जाता है । नेमिनिर्वाण में रानी शिवा देवी की गर्भावस्था के बाद पुंसवन नामक संस्कार का उल्लेख मिलता है । रानी शिवा देवी ने उस विशाल गर्भ को धारण करने में असमर्थ रत्ननिर्मित आभूषणों को छोड़कर अनेक रंगो वाले फूलों के प्रसाधनों को धारण किया तथा उस समय राजा समुद्रविजय ने, जिन पुंसवन आदि संस्कारों की इच्छा की । इन्द्र ने देवताओं के समूह के साथ वहाँ आकर उन क्रियाओं को पूर्ण किया ।[९]

(२) सीमन्तोन्नयन संस्कार :

यह भी गर्भस्थकालीन संस्कार है । यह संस्कार गर्भधारण के सातवें माह मे होता है। कुछ अमंगलकारिणी शक्तियाँ गर्भिणी स्त्री को परेशान करती हैं । उन्हीं शक्तियों को हटाने या शान्त करने के लिए यह संस्कार किया जाता है । यद्यपि इस संस्कार का स्पष्ट रूप से

१. नेमिनिर्वाण, २/४२
२. वही, ३/३२
३. वही, ८/७०
४. वही, १/३०
५. वही, १०/४०, १२/३९
६. वही, १२/१
७. वही, ६/९
८. वही, ६/१२
९. वही, ४/१०, ११

उल्लेख नेमिनिर्वाण में नहीं हुआ, किन्तु "पुंसवनादि"[१] पद में आदि पद से इसी संस्कार का ग्रहण होता है, क्योंकि पुंसवन संस्कार के बाद यही संस्कार होता है ।

(३) पुत्रोत्पत्ति :

गर्भोत्तर कालीन संस्कारों में सबसे प्रथम और यह संस्कार अति महत्त्वपूर्ण होता है । पुत्रोत्पत्ति के बाद अनेक तरह के उत्सव मनाये जाते हैं । राजघरानों में इसका अधिक प्रचलन है । इस अवसर पर राजा बहुमूल्य रत्नाभूषण और आभूषणों का दान करते हैं । दुःखियों में धन बांटते हैं और कैदियों को कैद से मुक्त कर देते हैं ।

राजा समुद्रविजय के यहाँ पत्नी के गर्भावस्था के नौ महीनों तक रत्नों की वर्षा हुई। श्रावण का महीना आ जाने पर शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन रानी ने सम्पूर्ण लोकों को आनन्दित करने वाले पुत्र को उत्पन्न किया ।[२]

इसके जन्म के समय देवताओं ने देदीप्य मान महोत्सव किया । जन्म के समय पारितोषिक मांगने के लिए मनुष्यों के समूह तथा संभ्रान्त लोगों के भवनों में शंखध्वनि व्याप्त हुई ।[३]

(४) नामकरण संस्कार :

गर्भोत्तर कालीन संस्कारों में पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त होने वाले इस संस्कार का अत्यन्त महत्त्व है । सूतक शुद्धि के बाद यह संस्कार मनाया जाता है । इसके लिए शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में शिशु का नाम रखा जाता है ।[४]

(५) चौलकर्म संस्कार :

बालक के विद्यारम्भ के पूर्व चौलकर्म संस्कार किया जाता हैं । चौलकर्म संस्कार में बालक के शरीर में सौन्दर्य को निखारने के लिए बालक का मुंडन आवश्यक माना जाता है । इसका विधान नामकरण के समान ही है ।

(६) विद्यारम्भ :

यह मानव-जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार होता है । क्योंकि यह ज्ञानार्जन की नींव है ।

(७) दारकर्म :

मनुष्य जीवन में विवाह या दारकर्म का अति महत्त्व है । आचार्य कौटिल्य का कहना है कि संसार के समस्त व्यवहार विवाह पूर्व होते हैं ।[५] यह संस्कार (विवाह) अध्ययन के बाद होता है ।

---

१. नेमिनिर्वाण, ४/११
२. वही, ४/१३
३. वही, ४/१७
४. वही, ४/६१-६२
५. "विवाहपूर्वोव्यवहारः ।" कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/२१

(८) मृत्यु संस्कार :

नेमिनिर्वाण में स्पष्ट रूप से यह संस्कार नहीं मिलता है ।

इस प्रकार नेमिनिर्वाण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न संस्कारों का उल्लेख हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि जैनों ने भी इन संस्कारों की सामाजिक महत्ता को स्वीकार किया है । मनोवैज्ञानिक धारणाओं के अनुसार भी माता की भावनाओं का गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव पड़ता है । गर्भकालीन संस्कारों में माता को प्रसन्न रखने की भावना निहित है, ताकि गर्भस्थ शिशु पर अच्छा प्रभाव पड़े । गर्भोत्तरकालीन संस्कारों के द्वारा बालक के अर्द्धचेतन मस्तिष्क में प्रभाव डालने की भावना रहती है । विवाह या दार कर्म संस्कार संतानोत्पत्ति के साथ ही कामवासना को सीमित करने का साधन भी है । अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन संस्कारों का विशेष महत्त्व है ।

मनोरंजन के साधन :

संगीत, वाद्य और नृत्य

विभिन्न प्रकार की कलाओं में संगीत कला का भी अपना विशेष महत्त्व है । संगीत के अन्तर्गत गीत, नृत्य और वाद्य इन तीनों को ग्रहण किया जाता है :

नेमिनिर्वाण के प्रथम सर्ग में द्वारवती में मृगों के समूह को गोपियाँ अपने गीतों के गुणों से निरन्तर रोक लेती हैं तथा जहाँ पर निरन्तर स्त्रियों के गानों में कान लगाये हुये क्रीडा मृग अपने वियोग के दुःख को भूल जाते थे ।[१] नेमिनिर्वाण में ताण्डव[२], लास्य आदि नृत्यों के नाम उल्लिखित हुये हैं ।

रानी शिवा देवी की सेवा करने वाली दिव्यांगनाओं ने विभिन्न प्रकार के कोमल नृत्यों के द्वारा रानी की पूजा की ।[३]

वास्तव में वाद्य के बिना गीत और नृत्य का कोई अस्तित्व नहीं है । वाद्य से सम्पृक्त होने पर ही नृत्य और गीत की शोभा बढ़ती है । नेमिनिर्वाण में विभिन्न उत्सवों पर विभिन्न वाद्य बजायें गये हैं जो इस प्रकार हैं - वल्लकी[४], पटह[५], दुन्दुभि[६], शंख[७], ताल[८], आतोद्य[९], तूर्य[१०] ।

इसके अतिरिक्त मनोंरजन के साधनों में अभिनयक्रिया[११], दोला[१२], चित्रदर्शन[१३] तथा विभिन्न ललित क्रियायें थी ।

---

१. नेमिनिर्वाण, १/३१, ४०
२. वही, १/६१
३. वही, २/४०
४. वही, १/२५
५. वही, १/३९, २/३९, १०/६
६. वही, २/६०, ४/३०, ५/१४
७. वही, ४/१७
८. वही, १०/६
९. वही, १२/१५
१०. वही, १२/२६, १२/४०
११. वही, १/४६
१२. वही, १/७२
१३. वही, २/५८

स्वप्न तथा उनके फल :

नेमिनिर्वाण के द्वितीय सर्ग में शिवा देवी ने सोलह स्वप्न देखे जो क्रमशः इस प्रकार हैं - हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, मालाएँ, सूर्य, चन्द्र, मीनयुगल, कलश, सरोवर, विशाल सागर, ऊँचा सिंहासन, विमान, सुसज्जित भवन, रत्नों की राशि तथा निर्धूम अग्नि।[१]

रानी ने इन स्वप्नों का फल अपने पति राजा समुद्रविजय से पूछा तो उन्होंने आनन्दित होते हुये कहा - हे देवि! तुम शीघ्र ही पुत्र रत्न उत्पन्न करोगी।[२]

भावी पुत्र गज के समान भूरितरदान से युक्त, बैल के समान धुरी धारण करने वाला, सिंह के समान तेजस्वी, लक्ष्मी के स्वयंवर में माल्यार्पण के समान, चन्द्रमा की किरणों के समान दर्शनीय, सूर्य के समान प्रतापी, मीन और कलश से चिह्नित चरण कमलों वाला, निर्मल जलाशय की तरह पवित्र, समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर, यदुवंश के उच्च सिंहासन को सुशोभित करने वाला, रत्नों के समूह की तरह चमकती हुई शरीर की कान्तिवाला तथा जो अग्नि की तरह गाहन कर्मों को आक्रान्त कर देने वाला है।[३]

इस प्रकार राजा समुद्रविजय ने देखे गये विभिन्न स्वप्नों के परिणामों को बतलाकर कहा कि सज्जनों के स्वप्न अनपेक्षित अर्थ वाले नहीं होते अर्थात् अवश्य ही सफलीभूत होते हैं।[४]

इस प्रकार नेमिनिर्वाण में प्रतिपादित संस्कृति के विवेचन से आज से लगभग ९०० वर्ष से पूर्व की संस्कृति का चित्र उपस्थित होता है। भारतीय संस्कृति के सर्वाङ्ग अध्ययन के लिए इसकी उपादेयता असंदिग्ध है।

---

१. नेमिनिर्वाण, २/४९-५९
२. वही, २/६०
३. वही, ३/३८,३९
४. वही, ३/४०-४३

नेमिनिर्वाण : प्रभाव एवं अवदान

संस्कृत साहित्य में पद्यकाव्य के निबन्धन में कालिदास, कुमारदास, भारवि, माघ, हरिचन्द्र आदि महाकवियों का तथा गद्यकाव्य के निबन्धन में कविवर बाणभट्ट का महत्त्वपूर्ण एवं सर्वातिशायी स्थान है। पश्चाद्वर्ती सभी कवियों ने किसी न किसी रूप में इन महाकवियों का अनुगमन किया है। वह सार्वजनीन सत्य है कि प्रत्येक कवि चाहे वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, पूर्व -परम्परा से कुछ न कुछ अवश्य ग्रहण करता है। यद्यपि कवि किसी पूर्ववर्ती कवि का शब्द, अर्थ या भाव ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करता है, तथापि वह पूर्वकवियों से प्रभावित अवश्य होता है। परिणाम स्वरूप उसके काव्य में शब्दगत, अर्थगत या भावगत साम्य दृष्टिगोचर होता है। नेमिनिर्वाण के रचयिता महाकवि वाग्भट भी इसके अपवाद नहीं हैं। इनके नेमिनिर्वाण महाकाव्य में कालिदास आदि महाकवियों के काव्य-ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है। फलतः कहीं - कहीं शब्दगत, अर्थगत या भावगत साम्य की झलक मिलती है।

जिस प्रकार कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से कुछ ग्रहण करता है, उसी प्रकार परवर्ती कवियों को कुछ प्रदान भी करता है। महाकवि वाग्भट के नेमिनिर्वाण का वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभचरित तथा मुनिज्ञान सागरकृत सुदर्शनोदय आदि पर प्रभाव भी पाया जाता है। वीरनन्दि और मुनि ज्ञानसागर ने अपनी काव्यकृतियों में अनेक स्थानों पर वाग्भट के नेमिनिर्वाण का अनुकरण किया है।

कालिदास का वाग्भट पर प्रभाव :

यद्यपि कालिदास के काव्यों और वाग्भट कृत नेमिनिर्वाण के इतिवृत्त में कोई साम्य नहीं है, तथापि प्रकृतिचित्रण, भावाभिव्यञ्जन तथा कविपरम्परा के परिपालन में वाग्भट ने कालिदास से बहुत कुछ ग्रहण किया है। परिणामस्वरूप कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल, ॠतु-संहार आदि काव्यों का वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण पर स्पष्ट रूप से प्रभाव है।

(१) वाग्भट के द्वारा नेमिनिर्वाण में किया गया वसन्तॠतु का वर्णन कालिदास के द्वारा ॠतुसंहार में किये गये वसन्तॠतु के वर्णन के समान है। नेमिनिर्वाण के वसन्तवर्णन में कालिदासकृत वसन्तवर्णन का शैलीगत साम्य तो है ही, भावगत, अर्थगत तथा कहीं - कहीं शब्दगत साम्य भी देखा जा सकता है।[१]

(२) नेमिनिर्वाण में परोपकार का वर्णन करते हुए कहा गया है -

१. द्रष्टव्य-नेमिनिर्वाण का षष्ठ सर्ग एवं कालिदासकृत ॠतुसंहार का वसन्त-वर्णन

"फलानि पुष्पाणि च वल्कलानि वा परोपकाराय वहन्ति हन्त ये ।
बभञ्जुरास्तानपि कुञ्जरास्तरून्कुतो नु मातङ्गकुले विवेकिता । ।"[१]

उक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध पर अभिज्ञानशाकुन्तल के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव है -

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् । ।"[२]

यहाँ, कालिदास ने परोपकारियों के विवेक का वर्णन किया है, तो वाग्भट ने मातङ्गों के अविवेक द्वारा उसी तथ्य को प्रकट किया है ।

(३) कालिदास का कन्यादान विषयक श्लोक तथा वाग्भट का एतद्विषयक श्लोक तुलनीय है। नेमिनिर्वाण के श्लोक पर कालिदास के श्लोक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

कालिदास का श्लोक -

"अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा । ।"[३]

वाग्भट का श्लोक -

"संसारेऽस्मिन्नामनन्ति प्रबुद्धाः कन्यादानं सर्वदानप्रधानम् ।
तच्चेत्पात्रे न्यस्यते निर्विकल्पं सिद्धौ दातुः कीर्तिधर्मौ महार्थौ । ।"[४]

इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेक जगह वाग्भट के ऊपर कालिदास का प्रभाव देखा जाता है । परवर्ती परम्परा में शायद ही कोई ऐसा कवि हो, जिस पर कालिदास का प्रभाव न पड़ा हो ।

भर्तृहरि का वाग्भट पर प्रभाव :

वैराग्य विषयक, नैतिक और श्रांगारिक वर्णनों में बहुधा परवर्ती कवि-परम्परा को भर्तृहरि के शतकत्रय (वैराग्यशतक, नीतिशतक और श्रृंगारशतक) ने प्रभावित किया है । नेमिनिर्वाण में अनेक स्थलों पर भर्तृहरि के वैराग्यशतक का तो प्रभाव है ही, कहीं-कहीं शैलीगत भी उनके शतकों का नेमिनिर्वाण पर प्रभाव परिलक्षित होता है । नीतिशतक में पुष्पस्तबक के सदृश

---

१. नेमिनिर्वाण, ५/३३
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५/१२ (कालिदास ग्रन्थावली)
३. वही, ४/२२ (कालिदास ग्रन्थावली)
४. नेमिनिर्वाण, ११/५०

मनस्वी की द्विविध वृत्ति तथा अन्य श्लोक में धन की त्रिविध गति का वर्णन किया गया है -

"कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वनेऽथवा ।।"
"दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।"[१]

नीतिशतक के इन दोनों श्लोकों की शैली का प्रभाव नेमिनिर्वाण में राजा समुद्रविजय के वर्णन में दृष्टिगत होता है -

"यस्मिन्भुवो भर्तरि सत्यसन्धे त्रयी गतिर्भूमिभृतां बभूव ।
तत्पादसेवा मरणं रणे वा क्वचिन्निवासो विपुले वने वा ।।"[२]

कुमारदास का वाग्भट पर प्रभाव :

(१) कुमारदासविरचित निम्नलिखित श्लोक -

"वयः प्रकर्षादुपचीयमानस्तनद्वयस्योद्वहनश्रमेण ।
अत्यन्तकार्श्यं वनजायताक्ष्या मध्यो जगामेति ममैष तर्कः ।।"[३]

का वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण के निम्नलिखित श्लोक पर स्पष्ट प्रभाव है -

"दुरुद्वहस्तनभारधारणश्रमागमादिव तनुमध्यदेशया ।
परिष्कृतामनुकृतकल्पशाखया प्रभावतस्तनुलतया पवित्रया ।।"[४]

(२) कुमार दास कृत अयोध्यावर्णन का प्रभाव वाग्भटकृत द्वारवती नगरी के वर्णन में स्फुटरूप से परिलक्षित होता है। इस सन्दर्भ में जानकीहरण और नेमिनिर्वाण का अधोलिखित श्लोक तुलनीय है।

जानकीहरण -

"आसीदवन्यामति भोगभाराद् दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या ।
क्षत्रानलस्थानशमी समृद्धया पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या ।।"[५]

एवम्

नेमिनिर्वाण -

"तत्र प्रसिद्धास्ति विचित्रहर्म्या रम्या पुरी द्वारवतीति नाम्ना ।
पर्यन्तविस्तारिविशालशालच्छायाछविर्यत्परिखापयोधिः ।।"[६]

---

१. नीतिशतक, श्लोक २६, ३५
२. नेमिनिर्वाण, १/६२
३. जानकीहरण, १/३२
४. नेमिनिर्वाण, २/३१
५. जानकीहरण, १/१
६. नेमिनिर्वाण, १/३४

(३) नेमिनिर्वाण में वाग्भट ने राजा समुद्रविजय का वर्णन करते हुए लिखा है कि जिसकी शत्रुओं की नारियों के नेत्रकमलों में असन्धि कार्य प्रकट हो गया था। इसी प्रकार जानकीहरण में भी कुमारदास ने वर्णन किया है कि उस राजा दशरथ की यशोचन्द्रिका शत्रुओं की नारियों के नेत्ररूपी चन्द्रकान्तमणियों से जलस्रवण का कारण बनती हुई सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गई। इस सन्दर्भ में दोनों काव्यों का निम्नलिखित श्लोकार्ध तुलनीय है -

जानकीहरण -

"तस्यारिनारीनयनेन्दुकान्तनिष्यन्दहेतुर्भुवनं ततान।"[१]

नेमिनिर्वाण-

"यद्वैरिनारीनयनारविन्देष्वसन्धिकार्यं प्रकटीबभूव।।"[२]

भारवि का वाग्भट पर प्रभाव :

नेमिनिर्वाण काव्य यद्यपि भारविकृत किरातार्जुनीय के समान नारिकेलपाक नहीं है, किन्तु नेमिनिर्वाण पर किरातार्जुनीय का अनेक प्रसङ्गों पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। महाकवि वाग्भट का नेमिनिर्वाण अनेक दृष्टियों से किरातार्जुनीय के समान काव्यगुणों से समन्वित है। किरातार्जुनीयके समानअर्थगांभीर्य न होने पर भी प्रकृतिवर्णन, अप्रस्तुतविधान, सरस श्रृंगारवर्णन, पदलालित्य, मध्यम समासशैली एवं कल्पना सम्पत्ति किसी भी स्थिति में नेमिनिर्वाण में किरातार्जुनीय से हीन नहीं है। निम्नलिखित स्थलों में नेमिनिर्वाण पर किरातार्जुनीय का प्रभाव है -

(१) नेमिनिर्वाण में वनविहार, पुष्पावचय, जलक्रीडा एवं रतिक्रीडा आदि के प्रसंग किरार्जुनीय के समान हैं।

(२) किरातार्जुनीय के पांचवे और पन्द्रहवे सर्ग में भारवि ने शब्दक्रीडा का प्रदर्शन किया है। वर्णन में चित्रमत्ता भी देखी जाती है। यथा -

"स्यन्दना नो चतुरगाः सुरेभा वा विपत्तयः।
स्यन्दना नो च तुरगाः सुरेभा वा विपत्तयः।।"[३]

एवं

"विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा।।"[४]

किरातार्जुनीय की उक्त शब्दक्रीडा एवं चित्रमत्ता नेमिनिर्वाण में भी देखी जा सकती है। यथा -

"रम्भारामा कुरबककमलारम्भारामा कुरबककमला।
रम्भा रामाकुरवक कमलारम्भारामाकुरवककमला।।"[५]

नेमिनिर्वाण की यह शाब्दी क्रीडा एवं चित्रमत्ता स्पष्ट रूप से भारवि के किरातार्जुनीय से प्रभावित है।

---

१. जानकीहरण, १/२५ २. नेमिनिर्वाण, १/६६ ३. किरातार्जुनीय, १५/१६
४. वही, १५/५२ ५. नेमिनिर्वाण, ७/५०

(३) जिस प्रकार भारविकृत किरातार्जुनीय महाकाव्य का प्रारंभिक श्लोक-"श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीम्—"[१] का प्रारम्भ श्री शब्द से होता है, उसी प्रकार वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण का प्रारंभिक श्लोक - "श्री नाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः —"[२] श्लोक का प्रारम्भ भी श्री शब्द से होता है । इस प्रकार दोनों ही श्री से प्रारम्भ होने वाले श्रयादि काव्य हैं ।

इसी प्रकार वाग्भट की उक्तियाँ भी भारवि के समान ही स्वाभाविक तथा पाण्डित्य से परिपूर्ण हैं ।

माघ का वाग्भट पर प्रभाव :

(१) कथानक रूढियों एवं वर्णन-सन्दर्भों में माघकृत शिशुपालवध का वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण पर स्पष्ट प्रभाव है । यद्यपि माघ ने शिशुपालवध में शिशुपाल के पूर्व जन्मों के वर्णन प्रसंग में जैन कवियों के जन्मान्तरविवेचनवाद को ही अपनाया है, तथापि वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण पर माघकृत शिशुपालवध के शिशुपाल के पूर्वजन्मों के वर्णन का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

(२) नेमिनिर्वाण के छठें सर्ग से दसवें सर्ग तक के वर्णन में शिशुपालवध की शैली की स्पष्ट छाया है । एक सर्ग में विविध छन्दों के प्रयोग में नेमिनिर्वाण यद्यपि शिशुपालवध से पूर्णतया प्रभावित है, तथापि नेमिनिर्वाण का वर्णन अधिक उत्कृष्ट है ।

(३) नेमिनिर्वाण के निम्नलिखित दो श्लोकों -

"अथैकदा सदसि दिगन्तरागतैरुपासितः क्षितिपतिभिर्महीपतिः ।
नभस्तलादवनितलानुसारिणीः सुराङ्गनाः स किल ददर्श विस्मितः ।।
निरम्बुदे नभसि नु विद्युतः क्वचिन्नु तारकाः प्रकटितकान्तयो दिवा ।
सविस्मयैरिति नितरां जनैर्मुहुर्विलोकिताः पथि पथि बद्धमण्डलैः ।।[३]

पर शिशुपालवध महाकाव्य के अधोलिखित दो श्लोकों का स्पष्ट प्रभाव है

"श्रियः पति श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद् हिरण्यगर्भांगभुवं मुनिं हरिः ।।
गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः ।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ।।[४]

उक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि नेमिनिर्वाण में किया गया स्वर्ग से अप्सराओं के अवतरण का वर्णन शिशुपालवध में किये गये नारद के अवतरण के वर्णन के समान है ।

---

१. किरार्जुनीय, १/१
२. नेमिनिर्वाण, १/१
३. वही, २/१,२
४. शिशुपालवध, १/१,२

(४) जिस प्रकार शिशुपालवध के प्रथम श्लोक "श्रियः पति श्रीमति शासितुं जगत्"[१] का प्रारंभ श्री शब्द से होता है, उसी प्रकार नेमिनिर्वाण के प्रथमश्लोक "श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः"[२] का प्रारंभ भी श्री शब्द से होता है।

(५) शिशुपालवध में श्यामल श्री कृष्ण जी के सुवार्गासन पर बैठने की शोभा का वर्णन जम्बूफल से सुशोभित सुमेरु पर्वत की उपमा देकर किया गया है -

"साञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामतनुर्न्यविक्षत।

जिगाय जम्बूजानितश्रियः श्रियं सुमेरुश्रृङ्गस्य तदा तदासनम्।।[३]

इसी प्रकार का वर्णन श्यामलवर्ण वाले भगवान नेमिनाथ के जन्माभिषेक के समय सुमेरुपर्वत पर सिंहासन पर विराजमान किये जाने पर नेमिनिर्वाण में किया गया है -

"मृगारिपीठेन तमालनिर्मलप्रभावितानप्रभुसङ्गशोभिना।

गुरुर्गिरीणां शिखरान्तरापरप्ररूढजम्बूशिखरीव सोऽभवत्।।[४]

(६) नेमिनिर्वाण में सप्तमसर्ग के रैवतक पर्वत के वर्णन पर शिशुपालवध के रैवतक पर्वत के वर्णन का प्रभाव है।

बाणभट्ट का वाग्भट पर प्रभाव :

(१) कादम्बरी के "अवितथफला हि प्रायो निशावसान समयदृष्टा भवन्ति स्वप्नाः[५] का नेमिनिर्वाण के "स्वप्नाः सतां नहि भवन्त्यनपेक्षितार्थाः"[६] पर प्रभाव माना जा सकता है।

(२) बाणभट्ट ने कादम्बरी में आश्रम के वर्णन मे जैसा वर्णन किया है, वैसा ही वर्णन नेमिनिर्वाण में भी पाया जाता है। यद्यपि इस वर्णन में शब्दसाम्य या अर्थसाम्य अकिंचित्कर है, किन्तु भावसाम्य देखा जा सकता है।

हरिचन्द्र का वाग्भट पर प्रभाव :

महाकवि हरिचन्द्र द्वारा विरचित धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य में जैनधर्म के पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथ का जीवन-चरित वर्णित हुआ है। धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य जैन संस्कृत काव्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य है। नेमिनिर्वाण में भी जैन धर्म के बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ भगवान का जीवन चरित वर्णित हुआ है। फलतः दोनों की कथावस्तु में समानता होना स्वाभाविक है।

(१) कुछ विद्वान धर्मशर्माम्युदय की रचना नेमिनिर्वाण के बाद की मान कर धर्मशर्माभ्युदय पर नेमिनिर्वाण का प्रभाव मानते हैं।[७] परन्तु हमारी दृष्टि में तो नेमिनिर्वाण ही

१. शिशुपालवध, १/१ २. नेमिनिर्वाण, १/१ ३. शिशुपालवध, १/१९
४. नेमिनिर्वाण, ५/५८ ५. कादम्बरी पृष्ठ २५४ ६. नेमिनिर्वाण, ३/४३
७. द्रष्टव्य-जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६ पृष्ठ ४८९

धर्मशर्माभ्युदय से प्रभावित है। जो कुछ भी हो, नेमिनिर्वाण के निम्नलिखित पद्य धर्मशर्माभ्युदय के उल्लिखित पद्यों से तुलनीय हैं -

(क) "श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः सुखानि प्रथयन्तु ते वः ।
समं नमन्नाकिशिरः किरीटसंघट्टविस्रस्तमणीयितं यैः । ।"[1]

एवं

"श्रीनाभिसूनोश्चिरमंघ्रियुग्मनखेन्दवः कौमुदमेधयन्तु ।
यत्रानमन्नाकिनरेन्द्रचक्रचूडाश्मगर्भप्रतिबिम्बमेणः । ।"[2]

(ख) "चन्द्रप्रभाय प्रभवे त्रिसन्ध्यं तस्मैनमो विस्मयनीयभासे ।
यत्पादपद्मौ सविधस्थितेऽपि चन्द्रे विनिद्राद्भुतकान्तियुक्तौ । ।"[3]

एवं

"चन्द्रप्रभं नौमि यदीयभासा नूनंजिता चान्द्रमसी प्रभा सा ।
नो चेत्कथं तर्हि तदांघ्रिलग्नं नखच्छलादिन्दुकुटुम्बमासीत् । ।"[4]

(ग) "तत्र प्रसिद्धास्ति विचित्रहर्म्या रम्यापुरी द्वारवतीति नाम्ना ।
पर्यन्तविस्तारिविशालशालच्छायाछविर्यत्परिखापयोधिः । ।"[5]

एवं

तत्रास्ति तद्रत्नपुरं पुरं यद्द्वारस्थलीतोरणवेदिमध्यम् ।
अलंकरोत्यर्कतुरंगपंक्ति कदाचिदिन्दीवरमालिकेव । ।[6]

(घ) उरः प्रहारत्रुटितोरुहारमुक्ताफलैर्वैरिविलासिनीनाम् ।
पेते क्षितौ यन्नवकीर्तिवल्ली बीजैरिवाश्रुप्लवपंकिलायाम् । ।[7]

एवं

वैदग्ध्यदग्धारिवधूप्रहारहारावचूलच्युतमौक्तिकौघाः ।
वभुः प्रकीर्णाः सकलासु दिक्षु यशस्तरोर्बीजकणा इवास्य । ।[8]

(ङ) निरम्बुदे नभसि नु विद्युतः क्वचिन्नु तारकाः प्रकटितकान्तयो दिवा ।
सविस्मयैरिति नितरां जनैर्मुहुर्विलोकिताः पथि-पथि बद्धमण्डलैः । ।[9]

---

१. नेमिनिर्वाण, १/१
२. धर्मशर्माभ्युदय, १/१
३. नेमिनिर्वाण, १/८
४. धर्मशर्माभ्युदय, १/२
५. नेमिनिर्वाण, १/३४
६. धर्मशर्माभ्युदय, १/५६
७. नेमिनिर्वाण, १/७०
८. धर्मशर्माभ्युदय, ४/२९
९. नेमिनिर्वाण, २/२

एवं

तारकाः क्व नु दिवोदितद्युतो विद्युतोऽपि न वियत्यनम्बुदे ।
क्वाप्यनेधसि न वह्नयो महस्तात्किमेतदिति दत्तविस्मयाः ।।[१]

(च) प्रजल्पितां जलरुहहर्म्यया गिरं निशम्य तां स तनयचिन्तयोज्झितः ।
प्रभुर्भुवः सपदि बभूव भासुरः प्रभापतिर्जलधरलेखया यथा ।।[२]

एवं

तावदेव किल कापि वल्लकीवेणुहारि हरिणेक्षणा जगौ ।
यावदर्थपतिकान्तयोदितां नाशृणोदमृतवाहिनीं गिरम् ।।[३]

(छ) रणज्झणन्मणिमयकंकणोत्करैः करैरुदीरितजयजल्पितैरिव ।
उदक्षिपत्क्षितिपकतत्रपाश्र्वयोः प्रकीर्णके मुहुरमरांगनाजनः ।।[४]

एवं

रणज्झणत्किंकिणिकारवेण संभाष्य यन्नाम्बरमार्गखिन्नम् ।
मरुच्चलत्केतनतालवृन्तैर्हर्म्यावली वीजयतीव मित्रम् ।[५]

(ज) तस्याः शरीरमपदोषमशेषकान्तिमाधुर्यमार्दवमुखैश्च गुणैर्गरीयः ।
काम्यं सुकाव्यमिव जातमलंकृतीनां योगेन रूपकसमुच्चयदीपकानाम् ।।[६]

एवं

श्रव्यं भवेत्काव्यमदूषणं यन्न निर्गुणं क्वापि कदापि मन्ये ।
गुणार्थिनो दूषणमाददानस्तत्सज्जनाद्दुर्जन एव साधुः ।[७]

(झ) श्रीजिनस्य यशसा जगद्बहिः सर्पतेव वपुरन्तरस्थितेः ।
वासरैः कतिपयैर्नृपप्रिया प्राप पक्वशरपाण्डुरं वपुः ।।[८]

एवं

अन्तर्वपुः प्रणयिनः परमेश्वरस्य, निर्यद्यशोभिरिव सा परिरभ्यमाणा ।
स्वल्पैरहोभिरभितो घनसारसार-क्लृप्तोपदेहमिव देहमुवाह देवी ।।[९]

---

१. धर्मशर्माभ्युदय, ५/२
२. नेमिनिर्वाण, २/२९
३. धर्मशर्माभ्युदय, ५/५३
४. नेमिनिर्वाण, २/३६
५. धर्मशर्माभ्युदय, १/७७
६. नेमिनिर्वाण, ३/३४
७. धर्मशर्माभ्युदय, १/२५
८. नेमिनिर्वाण, ४/५
९. धर्मशर्माभ्युदय, ६/३

(ञ) तस्य जन्मभवने प्रबोधिताः सप्तमंगलमयस्य दीपकाः ।
आगता इव दिवो महर्षयः सेवनार्थमभुरद्भुतप्रभाः । ।[1]

एवं

बालस्य तस्य महसा सहसोद्यतेन, प्रध्वंसितान्धतमसे सदने तदानीम् ।
सेवागताम्बरमुनीनिवसप्त काचिद्, दीपान्व्यबोधयत केवलमंगलार्थम् । ।[2]

(ट) प्रविश्य शच्या शुचि सूतिकागृहं समर्प्य मायामयमन्यमीदृशम् ।
प्रभुः कराभ्यां जगृहेऽथ मातृतः कृतप्रणामाय वराय चार्पितः । ।[3]

एवं

प्रविश्य सद्मन्यथ सुव्रतायाः समर्प्य मायाप्रतिरूपमंके ।
शची जिनं पूर्वपयोधिवीचेः समुज्जहारेन्दुमिवोदितं द्यौः । ।[4]

(ठ) प्रयुज्यमाने तव नाम्नि जायतां प्रकाममाद्यः पुरुषो मनीषिणाम् ।
जिनेश युष्मत्पदयोगसंभवेऽप्ययं भवत्युत्तम इत्यगोचरः । ।[5]

एवं

युष्मत्पदप्रयोगेण पुरुषः स्याद्यदुत्तमः ।
अर्थोऽयं सर्वथा नाथ लक्षस्याप्यगोचरः । ।[6]

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर भी नेमिनिर्वाण का शब्दगत एवं अर्थगत साम्य दृष्टिगोचर होता है । तीर्थङ्कर परक ही कथावस्तु होने से भाव-साम्य तो दोनों काव्यों मे अनेकत्र है ही ।

(२) धर्मशर्माभ्युदय में धर्मनाथ के तीर्थङ्कर पूर्वभवों का वर्णन हुआ है । नेमिनिर्वाण में भी नेमिनाथ तीर्थङ्कर के पूर्व भवों का वर्णन किया गया है ।

(३) तीर्थङ्कर का गर्भावतरण, गर्भावतरण से पहले ही इन्द्र की आज्ञा से देवांगनाओं द्वारा तीर्थङ्कर की होने वाली माता की सेवा, रानी का सोलह स्वप्न देखना, तीर्थङ्कर के जन्म होने पर इन्द्र का आसन कम्पित होना, चतुर्णिकाय के देवों के साथ इन्द्र का आना, इन्द्राणी द्वारा नवजात बालक के स्थान पर मायामयी बालक को रखकर बालक को उठाना तथा इन्द्र को सौंपना, सुमेरु पर्वत पर १००८ कलशों द्वारा तीर्थङ्कर बालक का जन्माभिषेक किया जाना, तत्पश्चात् बालक को माता को सौंप कर इन्द्र का वापिस जाना, दीक्षा कल्याणक, तपश्चरण, केवलज्ञान एवं तीर्थङ्कर का उपदेश समान रूप से दोनों ही काव्यों मे वर्णित हुआ है ।

जिस प्रकार महाकवि वाग्भट ने पूर्ववर्तियों से कुछ ग्रहण किया है, उसी प्रकार पश्चात्वर्ती कवियों को उनका अवदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

---

१. नेमिनिर्वाण, ४/२३ २. धर्मशर्माभ्युदय, ६/२० ३. नेमिनिर्वाण, ५/१
४. धर्मशर्माभ्युदय, ७/१ ५. नेमिनिर्वाण, ५/६८ ६. धर्मशर्माभ्युदय, ३/५२

वाग्भट का वीरनन्दि पर प्रभाव :

वीरनन्दि कृत चन्द्रप्रभचरित पर वाग्भट की शैली का पर्याप्त प्रभाव है। वीरनन्दि ने भी वाग्भट के ही समान एक सर्ग में अनेक छन्दों का विवेचन करके अपना छन्दःकौशल प्रकट किया है। उनके चन्द्रप्रभचरित पर वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण का अत्यन्त प्रभाव है।[1] चन्द्रप्रभचरित का कथानक भी नेमिनिर्वाण के समान उत्तरपुराण से लिया गया है। तीर्थङ्करोत्पत्ति, जन्मकल्याणक, संसार की अनित्यता, तपग्रहण, दार्शनिक उपदेश आदि में वीरनन्दि ने वाग्भट का अनुकरण किया है।

वाग्भट का मुनि ज्ञानसागर पर प्रभाव :

सुदर्शनोदय के "वीरप्रभुः स्वीयसुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमित-प्रजावान्"[2] श्लोक पर नेमिनिर्वाण के "अपारसंसारसमुद्रनावं देयाद्दयालुः सुमतिर्मतिं नः"[3] का प्रभाव जान पडता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण पर कालिदास, कुमारदास, भारवि, माघ, हरिचन्द्र आदि का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त भर्तृहरिकृत शतकत्रय एवं नीति प्रधान आख्यान साहित्य का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। परवर्ती कवियों में चन्द्रप्रभचरित के रचयिता वीरनन्दि तथा सुदर्शनोदय आदि काव्यों के प्रणेता मुनि ज्ञानसागर जी वाग्भट कृत नेमिनिर्वाण से प्रभावित हैं।

---

१. द्रष्टव्य - जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६ पृ० ४८४

२. सुदर्शनोदय, १/१

३. नेमिनिर्वाण, १/५

अध्याय आठ

उपसंहार

भारतवर्ष के नैतिक जीवन को सत्पथ की ओर उन्नयन करने में जिन महापुरुषों का महनीय योगदान रहा है, उनमें जैन धर्म के बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ अन्यतम हैं। यही कारण है कि उनके जीवन से प्रभावित होकर कवि निरन्तर काव्य-रचना करके अपनी लेखनी को सफल करते रहे हैं। जैन पुराणों के अनुसार जब सौरीपुर में समुद्रविजय के अरिष्टनेमि नामक पुत्र हुआ, उसके पूर्व समुद्रविजय के छोटे भाई वसुदेव के यहाँ श्रीकृष्ण का जन्म हो चुका था। इस प्रकार नेमि या अरिष्टनेमि श्री कृष्ण के ताऊजात भाई थे। उनके पावन जीवनचरित को महाकाव्यों में गुंफित करने वाले महाकवियों में वाग्भट का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण महाकाव्य में नेमिनाथ तीर्थङ्कर के केवल जीवन का चरितांकन ही नहीं हुआ है, अपितु इसमें महाकाव्य के समस्त गुणों का चित्रण हुआ है। इसमें जैनदर्शन के विचारों एवं जैन धर्म के सिद्धान्तों का भी अत्यन्त सरल एवं सुगम शैली में प्रतिपादन किया गया है। मानवीय सद्गुणों, दार्शनिक विचारों एवं धार्मिक सिद्धान्तों के मणिकांचन संयोग के कारण मुझे नेमिनिर्वाण पर यह शोध प्रबन्ध लिखने का विचार हुआ।

संस्कृत साहित्य में चरितकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा है। यह परम्परा वैदिक, जैन और बौद्ध धर्म की विचारधाराओं से निरन्तर पल्लवित होती रही है। चरितकाव्यों के प्रणयन में जैन कवियों का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। जैन कवि यद्यपि ईसा की दूसरी शताब्दी से ही निरन्तर संस्कृत साहित्य की सेवा कर रहे हैं, परन्तु चरितकाव्यों के प्रणयन की श्रृंखला में ईसा की सातवीं शताब्दी में विरचित रविषेणाचार्य का पद्मचरित प्रथम जैन चरितकाव्य है। इसके बाद अद्यावधि शताधिक चरितकाव्य लिखे गये हैं, जिनमें जैनधर्ममान्य तिरेसठ शलाकापुरुषों तथा अन्य पूज्य महापुरुषों का चरित वर्णित हुआ है। राम-लक्ष्मण, कृष्ण-बलदेव, प्रद्युम्न, हनुमान् आदि की गणना जैन धर्म में शलाका-पुरुषों मे की गई है। अतएव जैनों ने अपनी परम्परानुसार इनको आधार बनाकर अनेक चरितकाव्यों की रचना की है। यहाँ तक कि जैन चरितकाव्यों के प्रणयन का श्रीगणेश प्राकृत एवं संस्कृत दोनों ही प्राचीन आर्य भाषाओं में रामकथा से ही हुआ है। पद्मचरित में राम का ही पतितपावन चरित वर्णित है। जैन धर्म में राम का नाम पद्म भी मिलता है। चरितकाव्यों को जैनधर्म में प्रथमानुयोग भी कहा जाता है। क्योंकि जैन परम्परा में सम्पूर्ण वाङ्मय चार अनुयोगों में विभक्त है और प्रथमानुयोग में ही परमार्थ का कथन करने वाले तिरेसठ शलाकापुरुषों एवं अन्य धार्मिक महापुरुषों का जीवनचरित वर्णित होता है।

चरितकाव्यों का कालानुक्रमिक विवरण प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक कौन-कौन से चरितकाव्य लिखे गये हैं। इस विवरण में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि उनका रचनाकाल क्या है तथा किस काव्य की

प्रमुख विशेषतायें क्या हैं? यह विवरण इसलिए आवश्यक समझा गया है ताकि वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण की परम्परा का पूर्वापर परिचय भी प्राप्त हो सके ।

रविषेणकृत पद्मचरित (७ वीं शताब्दी), जटासिंह नन्दि का वरांगचरित (८ वीं शताब्दी), गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण (९ वीं शताब्दी), वीरनन्दिकृत चन्द्रप्रभचरित, महासेनकृत प्रद्युम्नचरित एवं असगकृत वर्धमानचरित (१० वीं शताब्दी), वादिराजसूरिकृत पार्श्वनाथचरित एवं यशोधरचरित (११ वीं शताब्दी), कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य का कुमारपालचरित और वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण (१२ वीं शताब्दी), तथा उदयप्रभसूरि का धर्माभ्युदय महाकाव्य या संघपतिचरित एवं महाकवि हरिचन्द्रकृत धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पू (१३ वीं शताब्दी) भिन्न भिन्न शताब्दियों के प्रतिनिधि चरितकाव्य हैं । इनमें हेमचन्द्राचार्य के कुमारपालचरित और उदयप्रभसूरि के धर्माभ्युदय महाकाव्य का ऐतिहासिक तथ्यों के ज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

अनेक चरितकाव्यों के निर्माण की दृष्टि से ईसा की १४ वीं-१५ वीं शताब्दी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इन दो शताब्दियों में पचास से भी अधिक चरितकाव्यों का प्रणयन हुआ है । इनमें भट्टारक सकल कीर्ति ने अनेक चरितकाव्यों की रचना की है । विपुलकाव्यप्रणयन की दृष्टि से भट्टारक सकलकीर्ति प्रमुख हैं । १६ वीं शताब्दी से लेकर १९ वीं शताब्दी तक लगभग चालीस चरित काव्यों की रचना हुई है किन्तु कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं मानी जा सकती है । बीसवीं शताब्दी के श्री ज्ञानसागर जी महाराज (पूर्व नाम श्री भूरामल्ल शास्त्री) ने अनेक चरितकाव्यों की रचना की है, जिनमें जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, समुद्रदत्तचरित आदि उत्कृष्ट कोटि के काव्य हैं । इनके काव्यों में भाषा, भाव एवं नवीन छन्द-निर्माण का अनुपम कौशल दृष्टिगोचर होता है । बिहारी लाल शर्मा का मंगलायतन भी उत्कृष्ट गद्यकाव्य है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जैन कवियों ने चरितकाव्यों के प्रणयन के माध्यम से संस्कृत साहित्य की महती सेवा की है । यहाँ यह ध्यातव्य है कि जैन चरितकाव्यों के निर्माण में जैनेतर सम्प्रदाय के विद्वानों ने भी रुचि ली है और एक ऐश्वर्यशाली परम्परा को प्रस्तुत किया है । ये कवि मूलतः प्राकृत भाषा की परम्परा को लेकर संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुये हैं, फलतः इनके काव्यों में प्राकृत भाषा के पारम्परिक तत्त्व भी दृष्टिगत होते हैं । इन काव्यों के विश्लेषण से संस्कृत भाषा की व्यापकता के साथ ही उसका विशाल भण्डार भी समृद्धतर होगा।

भारत के धार्मिक जीवन को प्रभावित करने वाले महात्माओं ऋषि-महर्षियों, तीर्थङ्करों में तीर्थङ्कर नेमिनाथ का चिरस्थायी प्रभाव है । यही कारण है कि भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में तीर्थङ्कर नेमिनाथ के जीवनचरित पर विभिन्न शैलियों में अनेक काव्य लिखे गये हैं । क्योंकि नेमिनाथ का आख्यान पार्श्वनाथ एवं महावीर की तरह ही अत्यन्त रोचक एवं घटनाप्रधान है । अनेक कवियों ने उनके पावन उपदेश को प्रचारित करने की भावना से सभी भारतीय भाषाओं में काव्यों का प्रणयन किया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में संस्कृत के लगभग ३०, राजस्थानी के

३, मराठी के २, कन्नड के २, प्राकृत के ४, अपभ्रंश के ५, हिन्दी के लगभग १००, तथा गुजराती के २, लगभग १५० से भी अधिक नेमिनाथ विषयक काव्यों का परिचय दिया गया है। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, भावों की दृष्टि से भी ये काव्य प्रभावशाली हैं। इनमें वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण एवं विक्रमकृत नेमिचरित (नेमिदूत) संस्कृत में लिखित महत्त्वपूर्ण काव्य हैं। वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण ही शोध का आलोच्य विषय है।

संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से वाग्भट नामक तीन सुप्रसिद्ध विद्वानों का पता चलता है- १. अष्टांग हृदय के रचयिता, २. काव्यानुशासन नामक काव्यशास्त्री ग्रन्थ के रचयिता और ३. वाग्भटालंकार नामक प्रसिद्ध अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता। जैन सिद्धान्त भवनआरा की हस्तलिखित प्रति (वि० सं० १७२७ में लिखित) के आधार पर ज्ञात होता है कि वाग्भटालंकार के प्रणेता वाग्भट ही नेमिनिर्वाण महाकाव्य के भी प्रणेता हैं। नेमिनिर्वाण की हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वाग्भट प्राग्वाट (पौरवाड) कुल के थे तथा इनके पिता का नाम छाहड था। इनका जन्म अहिच्छत्रपुर में हुआ था। अहिच्छत्रपुर की स्थिति विवादास्पद है, परन्तु महामहोपाध्याय श्री ओझा जी द्वारा मान्य नागौर (पुराना नाम नागपुर) ही अहिच्छत्रपुर मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। नेमिनिर्वाण एवं वाग्भटालंकार के मंगलाचरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वे जैनधर्म की दिगम्बर परम्परा के अनुयायी थे। क्योंकि उन्होंने १९वें तीर्थङ्कर को मल्लिका पुरुष रूप में वर्णन किया है तथा दिगम्बर मान्य १६ स्वप्नों का वर्णन किया है। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर परम्परा १९वें तीर्थङ्कर मल्लि को स्त्री स्वीकार करती है। कवि का अणहिल्लपट्टन के प्रतिविशेष स्नेह दिखाई पड़ता है। वे चालुक्यनरेश श्री जयसिंहदेव के आश्रित कवि थे। जयसिंह देव का समय १०९३-११४३ ई० माना जाता है। अतः इनका समय भी इसके आस पास का ही होना चाहिये।

जिन जैन कवियों ने संस्कृत के विकास में सहयोग दिया है, उनमें वाग्भट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न विद्वान थे। अलंकारशास्त्र और साहित्य दोनों में उनकी अगाध पैठ थी।

नेमिनिर्वाण महाकाव्य का मूल स्रोत गुणभद्राचार्य द्वारा प्रणीत उत्तरपुराण हैं। यद्यपि उत्तरापुराण के पूर्व आचार्य यतिवृषभकृत तिलोयपण्णत्ती में भगवान् नेमिनाथ के चरित्र के कुछ सूत्र उपलब्ध होते हैं, परन्तु इसे नेमिनिर्वाण का मूल स्रोत स्वीकार नही किया जा सकता है। क्योंकि इसमें नेमिनाथ के माता-पिता का नाम, जन्मस्थान, केवलज्ञान एवं मोक्षप्राप्ति का दिग्दर्शन मात्र प्राप्त होता है। इसमें उनके जीवन की किसी भी घटना का वर्णन नही किया गया है। उत्तरपुराण में तीर्थङ्कर नेमिनाथ के जीवनचरित्र का सांगोपांग वर्णन हुआ है, अतः वही इसका मूल स्रोत है। वाग्भट ने नेमिनिर्वाण की कथावस्तु को महाकाव्यानुकूल स्वाभाविक एवं प्रभावक बनाने के लिए अपनी कल्पना से यत्किंञ्चित् परिवर्तन-परिवर्धन भी किये हैं। उत्तर पुराण की मूल कथावस्तु एवं नेमिनिर्वाण का सर्गानुसार कथानक देकर परिवर्तन- परिवर्धन का संक्षिप्त वर्णन

किया गया है। यद्यपि कवि ने कल्पना से यथोचित परिवर्तन-परिवर्धन किया है, तथापि कहीं भी मौलिक परिवर्तन नहीं किया है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से नेमिनिर्वाण का संवेद्य एवं शिल्प अनुपम है। भाव पक्ष और कलापक्ष दोनों में ही वाग्भट सिद्धहस्त हैं। काव्यशास्त्रियों ने एक सफल महाकाव्य में जिन गुणों का रहना अनिवार्य स्वीकार किया है, नेमिनिर्वाण में उन सभी गुणों का सुष्ठुतया प्रयोग किया है। प्रायः सभी जैन चरित काव्यों मे अंगी रस के रूप में शान्त रस का ही परिपाक हुआ है, प्रायः अन्य सभी रसों की अंग रूप में व्यंजना हुई है। श्रृंगार के उभयपक्ष, रौद्र, वीर, करुण एवं अद्भुत रसों की अभिव्यक्ति में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

संस्कृत साहित्य में छन्दों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाकवि वाग्भट ने वर्णनों को आकर्षक बनाने के लिए भावानुरूप छन्दों का सन्निवेश किया है। कवि ने पचास से भी अधिक प्रचलित-अप्रचलित छन्दों का प्रयोग कर पाण्डित्य का अनुपम परिचय दिया है। महाकवि वाग्भट की छन्दयोजना अतिविस्मयकारी है। उन्होंने ऐसे छन्दों का भी प्रयोग किया है, जिनका पता वृत्तरत्नाकर के प्रणेता केदारभट्ट को भी नहीं था। कालिदास आदि के महाकाव्यों में भी इनके द्वारा प्रयुक्त अनेक छन्द नहीं मिलते हैं। सातवां सर्ग तो छन्दों का अजायबघर है। इसमें कुल ४३ छन्दों का प्रयोग किया गया है तथा जिस पद्य में जिस छन्द का प्रयोग किया है, उसका नाम भी उसी में प्रस्तुत कर दिया है। नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं - आर्या, सोमराजी, शशिवदना, अनुष्टुप्, विद्युन्माला, प्रमाणिका, हंसरुत माद्यद्भृंग, मणिरंग, बन्धूक, रुक्मवती, मत्ता, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, भ्रमरविलसिता, स्त्री, रथोद्धता, शालिनी, अच्युत, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, कुसुमविचित्रा, स्रग्विणी, मौक्तिकदाम, तामरस, प्रमिताक्षरा, भुजंगप्रयात, प्रियवंदा, तोटक, रुचिरा, नन्दिनी, चन्द्रिका, मंजुभाषिणी, मत्तमयूर, वसन्ततिलका, अशोकमालिनी, प्रहरणकलिका, मालिनी, शशिकलिका, शरमाला, हरिणी, पृथिवी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, चण्डवृष्टि, वियोगिनी और पुष्पिताग्रा।

महाकवि वाग्भट ने विभिन्न आयामों में विविध रूपों को प्रकट करने के लिए विविध अलंकारो द्वारा मनोरम एवं सौन्दर्यवर्धक चित्रों को अपनी लेखनी में संजोकर उन्हें अपने काव्य नेमिनिर्वाण में भिन्न-भिन्न प्रकार से चित्रित करके अपने अलंकार कौशल को प्रकट किया है। शब्दालंकारों मे अनुप्रास की शोभा, यमक की मनोरमता, श्लेष की संयोजना तथा चित्रालंकारों की विचित्रता सहज ही पाठकों के हृदय को अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। यमक अलंकार के भेद-प्रभेदों का प्रयोग करके उन्होंने यमक अलंकार में सिद्धहस्तता अधिगत की है। छठे सर्ग में सर्वत्र यमक का प्रयोग किया गया है।

अर्थालंकारों के माध्यम से वर्णनीय विषयों की मंजुल अभिव्यंजना में महाकवि वाग्भट कुशल हैं। उन्होंने नेमिनिर्वाण में उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक, परिसंख्या, समासोक्ति,

उदाहरण, सहोक्ति, विरोधाभास, आदि अलंकारों का आह्लादक प्रयोग किया है । यद्यपि सम्पूर्ण नेमिनिर्वाण महाकाव्य में अलंकारों का सर्वत्र प्रयोग हुआ है किन्तु अलंकारों के कारण कहीं भी भावों में आवरण उत्पन्न नहीं हुआ है ।

साहित्य में शैली के लिए रीति या मार्ग शब्द व्यवहृत होता है । प्रत्येक कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति अपने ढंग से करता है । शैली का सम्बन्ध रचनाकार के व्यक्तित्व से होता है। साहित्य में वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी इन चार रीतियों का कवियों ने आश्रय लिया है। महाकवि वाग्भट ने अपने नेमिनिर्वाण महाकाव्य में प्रधानतया वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है, किन्तु वर्ण्य विषय के आधार पर अन्य रीतियाँ भी उनके काव्य में दृष्टिगत होती हैं । वाग्भट ने प्रसाद गुण का अत्यधिक प्रयोग किया है, किन्तु माधुर्य और ओजगुण भी यथास्थान नेमिनिर्वाण में प्रयुक्त हुये हैं ।

प्रकृति-चित्रण काव्य का आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्त्व है । नेमिनिर्वाण में प्रकृति के आलंबन एवं उद्दीपन दोनों ही रूपों का चित्रण हुआ है । वह कहीं शान्त वातावरण में निर्वेद का संचार करता हुआ दिखलाई पड़ता है तो कहीं मादक वातावरण में श्रृंगार का उद्दीपन करता है । कालिदासादि महाकवियों के समान नेमिनिर्वाण महाकाव्य में भी देश. नगर, प्रकृति, सूर्योदय, प्रातःकाल, चन्द्रमा, पर्वत मन्दिर, स्त्री-पुरुष, पुत्रजन्म, जलक्रीड़ा, मदिरापान, रतिक्रीड़ा आदि का मनोरम वर्णन हुआ है । इन वर्णनों को पढ़कर सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके वर्णनों में कला की सशक्तता और अनुभूति की सजगता दोनों ही का सुन्दर संयोजन हुआ है।

नेमिनिर्वाण में महाकवि वाग्भट नें तीर्थङ्कर नेमिनाथ की देशना के प्रसंग में जैनदर्शन का विस्तृत वर्णन किया है । पन्द्रहवाँ सर्ग तो पूरा दार्शनिक ही है । इसमें रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) के विवेचन के साथ जीवादि सात तत्त्वों का विस्तृत वर्णन किया गया है । जीव चेतना लक्षण वाला होता है । महाकवि वाग्भट ने इन्द्रिय संवेदन के आधार पर जीव के भेदों का विस्तृत विवेचन किया है । एक इन्द्रिय वाले जीव को स्थावर और दो से पाँच इन्द्रिय वाले जीवों को त्रस कहा जाता है । गति की अपेक्षा अथवा चित्त के परिणामों की अपेक्षा जीव के नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार भेदों का विस्तृत विवेचन इस प्रसंग में हुआ है । अजीव तत्व को पाचँ भागों में विभक्त किया गया है-धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य, अणु, काल और आकाश । अणु को ही अन्यत्र पुद्गल कहा गया है धर्मद्रव्यगति में और अधर्मद्रव्य स्थिति में सहायक होता है । आकाश सर्वत्र व्याप्त और अनश्वर है । काल भी सर्वत्र व्याप्त और अनश्वर है किन्तु यह आकाश के समान अस्तिकाय नहीं है । मन, वचन काय का योग आस्रव कहलाता है । कर्मों और आत्मा का सम्बन्ध बन्ध कहलाता है । यह दो प्रकार का होता है- शुभ और अशुभ । उत्पन्न हुये आबद्ध कर्मों का रुक जाना संवर कहलाता है । कर्मों के फलों का भोगपूर्वक नाश हो जाना निर्जरा कहलाती है । निर्जरा के होने पर वह आत्मा दर्पण के समान निर्मल हो

जाता है। बंधे हुए सभी कर्मों का छूट जाना मोक्ष है। उक्त सात तत्वों के विवेचन के अतिरिक्त नेमिनिर्वाण में आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल इन चतुर्विध ध्यानों का, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापों का, कर्मसिद्धान्त बाह्य और आभ्यन्तर तपों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। प्रसंगतः जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त अनेकान्त का भी प्रतिपादन किया गया है। इस दार्शनिक अनुशीलन से नेमि-निर्वाण अपने उद्देश्य में सर्वथा सफल प्रतीत होता है। क्योंकि उसका ध्येय मोक्ष पुरुषार्थ है।

तत्कालीन संस्कृति की अमिट छाप साहित्य पर पड़ना स्वभाविक है। नेमिनिर्वाण में भौगोलिक परिवेश में अनेक द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन, उद्यान, वृक्ष, वनस्पतियाँ, पुष्प, पशु-पक्षी, देश, जनपद, नगर, ग्राम आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है। नगर में भवनों के निर्माण की कला का स्थापत्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

राजनीतिक परिस्थियाँ भी नेमिनिर्वाण में प्रतिबिम्बित हुई है। राजा और मन्त्री का उत्तराधिकार प्रायः ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलता था, किन्तु कभी कभी यह नियम छोड़ भी दिया जाता था। राजा समुद्रविजय ने वसुदेव का भक्तिभाव देखकर उनके पुत्र श्रीकृष्ण को युवराज बना दिया था। राजा के अनेक अधिकारी एवं सेवक होते थे। राजा और प्रजा के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। न्याय और दण्ड व्यवस्था सुदृढ थी तथा देश की रक्षा के लिए एक सैन्य विभाग होता था।

नेमिनिर्वाण में सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत परिवार, विवाह, भोजनपान, आजीविका के साधन, आभूषण, शिक्षा, संस्कार, मनोरंजन स्वप्न एवं शकुनविचार आदि का उल्लेख हुआ है। उस समय सामान्यतः शाकाहारी भोजन ही किया जाता था, किन्तु राजा आदि मांसाहारी भोजन भी करते थे। भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में नेमिनिर्वाण में प्रतिपादित संस्कृति का ज्ञान आवश्यक एवं अविस्मरणीय है। इससे हम मध्यकालीन भारतीय संस्कृति को अनायास ही जान सकते हैं।

सभी कवियों पर अपनी पूर्ववर्ती कविपरम्परा का प्रभाव अवश्य पड़ता है। क्योंकि कवि अपने पूर्व कवियों की परम्परा का अध्ययन अवश्य करता है। महाकवि वाग्भट भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनके काव्य में जहाँ पूर्वकाव्यों का शैलीगत, भावात्मक शाब्दिक या आर्थिक अनुकरण पाया जाता है, वहाँ पश्चाद्वर्ती कविपरम्परा (विशेषतया जैन कवि परम्परा) को उनका अवदान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

नेमिनिर्वाण महाकाव्य के उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भारत की साहित्यिक साधना ने भाषाविषयक विवादों को छोड़कर तथा संस्कृत को आधार बनाकर सम्प्रदायगत संकीर्ण बन्धनों को तोड़ दिया था। वैदिक और बौद्ध सम्प्रदायों के साथ-साथ जैनों ने भी संस्कृत की अनुपम सेवा करके एक ऐश्वर्यशाली परम्परा की स्थापना की थी। महाकवि वाग्भटकृत नेमिनिर्वाण के इस समीक्षात्मक अध्ययन से संस्कृत साहित्य की अवश्य ही श्रीवृद्धि हो सकेगी।

परिशिष्ट

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

अग्निपुराण	प्रकाशक - गुरुमण्डल ग्रन्थमाला मनसुखराय मोर ५ - फ्लाइन कलकत्ता, प्रथम संस्करण १९५७ ई०
अनुयोगद्वारसूत्र भाग - १	लेखक आर्यरक्षित, व्याख्याकार - श्री घासीलाल जी महाराज, प्रकाशक - अखिल भारतीय श्वेताम्बर जैन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट, प्रथम संस्करण १९६७ ई०
अभिनवभारती	लेखक - अभिनवगुप्त, प्रकाशक - गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज बड़ौदा
अमरकोश	लेखक - अमरसिंह, प्रकाशक - गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल बुक डिपो बम्बई, षष्ठ संस्करण १९०७ ई०
अलंकारचिन्तामणि	लेखक - अजितसेन, सम्पादक एवं अनुवादक - डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९७३ ई०
आदिपुराण भाग १ - २	लेखक - जिनसेन, सम्पादक एवं अनुवाद - प० पन्नालाल जैन, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी १९६३ ई० एवं १९६५ ई०
आदिपुराण में प्रतिपादित भारत	लेखक - डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - श्री गणेश प्रसाद वर्णी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला वाराणसी प्रथम संस्करण १९६८ ई०
आरती संग्रह	संकलनकर्ता - जिनदास चवड़े प्रकाशक - जिनदास चवड़े वर्धा, १९२६ ई०
उत्तरपुराण	लेखक - गुणभद्र, सम्पादक एवं अनुवादक - पं० पन्नालाल जैन, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५४ ई०
कालिदास ग्रन्थावली	सम्पादक आचार्य सीताराम, चतुर्वेदी भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, तृतीय संस्करण वि० सं० २०१९ (१९६२ ई०)

कविवर बुलाखीचन्द्र बुलाकीदास एवं हेमचन्द्र	लेखक - डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्रकाशक श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण
कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि	लेखक - डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, प्रकाशक - श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण १९७९ ई०
कादम्बरी	लेखक - वाणभट्ट, प्रकाशक - साहित्य भण्डार मेरठ
काव्यप्रकाश	लेखक - आचार्य मम्मट, व्याख्याकार - आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, पंचम संस्करण, विक्रम संवत् २०३१ (१९७४ ई०)
काव्यमीमांसा	लेखक - राजशेखर, अनुवादक - गंगासागरराय प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी प्रथम संस्करण सन् १९६४ ई०
काव्यादर्श	लेखक - दण्डी, सम्पादक - आचार्य रामचन्द्र मिश्र प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, द्वितीय संस्करण, विक्रम संवत् २०२८
काव्यानुशासन	लेखक - वाग्भट, सम्पादक - शिवदत्त शर्मा एवं काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक - निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९१५ ई०
काव्यानुशासन	लेखक - हेमचन्द्र, सम्पादक - शिवदत्त शर्मा एवं काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक - निर्णयसागर प्रेस बम्बई, प्रथम संस्करण १९३४ ई०
काव्यालंकार	लेखक भामह, भाष्यकार - देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना प्रथम संस्करण १९६२ ई०
काव्यालंकारसारसंग्रह	लेखक - उद्भट, सम्पादक - मंगेश रामकृष्ण तैलंग, प्रकाशक - भारतीय विद्याभवन बम्बई १९१५ ई०
काव्यालंकारसूत्र	लेखक - वामन, सम्पादक - नारायणराम आचार्य प्रकाशक - निर्णयसागर प्रेस बम्बई, चतुर्थ संस्करण १९५३ ई०
किरातार्जुनीय	लेखक - भारवि, प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, पंचम संस्करण १९६८ ई०
कुमारपालचरित	लेखक - हेमचन्द्र, प्रकाशक - भाण्डारकर ओरियन्टल सीरीज पूना, द्वितीय संस्करण १९३६ ई०

कुवलयमाला	लेखक - उद्योतनसूरि, डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, प्रकाशक - सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ भारतीय विद्या भवन बुम्बई १९५९ ई०
चन्द्रप्रभचरित	लेखक - वीरनन्दि, प्रकाशक - लालचन्द हिराचन्द दोशी, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर १९७१ ई०
छन्दोऽनुशासन	लेखक - हेमचन्द्र, सम्पादक - हरिदामोदर वेलणकर प्रकाशक - मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, तृतीय संस्करण १९७३ ई०
छन्दोमंजरी	लेखक - गंगादास, टीकाकार - पं० हरिदत्त शास्त्री एवं शंकरदेव पाठक, - प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी १९६४ ई०
जिनरत्नकोश	लेखक - हरिदामोदर वेलणकर, प्रकाशक - भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, १९४४ ई०
जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज	लेखक - डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६५ ई०
जैन शिलालेख संग्रह भाग - १	सम्पादक - डा० हीरालाल जैन, प्रकाशक - माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई १९२८ ई०
जैन शिलालेख संग्रह भाग - २	सम्पादक - पं० विजयमूर्ति, प्रकाशक - माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रेन्थमाला बम्बई १९५२ ई०
जैन शिलालेख संग्रह भाग - ३	सम्पादक - पं० विजयमूर्ति, प्रकाशक - माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई १९५६ ई०
जैन शिलालेख संग्रह भाग - ४	सम्पादक - डा० विद्याधर जोहरापुरकर, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९६६ ई०
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग - ५	लेखक - अम्बालाल प्रे० शाह, प्रकाशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६९ ई०
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग - ६	लेखक - डा० गुलाबचन्द्र चौधरी, प्रकाशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण १९७३ ई०
जैन साहित्य का बृहद्	लेखक - के० भुजवली शास्त्री, टी० पी० मीनाक्षीसुन्दरम्

इतिहास, भाग - ७ — पिल्लै और डा० विद्याधर जोहरापुरकर प्रकाशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण १९८१ ई०

जैनाचार्यों का अलंकारशास्त्र में योगदान — लेखक - डा० कमलेश कुमार जैन, प्रकाशक - पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसी, प्रथम संस्करण १९८४ ई०

तत्त्वार्थसार — लेखक - अमृतचन्द्राचार्य, व्याख्याकार - डा० पन्नालाल जैन, प्रकाशक - गणेशप्रसाद वर्णी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला वाराणसी प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४९६

तत्त्वार्थसूत्र — लेखक - गृद्धपिच्छ (उमास्वामी), अनुवादक - पं० फूलचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - गणेशप्रसाद वर्णी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, प्रथम संस्करण वी० नि० सं० २४७६

तत्त्वार्थराजवार्तिक — लेखक - अकलंकदेव, सम्पादक - पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रथम संस्करण

तिलोयपण्णत्ती — लेखक - यतिवृषभाचार्य, सम्पादक - डा० ए० एन० उपाध्ये एवं डा० हीरालाल जैन, प्रकाशक - जीवराज ग्रन्थमाला जैन संस्कृति संघ शोलापुर, प्रथम संस्करण विक्रम सं० २०००

तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग १-४ — लेखक - डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - अखिलभारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत परिषद् सागर, प्रथम संस्करण १९७४ ई०

दा जैनिज्म इन दा हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर — लेखक - एम० विन्टरनित्ज, सम्पादक - जिनविजय मुनि, प्रकाशक - जिनविजयमुनि अहमदाबाद, प्रथम संस्करण १९४६ ई०

द्रव्य संग्रह — लेखक - नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, अनुवादक - पं० परमेष्ठीदास जैन, प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़, पंचम संस्करण वी० नि० सं० २५०६

धन्यशालिभद्रचरित — लेखक - पूर्णचन्द्रसूरि, प्रकाशक - जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार सूरत, प्रथम संस्करण १९३४ ई०

धर्मशर्माभ्युदय — लेखक - हरिचन्द्र, सम्पादक - पं० पन्नालाल जैन प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५४ ई०

धर्माभ्युदय — लेखक - उदयप्रभसूरि, सम्पादक - जिनविजयमुनि प्रकाशक - सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ भारतीय विद्याभवन बम्बई विक्रम सं० २००५

ध्वन्यालोक	लेखक - आनन्दवर्धन, व्याख्याकार - विश्वेश्वर प्रकाशक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
नयचक्र	लेखक - माइल्ल धवल, अनुवादक - पं० कैलास चन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९७१ ई०
नागकुमारचरित	लेखक - मल्लिषेण, हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर (वर्तमान - जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी)
नाट्यदर्पण	लेखक - रामचन्द्र गुणचन्द्र, सम्पादक - आचार्य विश्वेश्वर, प्रकाशक - दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६१ ई०
नाट्यशास्त्र	लेखक - भरतमुनि, प्रकाशक - गायकवाड़ ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा
नीतिवाक्यामृत	लेखक - सोमदेवसूरि, सम्पादक - सुन्दरलाल शास्त्री, प्रकाशक - महावीर जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, द्वितीय संस्करण १९७६ ई०
नीतिवाक्यामृत में राजनीति	लेखक - डा० एम० एल० शर्मा, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
नीतिशतक	लेखक - भर्तृहरि, प्रकाशक - महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा, १९८७ ई०
नेमिदूत	लेखक - विक्रम, प्रकाशक - वीरनिर्वाण ग्रन्थ प्रकाशक समिति इन्दौर, वी० नि० सं० २४३७
नेमिनिर्वाण	लेखक - वाग्भट, सम्पादक - पं० शिवदत्त शर्मा, एवं काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक - निर्णय सागर प्रेस बम्बई, द्वितीय संस्करण १९३६ ई०
न्यायदीपिका	लेखक - अभिनव धर्मभूषण यति, सम्पादक - डा० दरबारीलाल कोठिया, प्रकाशक - वीर सेवा मन्दिर दिल्ली, द्वितीय संस्करण
न्यायविनिश्चयविवरण भाग १-२	लेखक - वादिराजसूरि, सम्पादक - पं० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९४९ एवं १९५४ ई०

पद्मपुराण भाग १ - ३	लेखक - रविषेणाचार्य, अनुवादक - पं० पन्नालाल जैन, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५८ एवं १९५९ ई०
पावन तीर्थ हस्तिनापुर	डा० रमेशचन्द्र जैन, प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी हस्तिनापुर (उ० प्र०), प्रथम संस्करण १९८४ ई०
पार्श्वनाथचरित	लेखक - उदयवीरगणि, प्रकाशक - जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर, प्रथम संस्करण वि० सं० १९७०
पार्श्वनाथचरित	लेखक - भावदेवसूरि, प्रकाशक - यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस, वी० नि० सं० २४३८
पार्श्वनाथचरित	लेखक - वादिराजसूरि, संशोधक - पं० मनोहर लाल शास्त्री, प्रकाशक - माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई, विक्रम सं० १९७३
पार्श्वनाथचरित	लेखक - हेमविजय, प्रकाशक - मुनि मोहनलाल जैन ग्रन्थमाला बनारस, प्रथम संस्करण १९१६ ई०
पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन	लेखक - डा० जयकुमार जैन, प्रकाशक - सन्मति प्रकाशन मुजफ्फरनगर, प्रथम संस्करण १९८७ ई०
पुरुदेवचम्पू	लेखक - अर्हद्दास
पृथिवीचन्द्रचरित	लेखक - रूपविज्ञगणि, प्रकाशक - जैन धर्म प्रसारक सभा भावनगर, १९३६ ई०
पृथिवीचन्द्रचरित	लेखक - सत्यराजगणि, प्रकाशक - यशोविजय जैन ग्रन्थमाला भावनगर, विक्रम सं० १९७६
बाई अजीतमति एवं उनके समकालीन कवि	लेखक - डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, प्रकाशक - श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण - १९८४ ई०
भट्टारक रत्नकीर्ति और कुमारचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	लेखक - डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, प्रकाशक - श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण
भट्टारक सम्प्रदाय	लेखक - डा० विद्याधर जोहरापुरकर, प्रकाशक - जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर विक्रम सं० २०१४ (१९५७)
भारतीय दर्शन	लेखक - सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं धीरेन्द्र मोहनदत्त, प्रकाशक - पुस्तक भण्डार पटना द्वितीय संस्करण (हिन्दी)

भारतीय स्थापत्य	लेखक - द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, प्रकाशक - हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ, प्रथम संस्करण १९६८ ई०
भोजचरित्र	लेखक - राजबल्लभ, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९६४ ई०
मनुस्मृति	अनुवादक - डा० जयकुमार जैन, प्रकाशक - साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ, प्रथम संस्करण १९८३ ई०
मलयसुन्दरीचरित	लेखक - जयतिलकसूरि, प्रकाशक - देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार भाण्डागार १९१६ ई०
महाकवि ब्रह्मजिनदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व	लेखक - डा० प्रेमचन्द्र रावका, प्रकाशक - महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण १९८०
महाभारत	लेखक - वेदव्यास, सम्पादक - श्रीपाद कृष्ण बेलवलकर, प्रकाशक - भाण्डारकर, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, १९६१ ई०
मुनिसुव्रतचरित	लेखक - अर्हद्दास प्रकाशक - देवकुमार ग्रन्थमाला जैन सिद्धान्त भवन आरा, प्रथम संस्करण १९१९ ई०
मोक्षमार्गप्रकाशक	लेखक - पं० टोडरमल, प्रकाशक - पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर जयपुर
यशोधरचरित	लेखक - वादिराजसूरि, सम्पादक - के० कृष्णमूर्ति प्रकाशक - कर्णाटक युनिवर्सिटी धारवाड़ प्रथम संस्करण १९६३ ई०
रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन	लेखक - डा० राजाराम जैन, प्रकाशक - जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (बिहार सरकार), प्रथम संस्करण १९७२ ई०
रत्नकरण्डश्रावकाचार	लेखक - समन्तभद्र, सम्पादक - पं० पन्नालाल जैन, प्रकाशक - वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसी १९७२ ई०
रसगंगाधर (काव्यलक्षणभाग)	लेखक - पण्डितराज जगन्नाथ, व्याख्याकार - डा० जयकुमार जैन, प्रकाशक - साहित्य भण्डार मेरठ, प्रथम संस्करण १९८४ ई०
वक्रोक्तिजीवित	लेखक - कुन्तक, प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी (उ० प्र०)

वरांगचरित	लेखक - जटासिंह नन्दी, सम्पादक - खुशालचन्द गोरावाला, प्रकाशक - भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ चौरासी मथुरा, प्रथम संस्करण १९५३ ई०
वस्तुपालचरित	लेखक - जिनहर्षगणि, प्रकाशक - हीरालाल हंसराज जामनगर, प्रथम संस्करण १९११ ई०
वाग्भटालंकार	लेखक - वाग्भट, टीकाकार - डा० सत्यव्रतसिंह प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई०
वृत्तरत्नाकर	लेखक - केदारभट्ट प्रकाशक - संस्कृत परिषद उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद, प्रथम संस्करण १९६९ ई०
शान्तिनाथचरित	लेखक - मुनिभद्रसूरि, प्रकाशक - यशोविजय जैन ग्रन्थमाला बनारस, वी० नि० सं० २४३७
शिशुपालवध	लेखक - माघ, प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, तृतीय संस्करण १९७२ ई०
श्रीपालचरित	लेखक - ज्ञानविमलसूरि, प्रकाशक - देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला बुम्बई १९२१ ई०
श्रुतबोध	प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी १९७२ ई०
श्रेणिकचरित	लेखक - जिनप्रभसूरि, प्रकाशक - जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्ग पालिताना (गुजरात)
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास भाग १	लेखक - डा० रामजी उपाध्याय, प्रकाशक - रामनारायण बेणी माधव इलाहाबाद द्वितीय संस्करण १९७० ई०
संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान	लेखक - डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७१ ई०
संस्कृत साहित्य का इतिहास	लेखक - ए० बी० कीथ, अनुवादक - मंगलदेव शास्त्री प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी द्वितीय संस्करण १९६७ ई०
संस्कृत हिन्दी कोश	लेखक - वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक - मोती लाल बनारसीदास दिल्ली, तृतीय संस्करण १९७३ ई०
सप्तव्यसनचरित्र	लेखक - सोमकीर्ति (हिन्दी अनुवाद मात्र) प्रकाशक - जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई १९१२ ई०

समयसार	लेखक - कुन्दकुन्द , अनुवादक - पं० परमेष्ठीदास जैन, प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल बम्बई १९६२ ई०
समयसार जीवाजीवाधिकार	लेखक - कुन्दकुन्द, अनुवादक - डा० जयकुमार जैन प्रकाशक - साहित्य भण्डार मेरठ, प्रथम संस्करण १९८९ ई०
समयसार नाटक	लेखक - पं० बनारसीदास, प्रकाशक - श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ चतुर्थ संस्करण विक्रम सं० २०३५ (१९७८ ई०)
सरस्वतीकण्ठाभरण	लेखक - भोजदेव, सम्पादक - डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य, प्रकाशक - काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी प्रथम संस्करण १९७९ ई०
सर्वार्थसिद्धि	लेखक - पूज्यपाद, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५५ ई०
साहित्यदर्पण	लेखक - विश्वनाथ, सम्पादक - डा० सत्यव्रतसिंह प्रकाशक - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, चतुर्थ संस्करण १९७६ ई०
सुदर्शनचरित	लेखक - विद्यानन्दि, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, १९७० ई०
सुदर्शनोदय	लेखक - मुनि ज्ञानसागर, प्रकाशक - मुनि ज्ञानसागर जैन ग्रन्थमाला ब्यावर, प्रथम संस्करण १९६८ ई०
सुवृत्ततिलक	लेखक - क्षेमेन्द्र (वृत्तरत्नाकर के साथ प्रकाशित) प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, प्रथम संस्करण १९२७ ई०
हरिवंशपुराण	लेखक - जिनसेन, सम्पादक - डा० पन्नालाल जैन प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५४ ई०

पत्रिकाएँ

अनेकान्त (त्रैमासिक)	सम्पादक - पं० पद्मचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक - वीर सेवा मन्दिर २१ दरियागंज नई दिल्ली
नागरीप्रचारिणी	प्रकाशक - नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

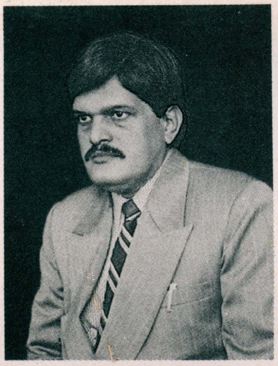

मेरा परिचय

नाम - अनिरुद्ध कुमार शर्मा।

पिता - श्री बालकराम शर्मा (अवकाश प्राप्त अध्यापक)

जन्मस्थान - काजीखेड़ा (मुजफ्फर नगर उ०प्र०)

जन्म - ५ अगस्त १९६० (शुक्रवार, शुक्लपक्ष त्रयोदशी)

शिक्षा प्राप्ति स्थान - बुढ़ाना व जनपद मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

योग्यता - एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), बी.एड., पी.एच.डी. मेरठ वि० वि०, मेरठ

सेवारत - (संस्कृत अध्यापक) केन्द्रीय विद्यालय न०-१, दिल्ली छावनी - १०

शीघ्रप्रकाशनाधीन पुस्तक - ''मेरी भी कुछ कविताएँ''